'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

वर्ष ४६ : श्रावण-कार्तिक २०४४ वि०—अगस्त-नवम्बर ८७ : संख्या ५-८

इस संयुक्त अंक में

['चण्डी' वर्ष ४६ सामान्य अङ्क १-४ में ६४ पृष्ठीय २१ शीर्षकात्मक लेख-साहित्य प्रकाशित हुआ था। इस संयुक्त अङ्क में उसके आगे के सामान्य लेखादि ६५-८० पृष्ठों में प्रकाशित हैं।]

२२ 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी की जन्म-शताब्दी : पटना में त्रि-दिवसीय समारोह ६५
२३ तन्त्रागत शब्दों का अर्थापकर्ष : श्री पं० चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु', पटना कालेज, पटना ६७
२४ श्री शीतला-कवचम् (दुर्लभ पाण्डुलिपि) : पं० कृष्णानन्द मिश्र, हनुमानगंज, प्रयाग ७८

पूजा-रहस्य (ज्ञान-खण्ड)

['चण्डी' के ४६ वें वर्ष में 'पूजा-रहस्य' नामक विशिष्ट लेख-माला छापी जा रही है। पिछले संयुक्त अङ्क १-४ में इस लेख-माला के ५६ पृष्ठ दिए गए थे। यहाँ उसी क्रम में ५७ से ८८ पृष्ठ दिये जा रहे हैं।]

१२ हिन्दुओं की पूजा का विवरण ५७—८६
१३ हिन्दुओं की 'पूजा' के प्रमुख उपचार ('धूप', 'दीप', 'नैवेद्य' आदि का रहस्य) ८६
१४ हिन्दुओं की 'पूजा' के महत्वपूर्ण अङ्ग (जप, होम, बलिदान) ...८८

बाबाश्री चरितामृत

['चण्डी' वर्ष ४५ में ''बाबाश्री चरितामृत'' विशिष्ट लेख-माला के अन्तर्गत ८६ पृष्ठ प्रकाशित हुए थे। पाठकों की माँग पर 'चण्डी' वर्ष १३, सं० २०११, सन् १९५३ में प्रकाशित 'श्रद्धाञ्जलि अङ्क' इस संयुक्ताङ्क द्वारा पुनः प्रकाशित हो रहा है। इस 'श्रद्धाञ्जलि अङ्क' की पृष्ठ-सं० 'चण्डी' वर्ष ४५ में प्रकाशित ८६ पृष्ठों के क्रम में रक्खी गई है। कुल ८८ पृष्ठ (९७ से १८४) दिए जा रहे हैं। हमें विश्वास है कि पाठक-बन्धु बाबाश्री के उपदेशों व उनके दिव्य चरित्र की झलक से लाभान्वित होंगे]

१ श्रद्धाञ्जलि : श्री कन्हैयालाल र० दवे, बी० ए०	९७
२ श्रद्धाञ्जलि-सप्तक : श्रीरमाशङ्कर पण्डचा, एम० ए०, एल० टी०	१०९
३ श्रद्धाञ्जलि : सुश्री तरला बहन	११२
४ अंतरानुभव : सौभाग्यवती शान्ताबाई श्रीपाद देवकर	११५
५ गुरु-चरणों में : श्री हंसराज जेठाभाई	११६
६ पुरुषोत्तम बाबाश्री : डाक्टर दशरथलाल श्रीवास्तव	११७
७ श्रद्धाञ्जलि : श्री हरकिशन ल० झवेरी	११८
८ श्रीचरणों में : श्रीमती अजब बेन	११९
९ महा-प्रयाण पर : श्री प्रभातकुमार बनर्जी	१२०
१० श्रद्धा के वनफूल : 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल	१२१
११ एक दिव्य विभूति : श्री १०८ स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती	१३०
१२ अभाव का अनुभव : श्रीमती सर्वेश्वरी देवी माथुर	१३०
१३ परमहंस बाबाजी : श्री धनशम्शेर जङ्ग बहादुर राणा	१३०
१४ लीलामय बाबाश्री : श्री शङ्करलाल भगवान दास	१३१
१५ शिव-रूप बाबाश्री : श्रीपाद गणेश देवकर	१३२
१६ आशुतोष पूज्य बाबाश्री : श्रीमती शीला माथुर	१३३
१७ श्रीबाबा जी के विज्ञानमय उपदेश : श्रीश्यामलाल सक्सेना	१३४
१८ मेरे कुछ अनुभव : श्री मंगु भीमा	१३६
१९ पूज्य बाबाश्री का कमरा : 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०	१३८
२० पूज्य बाबाश्री की अर्बुद-यात्रा : श्रीशङ्करराम नागर	१४५
२१ पूज्य श्री महाराज के चमत्कार : श्री प्रभुलाल ओझा	१५१
२२ पूज्य बाबाश्री की कृपा : श्रीमती शारदा बहन	१५२
२३ स्मरणीय अनुभव : श्रीमहेशशङ्कर	१५४
२४ बाबाश्री का उपदेश : श्री राजेन्द्रशङ्कर	१५५
२५ श्रीगुरु गणेश : श्री यशवन्त केशव प्रधान	१५६
२६ पूज्य पादाब्जों में : पण्डित काशीप्रसाद शुक्ल	१६४
२७ ईश्वर-स्वरूप बाबाश्री : डा० माताप्रसाद	१६६
२८ अमर-कण्टक की यात्रा : श्री छगनलाल	१६७
२९ लीलामय बाबाश्री की लीलायें : श्रीबच्छराज नत्थाणी	१७२
३० नर से नारायण : पं० मधुसूदन मिश्र	१७८
३१ पूर्ण पुरुष बाबाश्री : श्री मुक्तानन्द	१८२

'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी की जन्म-शताब्दी

बिहार की राजधानी पटना में त्रि-दिवसीय समारोह

शाक्त साहित्य प्रदर्शनी ※ साहित्यिक गोष्ठी ※ 'बिहार में शक्ति-साधना' का विमोचन

'चण्डी' पत्रिका के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल की जन्म-शताब्दी इस वर्ष के अप्रैल १९८७ से निरन्तर मनाई जा रही है। पूज्य शुक्ल जी ने राष्ट्र-भाषा हिन्दी के उत्कर्ष के लिए प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से २५ वर्षों तक अभूतपूर्व कार्य किया था। इस प्रकार उनके जीवन के दो प्रमुख पक्ष थे—१ साहित्यिक, २ आध्यात्मिक। इन दोनों पक्षों पर समुचित प्रकाश डालने के लिए 'पण्डित देवीदत्त शुक्ल शताब्दी समारोह समिति' का गठन किया गया और उसी के निर्देशन में शताब्दी के अन्तर्गत विविध आयोजनों का श्रीगणेश हुआ। इन आयोजनों से लोगों को परिचित कराने के लिए अप्रैल ८७ से ही एक लघु मासिक पत्रिका 'सम्पादक की वाणी' का भी प्रकाशन किया गया, जिसके ८ अंक अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। इन अङ्कों से जाना जा सकता है कि इस वर्ष के आठ महीनों में कितने आयोजन हुए और उन आयोजनों में पूज्य शुक्ल जी के साहित्यिक एवं आध्यात्मिक कृतित्व के सम्बन्ध में कितनी और कैसी चर्चा हुई है। इसी बीच पू० शुक्ल जी के जीवन-प्रसङ्गों पर तथ्यात्मक प्रकाश डालने के उद्देश्य से लगभग ३५० पृष्ठों का एक स्मृति-ग्रन्थ 'सम्पादक के संस्मरण' (मूल्य ५०.०० रुपये) भी प्रकाशित हो चुका है, जिसमें ७९ विद्वान् साहित्यकारों और मनीषियों के उद्बोधक लेख संगृहीत हैं। इन लेखों से शुक्ल जी के साहित्यिक और आध्यात्मिक कृतित्व की अच्छी जानकारी ही नहीं होती, पाठक को अभीष्ट मार्ग-दर्शन भी मिलता है।

'जन्म-शताब्दी' के उक्त आयोजनों के ही तारतम्य में आकस्मिक रूप से बिहार की राजधानी पटना में ३ नवम्बर से ५ नवम्बर तक 'त्रिदिवसीय समारोह' का प्रस्ताव उक्त समिति के सम्मुख आया और वह अकल्पित रूप से बड़े सुचारु ढंग से सम्पन्न भी हो गया। यह संयोग की ही बात है कि गत वर्ष भी इसी नवम्बर मास में १३ से १६ तारीख तक चार दिनों के समारोह का आयोजन हुआ था, जिसमें 'शाक्त साहित्य प्रदर्शनी' और 'शाक्त-सम्मेलन' का सफल कार्यक्रम सम्पन्न हुआ था। उस समारोह का विस्तृत सचित्र विवरण 'चण्डी' वर्ष ४५ के दिसम्बर ८६-जनवरी ८७ के संयुक्त विशेषाङ्क में आज भी पढ़ा जा सकता है। प्रायः उसी प्रकार का आयोजन इस बार भी सम्पन्न हुआ। विशेषता यह रही कि इस बार हिन्दी के विशिष्ट साहित्यकारों का योगदान रहा तथा भारत की अभूतपूर्व सिद्ध साधिका—श्रीजगदम्बा-स्वरूपा परम पूज्या श्री माई जी की पुण्य स्मृति में कौल-साधकों का अन्तरङ्ग सत्सङ्ग सम्पन्न हुआ, जो सब प्रकार से अनूठा रहा।

दिनाङ्क ३ नवम्बर को गत वर्ष की भाँति कङ्कड़बाग मार्ग पर अवस्थित जयसरमिन होटल के बाह्य कक्ष में शाक्त-साहित्य की भव्य प्रदर्शनी का विधिवत् उद्घाटन हुआ। सशक्ति शिव-स्वरूप श्री पं० गोविन्दशरण जी उपाध्याय के पधारने पर 'कुल-भूषण' श्री पं० रमादत्त शुक्ल द्वारा सस्वर स्वस्त्ययन एवं मंगल-पाठ किया गया और सर्व-सौभाग्यवती श्रीमती सन्ध्या उपाध्याय ने अपने कर-कमलों से कलशस्थ दीप को प्रज्ज्वलित किया। उनके साथ सर्व-सौभाग्यवती श्रीमती उमा देवी शुक्ल एवं श्रीमती रजनी शर्मा भी उपस्थित थीं। सर्वश्री पं० चन्द्रकिशोर पाण्डेय 'निशान्तकेतु, पं० सतीशचन्द्र उपाध्याय, पं० अशर्फीलाल शुक्ल, पं० ऋतशील शर्मा, पं० कृष्णमुरारी तिवारी आदि साधक-मण्डली इस उत्सव की शोभा बढ़ा रही थी। सर्व-गुण-सम्पन्न श्रीमती सन्ध्या उपाध्याय ने प्रदर्शनी में रखी पुस्तकों में से कुछ पुस्तकें क्रय कर अपने उद्-घाटन-कार्य के दायित्व का सुचारु रूप से निर्वाह किया, जिससे उपस्थित सभी लोगों को बड़ा उद्बोधन मिला।

अगले दिन दिनाङ्क ४ नवम्बर को 'साहित्यिक गोष्ठी' की अध्यक्षता करने के लिए ठीक निर्धारित समय पर वयोवृद्ध साहित्यकार श्री पं० प्रफुल्लचन्द्र जी ओझा 'मुक्त' पधारे। कुछ ही समय बाद बिहार अन्तर्विश्व-विद्यालयीय परिषद् के अध्यक्ष एवं पटना विश्व-विद्यालय के भूतपूर्व उप-कुलपति आचार्य पण्डित देवेन्द्रनाथ जी शर्मा का आगमन हुआ। आपने उक्त गोष्ठी के माननीय उद्घाटन-कर्ता का आसन ग्रहण किया। माननीय मुख्य अतिथि के आसन पर बिहार के प्रसिद्ध प्राचीन दैनिक पत्र 'आर्यावर्त' के सम्पादक श्री पण्डित रामजी मिश्र 'मनोहर' विराजमान थे। स्वागत-भाषण के लिए पटना कालेज (पटना विश्व-विद्यालय) के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष श्री पण्डित चन्द्रकिशोर जी पाण्डेय 'निशान्त केतु' आगे आए और गोष्ठी को सम्बोधित करते हुए कहा कि—

'मेरे जैसे हिन्दी-प्रेमी जनों का यह सौभाग्य है कि हमें स्व० शुक्ल जी जैसे ऋषि-वर का स्मरण करने का सुअवसर मिला। शुक्लजी के महान् जीवन के दो विशिष्ट पक्ष थे—पहला आध्यात्मिक और दूसरा साहित्यिक। उनके आध्यात्मिक पक्ष का परिचय इसी स्थान पर लगी 'प्रदर्शनी' से भले प्रकार मिलता है। जहाँ तक उनके साहित्यिक पक्ष की बात है, वे जीवन भर एक महान् समर्पित साहित्यकार रहे। यह हमारे लिए गौरव की बात है कि उसी परम्परा के समर्पित साहित्यकार श्रद्धेय ओझा जी इस गोष्ठी के अध्यक्ष के आसन की शोभा बढ़ा रहे हैं। आपके भव्य दर्शन मात्र से अनुमान लगाया जा सकता है कि पूज्य शुक्ल जी किस कोटि के साहित्यकार रहे होंगे। ऐसे समर्पित साहित्यकार आत्म-विज्ञापन से दूर रहते हैं। यह पत्रकारों और साहित्यिक संस्थाओं का कर्तव्य है कि इन त्यागी, निःस्पृह मनीषियों को खोजकर उनका सार्वजनिक रूप से अभिनन्दन करें। पं० देवीदत्त शुक्ल शताब्दी के आयोजनों द्वारा यह महत्-कार्य सम्पादित किया जा रहा है। प्रस्तुत आयोजन के उद्घाटन के लिए आए पटना विश्व-विद्यालय के भूतपूर्व कुलपति श्रद्धेय आचार्य पं० देवेन्द्रदत्त जी शर्मा भी एक समर्पित शिक्षा-विद् हैं। आपसे प्रार्थना है कि अपने उद्घाटन-भाषण द्वारा हम सबको उद्बोधित करने की कृपा करें।'

आचार्य-प्रवर श्री शर्मा जी ने अपने भाषण में कहा कि—'इस अवसर पर हम सम्पादक-शिरोमणि पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी की पवित्र स्मृति के लिए जो एकत्र हुए हैं, सच पूछिए, तो ऐसा करके हम अपने ही को धन्य करने आए हैं। पूज्य शुक्ल जी उस युग के कर्मठ साहित्यकार रहे, जिसमें हिन्दी की पत्रकारिता और राष्ट्रीयता एक दूसरे से अभिन्न थीं। उन दिनों जो लोग पत्रकारिता को अपनाते थे, वे राष्ट्रीय दृष्टि से अपने को समर्पित कर देते थे। आचार्य द्विवेदी के द्वारा प्रवर्तित पत्रकारिता के अनन्य उत्तराधिकारी पूज्य शुक्ल जी वास्तविक रूप में रहे और उन्होंने अपने कठिन दायित्वों का पूर्ण योग्यता और सफलता के साथ निर्वाह किया। उनके समय में हिन्दी को उसके अनुरूप मान्यता प्राप्त नहीं थी। पिछले सैकड़ों वर्षों से हिन्दी को पराभूत करने का प्रयास चल रहा था। हिन्दी के विरुद्ध जितनी साजिशें की गईं, कदाचित् संसार की किसी भी भाषा के विरुद्ध नहीं हुई होंगी। फिर भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य द्विवेदी और पण्डित देवीदत्त शुक्ल जैसे निःस्पृह, त्यागी और कर्मठ महा-पुरुषों के अभूतपूर्व अध्यवसाय से हिन्दी दिनों दिन अधिकाधिक विकसित ही होती गई और सबको यह मानना पड़ा कि हिन्दी ही सारे भारत की राष्ट्र-भाषा हो सकती है।

इसी प्रकार तन्त्र-शास्त्र और शाक्त-साहित्य के रहस्योद्घाटन के लिए पूज्य शुक्ल जी ने जिस पुरुषार्थ का परिचय दिया है, वह तो न भूतो न भविष्यति। 'चण्डी' और 'कल्याण मन्दिर प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित जो ग्रन्थ और पुस्तकें यहाँ प्रदर्शनी में प्रदर्शित हैं, उन्हें देखने के बाद मैं कह सकता हूँ कि ऐसा प्रामाणिक शोधपूर्ण तन्त्र-साहित्य इतनी मात्रा में सारे विश्व में कहीं से प्रकाशित नहीं हुआ है।

'तन्त्र' को पढ़ना अलग बात है, परन्तु उसके अर्थ को समझना बड़ा गूढ़ कार्य है। इसका मूल कारण यह है कि हम शिक्षित तो हैं किन्तु दीक्षित नहीं हैं। पूज्य शुक्ल जी ने इस दिशा में जो अभूतपूर्व कार्य किया है, उसका मूल्याङ्कन करना सहज नहीं है। 'सम्पादक के संस्मरण' में न्यायमूर्ति पण्डित शिवनाथ जी काटजू ने जो मर्म-स्पर्शी संस्मरण लिखा है, उससे

(शेष पृष्ठ ७७ पर)

तन्त्रागत शब्दों का अर्थापकर्ष : सामाजिक सन्दर्भ

श्री निशान्तकेतु, आचार्य तथा अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पटना कालेज, पटना विश्वविद्यालय

[विद्वान् लेखक द्वारा प्रस्तुत शोधात्मक निबन्ध में तन्त्र-योग के विशिष्ट शब्दों के तद्भव या अपभ्रंश रूपों के लोक-प्रचलित अर्थों के आधार पर एक उपयोगी चर्चा का श्रीगणेश किया गया है। आशा है, 'चण्डी' के अन्य विद्वान् पाठक भी इस विषय में अपने-अपने मन्तव्य लिखकर भेजने की कृपा करेंगे। इससे सामान्य पाठकों का विशेष ज्ञान-वर्द्धन ही होगा।–सं०]

तन्त्र-साधना की सुदीर्घ परंपरा

'तन्त्र' शब्द कभी तो 'ब्रह्म' का पर्याय बना और कभी ब्रह्म से भी आगे निकल गया। 'ब्रह्म' शब्द 'बृंह्' धातु से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है, वर्धन-शील। अणु से अनन्त की यात्रा में जो व्यक्त और परिचित है, वह तो ब्रह्म है ही, उससे कहीं अधिक, जो अव्यक्त और अपरिचित रह जाता है, वह भी ब्रह्म है। 'तन्त्र' में भी यही विस्तृति है—'तनोति इति तन्त्रः।' 'तन्त्र' शब्द की एक आन्तरिक विशेषता यह भी है कि यह न केवल स्वयं विस्तृत—असीम है, यह साधक को भी सक्रिय रूप से विस्तारित करता है।

'तन्त्र' की पद्धति जीवन की व्यावहारिक प्रयोग-शाला है। यहाँ सिद्धों के प्रयुक्त—अनुभूत सूत्र और सत्य मिलते हैं। 'तन्त्र' सम्पूर्ण जीवन-शैली है। यह सम्पूर्णता का संविधान है। इतने महनीय सत्य और सत्यापित 'तन्त्र' को कालान्तर में विवादास्पद होना पड़ा। 'तन्त्र' शब्द तो स्वयं विवादास्पद बना ही, तन्त्र-साधना को कालान्तर में अनेक भ्रान्तियों और भ्रष्टताओं का भूमि-पीठ बना दिया गया। इनके कारणों का अनुसन्धान करने पर अनेक धार्मिक, सामाजिक और दार्शनिक सन्दर्भों की संघर्ष-पूर्ण स्थितियाँ मिलती हैं।

सामान्यतः तन्त्र-शास्त्र की तीन शाखाएँ हैं—आगम, यामल और तन्त्र। 'तन्त्र' सामान्यतः इन तीनों का वाचक है। 'तन्त्र' में बिन्दु को शिव और रेखा को शक्ति का प्रतीक स्वीकृत किया गया है। बिन्दु अकेला रहकर शान्त, स्थिर और बोध-मात्र माना जाता है। शक्ति-रूपिणी रेखा ही उसे चञ्चल बनाती है। बिन्दु और रेखा अथवा शिव और शिवा का संयोग ही अर्ध-नारीश्वर-भाव से सृष्टि की अभिव्यक्ति करता है। बिन्दु और रेखा के संयोग से निर्मित कोण ही लोक हैं। इन लोकों को शक्ति का पटल माना गया है। लोक में स्थित मानव-शरीर को साधना, सिद्धि और आत्म-साक्षात्कार की सबसे बड़ी प्रयोग-शाला के रूप में प्रतिष्ठित-स्वीकृत किया गया। भारत को चिन्तकों ने तन्त्र-भूमि के रूप में माना है। 'तन्त्र' में त्रिकोण की महिमा है। लता-साधना से लेकर श्रीयन्त्र-साधना (त्रिपुर-सुन्दरी की उपासना) तक त्रिकोण का महत्व स्वीकृत है। इसी प्रसङ्ग में भारत का मान-चित्र मूल्याङ्कनीय है। यह मान-चित्र त्रिभुजी होने के कारण तान्त्रिक त्रिकोण-सम्मत है। भारत 'तन्त्र-भूमि' है। जाग्रत् स्थल विन्ध्याचल में 'त्रिकोण-यात्रा' की आज भी महिमा है।

'तन्त्र' ने अन्तर्जगत् से बहिर्जगत् तक सम्पूर्ण क्रान्ति का सफल अनुष्ठान किया था। तन्त्र-साधना की सुदीर्घ परम्परा प्राग्वैदिक काल से आरम्भ होकर तेरहवीं-चौदहवीं शती तक सुरक्षित रही

है। आज भी यह परम्परा निःशेष नहीं है, पर इसका प्रवाह शिथिल अवश्य पड़ा है। भारतीय तन्त्र-विद्या शिवोक्त और बुद्धोक्त दोनों मानी गई है।

वैष्णव-सम्प्रदाय के समानान्तर तन्त्र-सम्प्रदाय का वर्चस्व निर्मित हुआ, तो लगभग एक हजार वर्षों तक अर्थात् तेरहवी शती तक सम्पूर्ण देश तन्त्र-वाङ्मय और तन्त्र-साधना से आच्छादित हो गया। आज भी 'तन्त्र' अपने प्रकार और प्रयोग के रूपान्तरों के साथ विद्यमान है। यह भी सत्य है कि नवनाथों और चौरासी सिद्धों के अस्तित्व-काल में 'तन्त्र' जिस पराकाष्ठा पर पहुँचा था, वह आज नहीं है। फिर विष्णु और ब्रह्मा का महत्व कालान्तर में क्षीण-तर होता गया और शिव-शिवा का महत्व सुदृढ़तर होता गया। शिव-शिवा के अर्ध-नारीश्वर-रूप, गार्हस्थ्य-धुरि-कीर्तनीयता और शैव एवं शाक्त-मत का प्रचार-प्रसार बढ़ता ही गया। समयान्तर के साथ इसी परिवार के पुत्र गणेश की महिमा बढ़ी। इसमें शिवा और शिव-पुत्र गणेश की महत्ता--सत्ता सबसे अधिक हो गई। और कहा गया 'कलौ चण्डी-विनायकौ।' सम्पूर्ण दक्षिणापथ में गणेश और उत्तरापथ में भगवती दोनों सर्वाधिक सम्पूज्य बन गए। पूरे वर्ष में जो तीन राष्ट्र-व्यापी पर्व मनाए जाते हैं, उनमें भगवती के ही तीन रूप प्रतिष्ठित हैं।

वर्षारम्भ में सरस्वती-पूजा के रूप में सरस्वती, दुर्गा-पूजा-काल में दुर्गा और वर्षान्त में दीपावली के अवसर पर लक्ष्मी-पूजा के रूप में लक्ष्मी की प्रधानता है। वसन्त-पञ्चमी, शारदीय नवरात्र और दीपावलि—इन तीन प्रसिद्ध, लोक-प्रिय और सर्वोपरि पर्वों में देवी के विभिन्न रूप पूजित होते हैं। देवी-पूजा में ही ये तीनों पर्व अनुष्ठित होते हैं।

शब्द 'ब्रह्म' है अर्थात् शब्द में ब्रह्माण्ड है

'तन्त्रालोक' के रचनाकार और त्रिक्-दर्शन के भाष्य-कार एवं उन्नायक अभिनव गुप्त ने वसुगुप्त के शैव-सिद्धान्त का पुनरुत्थान किया था। सम-रसता, स्त्यानावस्था, यामल-भाव, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन, त्रिक्-सिद्धान्त, स्पन्द-दर्शन, निष्पन्दावस्था, परावस्था, सामरस्य-भाव, समावेश-दशा, अर्ध-नारीश्वरता इत्यादि तान्त्रिक शब्द पर्याय हैं। इनकी अर्थ-सम्पदा में सूक्ष्मांतर भी है। अभीष्टार्थ एक ही है। शिव-शिवा के युग-नद्ध रूप को अनेक पर्यायों और प्रतीकों के माध्यम से तन्त्र-शास्त्र में उप-बृंहित किया गया है। जैसे शिव-शिवा, शिव-पार्वती, शिव-शक्ति, प्रकाश-विमर्श, अर्थ-शब्द, अर्थ-वाक्, परमेश्वर-पार्वती, अङ्क-शून्य, बिन्दु-रेखा इत्यादि। शब्द को ब्रह्म कहा गया है। वह अक्षर या अविनाशी है; स्वयम्भू या अनाहत है, शाश्वत या सनातन है। शिव को अर्थ और शिवा को शब्द से व्याख्यात किया गया है। उल्लेख है,—

'शब्द - जातं शेषं तु धत्ते शर्वस्य वल्लभा।
अर्थ - स्वरूपमखिलं धत्तो मुग्धेन्दु - शेखरः ॥'

(शिव-पुराण : वायवीय संहिता)

अर्थात् शिव को—शक्ति-समस्त शब्दों का और स्वयं शिव समस्त अर्थों का स्वरूप धारण करते हैं।

शब्द-ब्रह्म ही क्रमशः परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी वाणी के रूप में रूपान्तरित होता है। शब्द के अक्षर अन्तः-मातृका-मण्डल के रूप में षट्-चक्र-स्थित हैं और साथ ही वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ती से होते हुए परा तक पहुँचते हैं। यह वाक्, अक्षर या मातृका की एक अन्तर्मुखी प्रक्रिया है और दूसरी प्रक्रिया बहिर्मुखता की है। सम्पूर्ण अन्तस् का संसार एवं बाह्य-जगत् वाग्-बद्ध है।

यह वाङ्-मय व्यापार ही नियामक है। इन सभी स्थापनाओं का विश्लेषण त्रिक्-शास्त्र में है। कहा गया है— 'वेदादिभ्यः परं शैवं शैवात् तु दक्षिणम्।
दक्षिणात् परतः कौलं कौलात् पर-तरं त्रिकम् ॥"

अर्थात् वेद से महत्तर शैव-शास्त्र, शैव से महत्तर वाम-मार्ग, वाम-मार्ग से महत्तर त्रिक्-शास्त्र है। अर्थात् त्रिक्-शास्त्र महत्तम है। तन्त्र-शास्त्र और तन्त्र-साधना का सर्वोच्च शिखर त्रिक्-शास्त्र ही है। यह त्रिक्-शास्त्र त्रित्व का त्रिकोण है, जिसमें परा, पराऽपरा और अपरा की तीन रेखाएँ हैं, इसे ही शिव, शक्ति और नर का त्रिकोण कहा गया है। यही सिद्धा, मालिनी और उत्तर का त्रिभुज है। यह त्रिक त्रिशिर है, जिसे नर-शक्ति-शिवात्मक, मातृ-मान-मेयात्मक अथवा इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक रूप से प्रतिष्ठित किया गया है। यही परामर्श है। यही तत्व-त्रय विश्व—ब्रह्माण्ड को आवेष्ठित किए हुए है। इस व्याख्या में संसार के अन्तर्गत शब्द नहीं है, वरन् शब्द में ब्रह्माण्ड अध्युषित है। अकारादि हकारान्त-पर्यन्त अक्षर-चक्र (वर्ण-चक्र, मातृका-मण्डल, वाङ्-मय) पर अहम् आरूढ़ होकर अहमात्मक स्फुरण-शील होता है। तन्त्र-शास्त्र इन सभी गहन गूढ़ व्याख्या एवं प्रयोग के साथ जीवन और जगत् का नियामक बनता है। इस तन्त्र-शास्त्र में प्रयुक्त अनेक अर्थ-गर्भ शब्द कालान्तर में अर्थापकृष्ट हो गए। इसके पीछे सामाजिक मान्यताएँ और समयान्तर-तत्व कारण हैं। इस प्रबन्ध-प्रकरण का अभीष्ट कुछ तन्त्रागत शब्दों के अर्थापकर्ष एवं उनके सामाजिक-धार्मिक-भाषिक कारणों का अनुसन्धान एवं उद्घाटन है।

'गुरु' शब्द का अर्थापकर्षण

तन्त्र-शास्त्र में 'गुरु' शब्द की सर्वोपरि महिमा है। आज 'गुरु' शब्द का प्रयोग तान्त्रिक दीक्षा-गुरु के अर्थ में लुप्त-प्राय है। केवल शिक्षा-गुरु के रूप में 'गुरु' का प्रयोग शेष है। समाज की सड़कों पर 'गुरु' शब्द और नीचे उत्तर आया है। सामान्य व्यवहार में 'गुरु' एक ऐसा सम्बोधन है, जिसका अर्थ है—चालाक, छली, शैतान इत्यादि। सामान्य व्यवहार में लोग कहते हैं, 'कहो गुरु ! क्या हाल है ?' ऐसे प्रयोग-शब्द में 'गुरु' अपनी तान्त्रिक अर्थ-गरिमा को खो चुका है। 'गुरु' शब्द से बना 'गुरु-घण्टाल' शब्द और भी अर्थापकृष्ट हो गया। 'गुरु-घण्टाल' यानी कपट-व्यवहार करनेवाला स्वार्थी एवं अवसर-वादी व्यक्ति। 'गुरु' शब्द से अँगरेजी 'डाम' शब्द के साथ संकर-समास-पूर्वक 'गुरु-डम' (गुरु-डाम) शब्द 'किंग-डम' की पद्धति पर निर्मित है। पर 'गुरु-डम' का अर्थ गुरु-साम्राज्य न होकर आरोपित गम्भीरता रखनेवाला खोखला व्यक्ति-वाचक बन गया ! 'गुरु' और इससे बने शब्दों के अर्थों के अपकर्ष का कारण तन्त्र-विरोध का सामाजिक तेवर है। 'तन्त्र' के गुरुओं ने जो ताम-झाम दिखाए, लटके-झटके अपनाए, लाम-काफ रखा या स्वार्थ-परता दिखाई, उसके उत्तर-परिणाम में यह शब्द अपमान-जनक बनता चला गया।

'गुरु' शब्द का अर्थ है—अन्धकार (गु) से निकालकर प्रकाश (रु) की ओर ले जानेवाला, पर अपनी गुह्यता, अलभ्यता, अहम्मन्यता एवं बहु-मान-पुरस्सरता के कारण 'गुरु' शब्द बदनाम होता चला गया। 'गुरु' शब्द से गरिमा, गौरव, गुरुत्व शब्द बनते हैं, जिनकी अर्थच्छवि अपेक्षा-कृत सुरक्षित है।

अर्थ-श्लिष्ट शब्द—'षट्-यन्त्र' का अपभ्रंश

तन्त्र-शास्त्र का एक पवित्र और अर्थ-श्लिष्ट शब्द है—'षड्-यन्त्र'। यह शब्द 'षट्' और 'यन्त्र' का समस्त-पद है। 'तन्त्र' में 'यन्त्र' का महत्व है। 'तन्त्र' जिसे विस्तृत करता (तनोति इति

तन्त्रः) है, 'यन्त्र' उसे परि-सीमित (यमतीति यन्त्रः) करता है। 'तन्त्र' में 'षट्-कर्म' का महत्व है। सामान्यतः 'षट्-कर्म' शब्द से जिन छह कर्मों का अर्थापन होता है, वे हैं—१ नौलि, २ धौति, ३ नेति, ४ वस्ति, ५ कपाल-भाति और ६ त्राटक। 'षट्-कर्म' के अन्तर्गत—१ स्नान, २ सन्ध्या, ३ जप, ४ होम, ५ तर्पण और ६ अतिथि-सेवा का भी विधान है। 'षट्-कर्म' के प्रयोक्ताओं को 'षट्-कर्मी' और षकार-खकार के वैदिक उच्चारण-भेद से 'खट-कर्मी' भी कहते हैं। सामान्य प्रयोग में 'खट-कर्मी' उसे कहते हैं जो छुआछूत, विधि-निषेध इत्यादि को मानता है और साथ ही अहम्मन्यता में दूसरों को हीन समझता है। ऐसे 'खट-कर्मी' को समाज व्यंग्य-पूर्वक सम्बोधित करता है।

'तन्त्र' में 'षट्-कर्म' का एक और प्रायोगिक विधान है। ये 'षट्-कर्म हैं—१ शान्ति-कर्म, २ वशीकरण, ३ स्तम्भन, ४ विद्वेषण, ५ उच्चाटन और ६ मारण। इन सिद्धियों के लिए भिन्न-भिन्न देव-देवियों की पूजा और अभिचारात्मक अनुष्ठान का विधान है। इन अभीष्ट देव-देवियों के अलग-अलग 'यन्त्र' बनते हैं। अक्षरात्मक वर्णों को 'मन्त्र' कहते हैं। इनका रेखात्मक रूपान्तरण 'यन्त्र' कहलाता है। इन छह यन्त्रों को षट्-यन्त्र कहते हैं। साधकों की सिद्धावस्था की स्थिति को 'षड्-यन्त्र-सिद्धि' कहते हैं 'षड्-यन्त्र' में सिद्ध साधक को 'षड्-यन्त्र-कारी' कहते हैं। यह साधना-सिद्ध 'षड्-यन्त्र' शब्द आज मूलार्थ से च्युत होकर अन्यार्थ धारण कर चुका है। 'षड्-यन्त्र' का आधुनिक अर्थ है—'कांस्पिरेसी' या साजिश। इसके सामाजिक कारणों का अनुसन्धान किया जाये, तो यह निष्कर्ष उपलब्ध होगा कि तान्त्रिकों ने। व्यक्तिगत राग-द्वेष के वशीभूत होकर, स्वार्थ-सिद्धि के लिए, महत्तर उद्देश्य को भुलाकर मारण, वशीकरण, विद्वेषण, उच्चाटन, स्तम्भन इत्यादि का प्रयोग आरम्भ कर दिया। तान्त्रिकों से समाज डरने लगा था, क्योंकि उन्होंने अपनी सिद्धियों का दुरुपयोग करना आरम्भ कर दिया था। यही कारण है कि लोक-जीवन में 'षड्-यन्त्र' शब्द साजिश का प्रति-रूप या पर्याय बन गया। आज 'षड्-यन्त्र' शब्द को अपने मूलार्थ-पीठ पर समासीन करा पाना कठिन ही नहीं, असम्भव है। रसायन का 'षड्-रस' (तिक्त, मधु, अम्ल, क्षार, लवण और कषाय), दर्शन का 'षड्-दर्शन' (न्याय, वैशेषिक, योग, मीमांसा, सांख्य और वेदान्त), ऋतु-विज्ञान का 'षड्-ऋतु' शब्द (बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शिशिर, हेमंत), कला का 'षडङ्ग'। वेदों के छह अङ्ग होते हैं, जिन्हें 'षड्-शास्त्र' कहा जाता है (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष)। विध्यर्थ-निर्णय के 'षट्-प्रमाण' (श्रुति, लिंग, वाक्य, प्रकरण, स्थान तथा समाख्या) हैं। आम्नाय का 'षडाम्नाय' (चतुर्दिक् एवं ऊपर-नीचे), वेद-मुख का 'षण्मुख' शब्द। इनमें कोई भी शब्द बदनाम नहीं हुआ, पर 'तन्त्र' का 'षड्-यन्त्र' शब्द भिन्नार्थक अधोगति को प्राप्त हो गया।

धर्म, दर्शन और प्रयोग के परिप्रेक्ष्य में लोक-जीवन जहाँ भी प्रतिकूलता देखता है, उसके पारिभाषिक शब्दों के अर्थ को या तो रूपान्तरित कर देता है या उसमें अपकर्ष ला देता है। 'षड्-यन्त्र' शब्द का अर्थापकर्ष भी इसी सामाजिक कारण से हुआ।

'चक्र' शब्द का अर्थापकर्षण

तन्त्र-शास्त्र में 'चक्र' की अनंत महिमा है। विभिन्न यन्त्रों के चक्र-विधान से लेकर कुण्डलिनी-जागरण के क्रम में षट्-चक्र-भेदन (मूलाधार चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपुर चक्र, हृदयचक्र अनाहत, कण्ठ-चक्र विशुद्धि और आज्ञा-चक्र) का विस्तृत वर्णन एवं माहात्म्य है। योग, साधना और 'तन्त्र' में 'चक्र' अनेक रूपों और महत्तर अर्थ-सम्पदा के साथ व्यवहृत हुआ है। दीक्षित साधना में 'चक्रार्चन' की अनंत महिमा है।

'चक्र' का अपभ्रंश है 'चक्कर'। समाज ने शब्द को तो अपभ्रष्ट किया ही, अर्थ को भी अपकृष्ट कर दिया। 'चक्कर' का अर्थ हो गया—धोखा, फरेब, छल इत्यादि।

इसी प्रकार महान् योगी और तन्त्र-सिद्धि-सिद्ध साधक गोरखनाथ ने जिस नाथ पंथ को लोक-विश्रुत किया, उनकी साधना-प्रक्रिया को 'गोरख-धंधा' कहा जाता था। 'गोरख-धंधा' अर्थात् गोरख-पंथ। कालान्तर में सामान्य व्यवहार में 'गोरख-धंधा' शब्द बे-मतलब और फिजूल कार्य का अर्थ ध्वनित करने लगा। सामान्य जनों की बुद्धि में गोरख का पंथ जब दुःसाध्य और दुर्लभ्य लगने लगा, तो उसने बैठे-बैठे इस पंथ की महिमा को धूमिल कर दिया। कुछ करना नहीं पड़ा। सिर्फ 'गोरख-धंधा' का अर्थ बदल दिया। इसी विरोध-परम्परा में शिवावतार तन्त्र-सिद्ध पुरुष मत्स्येन्द्रनाथ को मछिन्दरनाथ या मच्छद कहा जाने लगा।

'गोपनीय' एवं 'गुह्य' शब्द का अपभ्रंश

'तन्त्र' को गुह्य एवं गुप्त कहा गया है। तांत्रिक प्रयोग एवं मांत्रिक जप-योग के सम्बन्ध में सर्वत्र 'गोपनीय' एवं 'गुह्य' कहा गया है। शिव पार्वती को सिद्ध-कुञ्जिका-स्तोत्र मंत्र और विधान बताते हुए कहते हैं—हे पार्वति ! यह मन्त्र अति गुह्य है। देव-गणों के लिए भी दुर्लभ है। तुम इस मन्त्र को अपनी योनि की तरह गोपनीय और गुप्त रखना। प्रत्येक तांत्रिक अनुष्ठान के अन्त में भगवती के प्रति जो क्षमा-प्रार्थना निवेदित की जाती है, वहाँ भी 'गुह्य' शब्द का ही आख्यान है—'गुह्याति-गुह्य-गोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्-कृतं जपम्। सिद्धिर्भवतु मे देवि, त्वत्-प्रसादात् सुरेश्वरि !' समाज ने इस 'गुह्य' शब्द को लोक-भाषा में 'गुह' कर दिया, जिसका अर्थ 'मल' या 'विट' या 'विष्ठा' है। यहाँ तन्त्र-विरोध की पराकाष्ठा है।

'विमर्श' शब्द का अर्थापकर्षण

'विमर्श' शब्द का शैवागम-सम्मत प्रत्यभिज्ञा-दर्शन में बहुत महत्व है। यह उच्च-कोटि का पारिभाषिक शब्द है, जिसका अर्थ है—परम शिव की ज्ञान-क्रियात्मक आत्म-सम्वित्ति-रूपी शक्ति, जिससे सृष्टि होती है। परम शिव केवल प्रकाशमान नहीं है। उसे अपने चैतन्य की चेतना भी है। 'विमर्श' का मूलार्थ है—परम सत् की शुद्ध आत्म-चेतना। इसी 'विमर्श' या शुद्ध चेतना के सहारे वह परम सत्ता-वान् सृष्टि, स्थिति और संहार का कार्य करता है। बाह्य रूप से प्रकट होना (सृष्टि), इस प्रकटन को अस्तित्व-वान् रखना (स्थिति) और पुनः अपने परम स्व-रूप में वापस आ जाना (संहार)—यही त्रिविध व्यापार अहम् का स्फुरण है। 'परा-प्रावेशिका' में एतत् सम्बन्धी उल्लेख है—

'इह खलु परमेश्वरः प्रकाशात्मा। प्रकाशश्च विमर्श-स्वभावः। विमर्शो नाम विश्वाकारेण, विश्व-प्रकाशेन, विश्व-संहारणेन, अकृतिमहमिति विस्फुरणम्।'

उस परम शिव में समस्त विश्व उसी प्रकार विद्यमान रहता है, जिस प्रकार मयूर के अण्डे के रस में विभिन्न अङ्गों से विनिर्मित चित्र-विचित्र पिच्छ-कलाप (बहु-रङ्गी मयूर-पङ्ख) विद्यमान रहता है। 'विमर्श' इसी अन्तस्थ आत्म-चेतना का बहिर्विन्यास है। इसी से आत्म-चेतना की बाह्याभिव्यक्ति सम्भव है। इस अर्थ-गर्भ शब्द 'विमर्श' का आज सामान्यार्थ है—बातचीत करना ! समाज ने 'तन्त्र' के इस पारिभाषिक शब्द की सम्पूर्ण दार्शनिक गरिमा को अस्वीकृत कर 'मशविरा' के अर्थ में प्रयुक्त कर दिया। 'विमर्श' में चार व्यञ्जन हैं—व् म् र् श। 'मशविरा' में भी चार वे ही व्यंजन हैं, म् श् व् र्। वर्ण-व्यवस्था का क्रम जरा व्यत्यय के साथ है। इस प्रकार 'विमर्श' ही 'मशविरा' बन गया है और देशान्तर-यात्रा में अपना धर्मार्थ-काम-मोक्ष सब गँवा बैठा !

'विकल्प' शब्द का विपरीतार्थ

'तन्त्र' का 'विकल्प' शब्द तो अपने तत्सम रूप में ही व्यवहृत होता है, पर इसके अर्थ में बहुत अन्तर उपस्थित हो गया। इसकी परिभाषा में कहा गया—'विशेषेण विविधेन वा कल्पनम्' अर्थात् चित्त की वह विकल्पन-क्रिया, जिसके माध्यम से व्यक्ति एक को औरों से विशिष्ट या भिन्न करके देखता-परखता है। यदि घट को समझना है, तो घट और अघट को सामने रखकर अघट को हटा दिया जाता है और घट का निश्चित ज्ञान प्राप्त किया जाता है। आज 'विकल्प' का अर्थ 'अनिश्चय' हो गया। निश्चित ज्ञान से अनिश्चित ज्ञान तक की अर्थ-यात्रा इस तांत्रिक शब्द के प्रति सामाजिक अस्वीकृति ही है।

खेचरी, गोचरी, दिक्-चरी और भू-चरी शब्दों का अपभ्रंश—खच्चर, भूच्चर

वामेश्वरी शक्ति के मुख्य चार अङ्ग हैं—१ खेचरी, २ गोचरी, ३ दिक्-चरी और ४ भू-चरी। 'खेचरी' (खे-आकाशे चरतीति) का अर्थ है—गगन-गमन। यहाँ 'गगन' चित्त का प्रतीक है। अतः 'खेचरी' का अर्थ है—गो (इन्द्रियों) में गमन अर्थात् अन्तःकरण में गमन। 'दिक्-चरी' का अर्थ है—दिशाओं में गमन। इन्द्रियों का स्वभाव बहिर्गामी है। बाहर दिशाएँ हैं। अतः 'दिक्-चरी' का अर्थ है—शक्ति-चक्र की बाह्येन्द्रिय-गामिता। 'भू-चरी' का तात्पर्य है—सर्व-पदार्थ-गमन। इनमें 'खेचरी' और 'भूचरी' में शक्ति-चक्र या मुद्रा की प्रधानता है। समाज ने इन दोनों शब्दों को घृणास्पद बना दिया। इन शब्दों में शब्द और अर्थ दोनों धरातलों पर भ्रंश हुआ है। खेचरीसे 'खच्चर' और 'खचरा-खचरी' शब्द बन गए। 'खच्चर' गधे को कहते हैं। शैतान व्यक्ति को भी 'खचर' कहते हैं। 'खचरा' तो लोक-भाषा की बड़ी ही भद्दी गाली है। इसी तरह 'भूचरी' से 'भुच्चर' या 'भुच्चड़' शब्द बने हैं, जिनका अर्थ महा-मूर्ख है। ये दोनों अपभ्रंश शब्द तथा अर्थापकर्षण समाज का तन्त्र-शास्त्र के प्रति आक्रोश-प्रदर्शन है।

'मुद्रा' शब्द का अर्थापकर्षण

'तन्त्र' में पञ्च-मकार के अन्तर्गत 'मुद्रा' का विशिष्ट स्थान है। 'मुद्रा' का अर्थ है—आध्यात्मिक आनन्द। 'मुद्' (आनन्द) को देनेवाली स्थिति (रा) ही मुद्रा है। विश्व को मुहर-बन्द करनेवाली दशा को भी 'मुद्रा' कहते हैं—मुद्रयति इति मुद्रा। आङ्गिक-आकृतिक निर्माण-क्रिया भी 'मुद्रा' है, जिसका प्रयोग पूजा की विभिन्न स्थितियों में करते हैं। आज 'मुद्रा' का अर्थ 'आनंद' नहीं रहा। 'मुद्रा' का अर्थ है धन, रुपया। संसार को इसी में आनंद मिलता है। इसीलिए आध्यात्मिक आनंद के स्थान पर आर्थिक आनंद की ही प्रधानता हो गई है। इसका दूसरा कारण यह भी है कि तान्त्रिकों ने मुद्रादि प्रयोग-प्रदर्शन से समाज से रुपए-पैसे लेने शुरू कर दिए। इन्हीं कारणों से 'तन्त्र' का उदात्त शब्द 'मुद्रा' आज वित्तार्थक है।

'चमत्कार' शब्द का अर्थापकर्षण

'चमत्कार' का आरम्भिक व्यवहार तन्त्र-शास्त्र में जहाँ मिलता है, वहाँ यह एक पारिभाषिक दार्शनिक शब्द है। सृष्टि-तत्व के प्रकाश-पूर्ण अद्भुत आनंद को 'चमत्कार' की आख्या दी गई। अहं-विमर्श या पूर्णाहन्ता का आनंद-भाव जब सम्पूर्ण सृष्टि को अहं-भाव से या आत्म-भाव से समझने-चमकने लगता है, तो उसे 'चमत्कार' कहते हैं। तान्त्रिकों ने जब अपनी सिद्धियों का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया, तो उस कर्म को 'चमत्कार' या 'मिरैकल' की आख्या से जाना जाने लगा। यह महदर्थ का अर्था-

पकर्षण और अर्थ-परिसीमन है। प्रदर्शन-पर्याय 'चमत्कार' को खेल-तमाशा भर समझा गया! यहाँ लोक ने तांत्रिकों के प्रदर्शन-धर्म को गर्हित सिद्ध कर दिया।

'ग्राहक', 'बंध', 'राग', 'विष' शब्दों का विपरीतार्थ

तन्त्र-शास्त्र में विशेषकर शैवागम त्रिक्-दर्शन में 'ग्राहक' ज्ञाता को कहा जाता है। ज्ञाता या प्रमाता जीव ही 'ग्राहक' है, जो दिव्यता और तज्जन्य आनंद को ग्रहण करता है। आज 'ग्राहक' खरीदार को कहते हैं। इसी प्रकार एक पारिभाषिक शब्द है—'बंध', जिसका अर्थ है योग की वह क्रिया, जिसके अंतर्गत शरीर के कुछ अवयवों को आकुञ्चित-संकुचित कर एक विशेष ध्यानासन को स्थिति में परिबद्ध कर लिया जाता है। आज 'बंध' और 'बंधन' शब्द जाल या 'फंदा' का ही अर्थ रखते हैं।

तन्त्र-शास्त्र में 'राग' मायावरणों में एक आवरण है, जिसके कारण पूर्णत्व परिच्छिन्न हो जाता है और विषयों के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। इसीलिए 'विराग' या 'वैराग्य' की महत्ता सिद्ध होती है। समाज ने तांत्रिक रागार्थ को उसी रूप में ग्रहण न कर, उसका विपरीतार्थ ग्रहण कर लिया। 'राग' का अर्थ 'प्रेम' हो गया।

'विष' शब्द शैवागम-तंत्र में सम्भवतः सर्वाधिक महत्व-पूर्ण है। योग-साधना में अधः कुण्डलिनी में आवेश (प्रवेश) करती है, तो उस प्रवेश-क्रिया को 'विष' कहते हैं। यह 'विष'-लाभ किसी-किसी साधक को ही प्राप्त होता है। यह अमृत-मय है। परन्तु समाज ने इसका अर्थ भी उलट दिया। 'विष' का अर्थ 'जहर' हो गया। अमृतार्थक 'विष' शब्द का आज प्रचलित सामाजिक अर्थ है—जहर, हाला। इस प्रकार समाज ने कुण्डलिनी योग की कृच्छ्र-क्रिया का विरोध किया। योगियों के लिए जो अमृत (विष) है, वह सांसारिकों के लिए विष (हलाहल) बन गया! भाषा-विज्ञान में ऐसे व्यत्ययार्थक शब्द अंगुलि-गण्य ही हैं।

'वैखरी', 'सहज', 'समाधि' शब्दों का विपरीतार्थ

शब्द की चार स्थितियाँ होती हैं—१ परा, २ पश्यंती, ३ मध्यमा और ४ वैखरी। वैखरी का अर्थ है—वाक्-शक्ति, जो भौतिक अक्षरों में व्यक्त हो जाए। इसी वैखरी शब्द से 'बिखरना' शब्द बना है। 'सहज' शब्द तन्त्र-विज्ञान का एक बहु-प्रयुक्त अर्थ-गर्भ शब्द है। इसकी अर्थ-परम्परा की दो धाराएँ मिलती हैं। एक तो 'सहज' का अर्थ है—स्वाभाविक। यहाँ स्वभाव का अर्थ है—आत्मत्व। आत्मा की स्वाभाविकता है—आत्म-दर्शन, परमात्म-मिलन इत्यादि। दूसरे, 'सहज' का योग-सम्बन्धी अर्थ है। 'सहज' शब्द स (साथ)+ह (हठ-योग)+ज (जप-योग) के योग से बना है। हठ-योग और जप-योग के समन्वय से ही सहज-साधना होती है। समाज ने 'सहज' को अकठिन, सरल, ऋजु इन अर्थों में ग्रहण कर लिया। यहाँ भी समाज का अपरिश्रमी, सुविधाश्रयी और सुखोन्मुखी स्वभाव लक्षित होता है।

'समाधि' शब्द योग और 'तन्त्र' की वह चरमावस्था है, जहाँ पहुँच कर साधक अद्वैत या ईश्वर-मय या 'अहं ब्रह्मास्मि' बन जाता है। समाज ने 'समाधि' का अर्थ कर दिया 'कब्र'!

'स्वाहा', 'वषट्', 'हुम्', 'फट्' शब्दों का अपभ्रंश

तांत्रिक अनुष्ठान में अनेक न्यासों के अन्तर्गत षडङ्ग-न्यास-विधान भी है। ये षडङ्ग हैं—१ हृदय, २ शिर, ३ शिखा, ४ कवच (स्कंध-हस्त-विपरीत स्पर्श), ५ नेत्र-त्रय और ६ अस्त्र (मुद्रा-

विशेष)। इन छहों अङ्गों पर विशिष्ट मन्त्रों के साथ जो न्यास किये जाते हैं, उनके अन्त में नमः, स्वाहा, वषट्, हुम्, वौषट् और 'फट्' शब्दों का उच्चारण किया जाता है। उदाहरण के लिए (१) हृदयाय नमः, (२) शिरसे स्वाहा, (३) शिखायै वषट्, (४) कवचाय हुम्, (५) नेत्र-त्रयाय वौषट्, (६) अस्त्राय फट्। इन छहों शब्दों से छह शब्द बनते हैं--१ नमस्कार (नमः+कार), २ स्वाहाकार (स्वाहा+कार), ३ वषट्कार (वषट्+कार), ४ हुंकार (हुं+कार), ५ वौषट्कार (वौषट्+कार) तथा ६ फट्कार (फट्+कार)। इन शब्दों में केवल 'नमस्कार' शब्द अपने मूलार्थ में आज भी व्यवहृत होता है। किन्तु शेष शब्द अर्थान्तरित हो गए। स्वाहा का अर्थ है--समृद्धि, देवता का स्वागत या आह्वान, अग्नि-भार्या, तारा, महाश्री, मनोरमा इत्यादि। भगवती का भी एक नाम है 'स्वाहा'। 'देवी-माहात्म्य' में कहा है--'त्वं स्वाहा, त्वं स्वधा, त्वं हि वषट्कारः स्वरात्मिका।' 'इन्द्राय स्वाहा' का अर्थ है--'इन्द्र की समृद्धि हो, इन्द्र का आगमन हो।' परन्तु सामाजिक व्यवहार में 'स्वाहा' का अर्थ 'नाश' हो गया! 'तुम्हारा सब कुछ स्वाहा हो जाए।' ऐसा कहने का अर्थ है--तुम्हारा नाश हो। मूलार्थ से यह शब्द ध्रुवान्तरित हो गया!

'वषट्' शब्द अपने वैदिक उच्चारण के कारण 'वखट्' बन जाता है। लोक-व्यवहार में यह वखट 'भखट' बन गया। इसी से 'भखटना' क्रिया बनती है, जिसका अर्थ है-खराब होना, बिगड़ जाना। 'तन्त्र' ने जो बनाया, लोक ने उसे बिगाड़ा!

'हुम्' से 'हुंकार' शब्द बना है। 'हुंकार' शब्द आक्रोश-पूर्ण गर्जन का अर्थ व्यक्त करता है। इसी प्रकार 'हुम्' भी ऐसा विस्मयादि-बोधक अव्यय बन गया, जिसका अर्थ हो गया आक्रोश।

'वौषट्' का वैदिक उच्चारण है 'वौखट्'। 'वौखट्' और फिर उसके 'बौखना' या 'बउखना'-शब्द बनते हैं, जिनका अर्थ है--बहकना या पागल होना। कहाँ तो तृतीय नेत्रोन्मीलन का विधान विधायक शब्द 'वौषट्' और कहाँ इसका सामाजिक अर्थ 'बौखना' (पागल होना) हो गया! समाज ने इन तान्त्रिकों को बौखा हुआ या पागल ही स्वीकार किया।

'फट्कार' और 'फट्' (फटकार) का अर्थ है, विशिष्ट तन्त्र-ध्वनि। समाज में 'फटकार' का अर्थ हो गया 'दुत्कार'। डाँटना-फटकारना सहचर समानार्थक शब्द हो गए! यह भी तन्त्र-विरोध को सम्पुष्ट करनेवाला अर्थापकर्षण है।

'तन्त्र' के परमोच्च गौरवास्पद शब्द 'अघोर' का अपभ्रंश

'तन्त्र' की शब्दावलि में एक महत्व-पूर्ण शब्द है--अघोर। 'घोर' का अर्थ है--भयानक, कठिन, शिव। 'अघोर' का अर्थ है--भयहीन, अकठिन (सहज), शिव। अतः 'अघोर' का अर्थ 'तन्त्र' में शिव और सहज है। 'घोर' भी शिव ही है। तन्त्र-शास्त्र में उल्लेख है--

अघोरेभ्यो अथ घोरेभ्यो घोर-तरेभ्यो शर्वेभ्यो सर्व-शर्वेभ्य नमस्ते अस्तु रुद्र-रूपेभ्यो।

साधना-क्रम में सिद्धि-सोपान के जो स्तर बनते हैं, उस क्रम में वाम के ऊपर दक्षिण, दक्षिण के ऊपर कौल, कौल से ऊपर की साधना और सिद्धि है 'अघोर'। 'अघोर'-साधना अर्थात् जहाँ साधक के लिए कुछ अलभ्य या कठिन न रह जाए। ऊँचे पर्वत की गुफा में कोई तन्त्र-साधक साधन-शील है। वहाँ उसे भोजनादि या अन्य वस्तुओं की आवश्यकता है। बिना परिश्रम के ही इच्छा-मात्र से जब साधक को सब कुछ अभीप्सित उपलब्ध होने लगे, तो उस सिद्धि को 'अघोर-सिद्धि' कहते हैं। इस मार्ग को 'अघोर-मार्ग' कहते हैं। इस मार्ग के साधक को 'अघोरी' (अघोरिन्) कहते हैं। आज 'अघोरी' शब्द

समाज में पूरी तरह तिरस्कृतार्थक है। 'अघोरी' अर्थात् अपवित्र, मल-मूत्रादि-युक्त, दुर्गन्धि-युक्त, कुष्ठ-रोगादि-ग्रस्त इत्यादि अर्थ का वाचक शब्द है। 'अघोरी' से ही 'औघड़' शब्द बना है। 'औघड़' अर्थात् कापालिक साधक तान्त्रिक, जो श्मशान-साधना करता है। साथ ही वह व्यक्ति, जो सदैव निर्धन रहता है। समाज में भिक्षाटन के माध्यम से वह भोजन-सामग्री का संग्रह कर पाता है। वह बात-बात पर क्रोध करनेवाला होता है। उसकी पोशाक भी घिनौनी होती है। 'औघड़' और 'अघोरी' का पूर्णतः अर्थाप-कर्ष हो गया है। 'तन्त्र' का परमोच्च गौरवास्पद शब्द 'अघोरी' समाज की सड़कों पर घृणास्पद हो गया!

'पञ्च-मकार' को लेकर तन्त्र-शास्त्र में विस्तृत उल्लेख और विवाद दोनों मिलता है। पञ्च-मकार के अन्तर्गत मद्य, मांसादि पाँच मकार से प्रारम्भ होनेवाले तत्वों का उल्लेख है। इन शब्दों में द्वयर्थि-भाव और श्लेष है। किन्तु समाज ने इनका सामान्यार्थ ही ग्रहण कर तान्त्रिकों में 'पञ्च-मकार'-प्रधान 'वाम-मार्ग' की भर्त्सना की, यद्यपि 'वाम-मार्ग' शब्द का भी अपना विशिष्ट अर्थ है। सुदूर पूर्व असम, बङ्गाल आदि क्षेत्रों में साधित 'पञ्च-मकार' बदनाम हो गया, पर सुदूर पश्चिम के 'पञ्च-ककार' (केश, कड़ा, कंघा, कच्छा और कटार) की महिमा हो गई! समाज ने 'पञ्च-ककार' की प्रशंसा की, किंतु 'पञ्च-मकार' उपेक्षित साधन हो गया। तात्पर्य यह कि भावनाओं से लोक (समाज) ईश्वर के प्रति आस्था-शील होता है, किन्तु प्रयोग की दृष्टि से वह शुद्ध भौतिकता-वादी और वर्तमान-वादी होता है। बहुत स्पन्दन-शील होने पर वह भक्ति-शील बन सकता है, पर कठिन साधक, तपस्वी, कठोर अनुष्ठान-कर्ता वह बनना चाहता नहीं। यह लोक-मानस है। यही कारण है कि तुलसीदास से कहीं अधिक प्रतिभा, साधना और लौकिकता रखनेवाले मत्स्येन्द्रनाथ-गोरखनाथ लोक-स्वीकृत नहीं हो सके, जबकि तुलसीदास अपने भक्ति-पक्ष, लोक-भाषा, सहज-स्वाभाविकता तथा लोक-ग्राह्य कथा-बिम्बों के कारण अधिक लोक-प्रसिद्ध हो गए।

'यन्त्र-मन्त्र' का तद्भव 'जन्तर-मन्तर' आदर-सूचक समास नहीं रह गया है। 'जन्तर-मन्तर' जादू-टोने और टोटके का अर्थ रखनेवाला शब्द-समास बन गया। इसके साथ ग्राम्यता या गँवारूपन का भी भाव जुड़ा है।

'अर्गला'—'अनर्गल' शब्द का विपरीतार्थ

'दुर्गा सप्तशती' तन्त्र का सर्वाधिक लोक-प्रसिद्ध और लोक-सिद्ध ग्रन्थ है। इसके आरम्भ में कवच, अर्गला और कीलक के पाठ का विधान है। आधुनिक काल में मन्त्र अभिशप्त, कीलित और अर्गला-बद्ध-बन्द हैं। उन मन्त्रों का विधान-पूर्वक शापोद्धार (शाप-मुक्ति), उत्कीलन (कील को उखाड़ना) और अन्+अर्गला=अनर्गल, अर्गला=छिटकिनी—रुकावट) से मुक्ति कराना होता है। इन तीनों में 'अनर्गल' शब्द अर्थ-च्युत हो गया। 'अर्गला' बन्धन या रुकावट है, जिससे द्वार बन्द होते है। उसे खोलना ही 'अनर्गल-कर्म' है। अतः 'अनर्गल' का मूलार्थ है—निर्बाध करना, रुकावट हटाना। आज 'अनर्गल' का अर्थ है—बेमतलब, वाहियात, अण्ट-सण्ट!

'तन्त्र' शब्द का संकुचित प्रयोग

'तन्त्र' शब्द का स्वतन्त्र-रूप अर्थ-स्खलित अवश्य हो गया है, पर समास के साथ 'तन्त्र' का समाज-स्वीकृत प्रयोग मिलता है। जैसे—लोक-तन्त्र, प्रजा-तन्त्र, राज-तन्त्र, शासन-तन्त्र, जीवन-तन्त्र

इत्यादि, किन्तु यहाँ इन समस्त पदों में 'तन्त्र' का अर्थ-सङ्कोच हो गया। 'तन्त्र' के अनेक अर्थों में यहाँ केवल 'मार्ग', 'पद्धति' या 'पन्थ' अर्थ ही स्वीकृत हैं।

'वज्र', 'प्रपञ्च' शब्दों का विपरीतार्थ

'वज्र' भी 'तन्त्र' का सार-गर्भ और अनेकार्थी पारिभाषिक शब्द है। इसी से बौद्ध-मत का 'वज्र-यान' शब्द-समास निर्मित है। 'वज्र-यान' से तन्त्र-साधना की अनेक प्रणालियाँ निकलीं। 'वज्र' से ही 'वज्रौली' शब्द बनता है, जो तन्त्रासन की उच्च साधना समझी जाती है। 'वज्रासन' भी एक विशिष्ट आसन है। 'वज्र' का अर्थ यदि कुलिश है, तो रत्न-शिरोमणि हीरक भी। 'वज्र-साधना' में अनुशासन और तपस्या की कठोरता है, तो सिद्धि-गत उसकी सर्वोच्चता भी। इस शब्द का लोक-भाषा में रूप हो गया—'बज्जर'। यह 'बज्जर' प्रति-निविष्ट और कठोर का प्रति-रूप हो गया। यह 'वज्र' शब्द सामान्य व्यवहार में केवल मूर्ख का विशेषण बनकर आता रहा—'वज्र-मूर्ख'। यहाँ वज्र-मूर्ख का अर्थ अति-मूर्ख तो हो ही गया, ध्वन्यर्थ यह भी है कि 'वज्र-यानी' तान्त्रिक महा-मूर्ख हैं। वज्र-पण्डित का प्रयोग लोक-स्वीकृत नहीं हो सका।

'तन्त्र' का एक दार्शनिक शब्द है 'प्रपञ्च'। पञ्च-तत्व-निर्मित और पञ्च-मायावरण-आवृत पञ्च-कंचुकित विश्व को 'प्रपञ्च' कहा गया। पर 'प्रपञ्च'-व्याख्याता तान्त्रिकों को फरेबी कहा गया! इसलिए अर्थ-गर्भ दार्शनिक श्लिष्ट शब्द 'प्रपञ्च' का भी कालान्तर में अर्थ हो गया 'फरेब'। दक्षिण भारत में जहाँ 'तन्त्र' का प्रभाव अपेक्षा-कृत कम था, 'प्रपञ्च' शब्द आज भी सुरक्षित है। तेलुगु में विश्व को व्यवहार-भाषा में 'प्रपञ्च' ही कहते हैं।

अंगुष्ठ-प्रयोग का विपरीतार्थ

तान्त्रिक न्यास में 'अंगुष्ठ' की अपार महिमा है। कर-न्यास का आरम्भ ही 'अंगुष्ठ' से होता है—'अंगुष्ठाभ्यां नमः।' जप में माला पर 'अंगुष्ठ' अपरिहार्य है। अनेक मुद्रा-निर्माण में अंगूठे का अनिवार्य प्रयोग मिलता है। तात्पर्य यह कि कोई तान्त्रिक या तन्त्रोपासक है, तो उसे अंगुष्ठ-प्रयोग का प्रशिक्षित व्यक्ति साधक होना होगा। होते-होते 'अँगूठा दिखाना' मुहावरा बन गया, जिसका अर्थ नीचा दिखाना या चिढ़ाना हो गया। पश्चिम में 'अँगूठा दिखाना' (थम्स अप) विजय-सूचक आङ्गिक चेष्टा है।

'तर्पण', 'आचमनी' शब्दों का संकुचित प्रयोग

पूजानुष्ठान तथा पुरश्चरण-विधान के अन्तर्गत मन्त्र-जप-संख्या के दशांश हवन, हवन के दशांश तर्पण, तर्पण के दशांश मार्जन और मार्जन के दशांश विप्र-भोजन का निर्देश है। 'तर्पण' का अर्थ है, तृप्ति-दायक जलाञ्जलि। समाज ने 'तर्पण' शब्द को केवल मृतात्माओं की दी जानेवाली जलाञ्जलि के अर्थ में ही ग्रहण कर लिया। 'तर्पण' का एक ही समाज-स्वीकृत अर्थ बोध्य रह गया—पितृ-पक्ष में पितृ-तर्पण या पितरों के लिए प्रदत्त तर्पण।

तान्त्रिक पूजा-विधान में 'आचमनी' एक पूजोपकरण है। 'आचमनी' से 'चम्मच' शब्द व्युत्पन्न है। आज 'चम्मच' या 'चमचा' शब्द खुशामदी और स्वार्थ-साधक अनात्माभिमानी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होनेवाले शब्द बन गए हैं।

तन्त्र-साधक नाथों और सिद्धों ने अनेक क्रान्तिकारी कार्यों में एक काम यह भी किया कि वर्णाश्रम-व्यवस्था के भेद-भाव और आभिजात्य-सोपान-क्रम को अस्वीकृत कर शूद्र, अन्त्यज, अनभिजात

और तथा-कथित नीच जाति को समानवीय अधिकार देकर उन्हें गले लगाया और सिद्ध-साधक बनाया। उनके अनुयायियों में डोम, दुसाध, हल-खोर, श्वपच, रजक—सभी समाधिकार के साथ आ मिले। इन तांत्रिकों ने उनकी जाति और नामों का नवीन नामकरण-संस्करण किया। उदाहरण के लिए उन्होंने एक अन्त्यज जाति को 'डोम' कहा। 'डोम' अर्थात् जिसने 'ओम्' में अपने को डुबो लिया हो, वह 'डोम्'। अंत्यज जाति की एक शाखा को उन्होंने 'कृतज्ञ जाति' का अर्थ-व्यञ्जक नाम 'हलाल-खोर' (हल-खोर) दिया। किन्तु समाज ने इन्हें उन्हीं की अर्थावलि में अङ्गीकृत नहीं किया। आधुनिक काल में महात्मा गांधी ने भी गोरख-परम्परा में उनका नया नामकरण करते हुए 'हरिजन' कहा। किंतु 'हरिजन' का अर्थ समाज आज भी निम्न और अस्पृश्य ही करता है।

इस प्रकार धार्मिक द्वंद्व और विरुद्ध मतवाद के कारण, सामाजिक आक्रोश और लोक-परम्परा के आधार पर 'तंत्र' के कुछ परिभाषिक एवं अर्थ-गर्भ शब्द अपभ्रष्ट, तद्-भूत, अर्थापकृष्ट, अर्थान्तरित और यहाँ तक कि विपरीतार्थक हो गए। अब इन शब्दों में मूलार्थ-सन्निकर्ष सम्भव नहीं है। इस प्रसङ्ग में नवीन शब्दों का निर्माण तो सम्भव है, पर अर्थापकृष्ट और शब्दापभ्रष्ट शब्दों में नवीन संस्कार सम्भव नहीं है।

आधुनिक विश्व ने 'तंत्र' की महिमा को फिर से स्वीकार किया है। इस धरातल पर अनेक अनुसंधान, प्रयोग और साधनाएँ हो रही हैं। 'तंत्र' एक सम्पूर्ण जीवन-दर्शन है। यह शारीरिक स्वास्थ्य से लेकर मोक्ष-प्राप्ति तक का संविधान एवं प्रयत्न करता है। केश काले करने के उपाय से लेकर कुण्डलिनी-जागरण की विधियाँ एवं प्रक्रियाएँ तंत्र-शास्त्र के प्रतिपाद्य विषय हैं। यह एक वैज्ञानिक और अनुभूत जीवन-शैली है। इसलिए 'तंत्र' का वर्चस्व कभी समाप्त नहीं होगा, बल्कि जैसे-जैसे समय बीतता जाएगा, 'तंत्र' की प्रयोग-शाला में नए-नए प्रयोग और नए-नए आविष्कार होते रहेंगे। कोई वसुगुप्त, कोई अभिनवगुप्त, कोई मस्त्येन्द्रनाथ, कोई गोरखनाथ फिर-फिर उत्पन्न होंगे और 'तंत्र' की महिमा पुनः प्रतिष्ठित होगी।

(पृष्ठ ६६ का शेषांश)

पण्डित देवीदत्त जी शुक्ल की आध्यात्मिक उच्चता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। तन्त्र-शास्त्र का इतना व्यापक ज्ञान शुक्ल जी को था कि सन् १९४२ से १९७२ तक तीस वर्षों तक वे 'चण्डी' में उस दुर्बोध विषय पर सरल हिन्दी भाषा में धारा-प्रवाह लिखते ही रहे। उस सबको देखकर चकित रह जाना पड़ता है।

आज के दिन हम सादर अपने इन महान् पूर्वज शुक्ल जी को सादर स्मरण; नमन करते हैं। यह इस रूप में सारस्वत तर्पण है और हमारी कामना है कि शुक्ल जी ने साहित्य और अध्यात्म के क्षेत्र में जो अनूठे आदर्श स्थापित किए हैं, उन्हें हम आगे बढ़ाने और विकसित करने में समर्थ हों।'

'श्रद्धेय शर्मा जी के उद्घाटन-भाषण के बाद मुख्य वक्ता पण्डित रामजी मिश्र 'मनोहर', सम्पादक 'आर्यावर्त' ने शुक्ल जी के कृतित्व पर प्रकाश डाला। उनके बाद वयोवृद्ध साहित्यकार पण्डित प्रफुल्लचन्द्र जी ओझा 'मुक्त' ने अपने मार्मिक अध्यक्षीय भाषण द्वारा आचार्य द्विवेदी/शुक्ल जी की निःस्पृह पत्रकारिता की परम्परा का सम्यक् परिचय कराया। साथ ही 'बिहार में शक्ति-साधना' नामक पुस्तिका का विमोचन भी किया। अन्त में पण्डित गोविन्दशरण जी उपाध्याय ने उपस्थित सभी महानुभावों को गोष्ठी में भाग लेने के लिए धन्यवाद दिया।※

※स्थानाभाव से यहाँ संक्षिप्त विवरण ही प्रकाशित किया गया है। विस्तृत विवरण जो पाठक जानना चाहें, वे कृपया 'सम्पादक की वाणी' मँगाकर उसमें पढ़ सकते हैं।

दुर्लभ पाण्डुलिपि के आधार पर

श्रीशीतला-कवचम्

प्रेषक : वैद्य पण्डित कृष्णानन्द मिश्र, ककरा, पो० हनुमानगंज, प्रयाग

पार्वत्युवाच—

भगवन्, सर्व-धर्मज्ञ, सर्व - शास्त्र - विशारद ! शीतला-कवचं ब्रूहि सर्व-भूतोपकारकं ॥१
वद शीघ्रं महादेव ! कृपां कुरु ममोपरि । इति देव्याः वचं श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा महेश्वरः ॥२
उवाच वचनं प्रीत्या तत् शृणुष्व मम प्रिये ! शीतला-कवचं दिव्यं शृणु मत्-प्राण-वल्लभे ॥३

ईश्वर उवाच—

शीतला-सार-सर्वस्वं कवचं मन्त्र-गर्भितं । कवचं विना जपेत् यो वै नैव सिद्धयन्ति कलौ ॥४
धारणादस्य मन्त्रस्य सर्व-रक्षा-करं नृणाम्, कवचस्यास्य देवेशि ! ऋषिर्प्रोक्तो महेश्वरः ।
छन्दोऽनुष्टुप् कथितं च देवता शीतला स्मृता, लक्ष्मी-वीजं रमा शक्तिः तारं कीलकमीरितं ॥५
लूता-विस्फोटकादीनि शान्त्यर्थे परि-कीर्त्तितः, विनियोगः प्रकुर्वीत पठेदेकाग्र - मानसः ॥६

विनियोग—ॐ अस्य शीतला - कवचस्य श्रीमहेश्वर ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीशीतला भगवती देवता, श्रीं बीजं, ह्रीं शक्तिः, ॐ कीलकं, लता-विस्फोटकादि-शान्त्यर्थे पाठे विनियोगः ।

ध्यानम्—उद्यत्-सूर्य निभां नवेन्दु-मुकुटां सूर्याग्नि-नेत्रोज्ज्वलाम्,
नाना-गन्ध-विलेपनां मृदु-तनुं दिव्याम्बरालंकृताम् ।
दोर्भ्यां सन्दधतीं वराभय-युगं वाहे स्थितां रासभे,
भक्ताभीष्ट - फल-प्रदां भगवतीं श्रीशीतलां त्वां भजे ॥१

कवचं—ॐ शीतला पातु मे प्राणे रुनुकी पातु चापाने ।
समाने झुनुकी पातु उदाने पातु मन्दला ॥
व्याने च सेढला पातु मनुर्मे शङ्करी तथा ।
पातु मामिन्द्रियान् सर्वान् श्रीदुर्गा विन्ध्य-वासिनी ॥२
ॐ मम पातु शिरो दुर्गा कमला पातु मस्तकम् ।
ह्रीं मे पातु भ्रुवोर्मध्ये भवानी भुवनेश्वरी ।
पातु मे मधुमती देवी ॐकारं भृकुटी - द्वयम् ॥४
नासिकां शारदा पातु तमसा वर्त्म - संयुतम् ।
नेत्रौ ज्वालामुखी पातु भीषणा पातु श्रुतिर्माम् ॥५

कपोलौ कालिका पातु सुमुखी पातु चोष्ठयोः ।
सन्ध्ययोः त्रिपुरा पातु दन्ते च रक्त - दन्तिका ।।६
जिह्वां सरस्वती पातु तालुके च वाग् - वादिनी ।
कण्ठे पातु तु मातङ्गी ग्रीवायां भद्र-कालिका ।।७
स्कन्धौ च पातु मे छिन्ना ककुभे स्कन्द - मातरः ।
बाहु - युग्मौ च मे पातु श्रीदेवी बगलामुखी ।।८
करौ मे भैरवी पातु पृष्ठे पातु धनुर्धरी ।
वक्षः - स्थले च मे पातु दुर्गा महिष - मर्दिनी ।।९
हृदये ललिता पातु कुक्षौ पातु महेश्वरी ।
पार्श्वौ च गिरिजा पातु चान्न - पूर्णा तु चोदरम् ।।१०
नाभिं नारायणी पातु कटिं मे सर्व - मङ्गला ।
जङ्घयोर्मे सदा पातु देवी कात्यायनी पुरा ।।११
ब्रह्माणी शिश्नं पातु वृषणं पातु कपालिनी ।
गुह्यं गुह्येश्वरी पातु जानुनोर्जगदीश्वरी ।।१२
पातु गुल्फौ तु कौमारी पाद-पृष्ठं तु वैष्णवी ।
वाराही पातु पादाग्रे ऐन्द्राणी सर्व - मर्मसु ।।१३
मार्गं रक्षतु चामुण्डा वने तु वन - वासिनी ।
जले च विजया रक्षेत् वह्नौ मे चापराजिता ।।१४
रणे क्षेमङ्करी रक्षेत् सर्वत्र सर्व - मङ्गला ।
भवानी पातु बन्धून् मे भार्यां रक्षतु चाम्बिका ।।१५
पुत्रान् रक्षतु माहेन्द्री कन्यकां पातु शाम्भवी ।
गृहेषु सर्व - कल्याणी पातु नित्यं महेश्वरी ।।१६
पूर्वे कादम्बरी पातु वह्नौ शुक्लेश्वरी तथा ।
दक्षिणे करालिनी पातु प्रेतारूढा तु नैऋते ।।१७
पाश - हस्ता पश्चिमे पातु वायव्ये मृग - वाहिनी ।
पातु मे चोत्तरे देवी यक्षिणी सिंह - वाहिनी ।
ईशाने शूलिनी पातु ऊर्ध्वे च खग - गामिनी ।।१८
अधस्तात् वैष्णवी पातु सर्वत्र नारसिंहिका ।
प्रभाते सुन्दरी पातु मध्याह्ने जगदम्बिका ।।१९

सायाह्ने चण्डिका पातु निशीथेऽत्र निशाचरी ।
निशान्ते खेचरी पातु सर्वदा दिव्य - योगिनी ।।२०
वायौ मां पातु वेताली वाहने वज्र - धारिणी ।
सिंहा सिंहासने पातु शय्यां च भग - मालिनी ।।२१
सर्व - रोगेषु मां पातु काल-रात्रि-स्वरूपिणी ।
यक्षेभ्यो यक्षिणी पातु राक्षसे डाकिनी तथा ।।२२
भूत - प्रेत - पिशाचेभ्यो हाकिनी पातु मां सदा ।
मन्त्रं मन्त्राभिचारेषु शाकिनी पातु मां सदा ।।२३
सर्वत्र सर्वदा पातु श्रीदेवी गिरिजात्मजा ।
इत्येतत् कथितं गुह्यं शीतला - कवचमुत्तमम् ।।२४
ब्रह्म - राक्षस - वेतालाः कूष्माण्डा दानवादयः ।
विस्फोटक - भयं नास्ति पठनाद् धारणाद्यदि ।।२५
अष्ट - सिद्धि - प्रदं नित्यं धारणात् कवचास्य तु ।
सहस्र - पठनात् सिद्धिः सर्व-कार्यार्थ - सिद्धिदम् ।।२६
तदर्धं वा तदर्धं वा पठेदेकाग्र - मानसः ।
अश्वमेध - सहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ।।२७
शीतलाग्रे पठेद् यो वै देवी - भक्तैक - मानसः ।
शीतला रक्षयेन्नित्यं भयं क्वापि न जायते ।।२८
घटे वा स्थापयेद् देवीं दीपं प्रज्वाल्य यत्नतः ।
पूजयेत् जगतां धात्री नाना गन्धोपहारकैः ।।२९
अदीक्षिताय नो दद्यात् कुचैलाय दुरात्मने ।
अन्य - शिष्याय दुष्टाय निन्दकाय दुरार्थिने ।।३०
न दद्यादिदं वर्म दिव्यं प्रमत्तालाप - शालिने ।
दीक्षिताय कुलीनाय गुरु-भक्ति - रताय च ।।३१
शान्ताय कुल - शाक्ताय शान्ताय कुल - कौलिने ।
दातव्यं तस्य देवेशि ! कुल - वागीश्वरो भवेत् ।।३२
इदं रहस्यं परमं शीतला - कवचमुत्तमम् ।
गोप्यं गुह्य-तमं दिव्यं गोपनीयं स्व-योनि-वत् ।।३३

मूल-मन्त्र : ॐ श्रीं ह्रीं ॐ

।। श्रीईश्वर-पार्वती-सम्वादे शक्ति-यामले शीतला-कवचं सम्पूर्णम् ।।

श्रद्धाञ्जलि

श्री कन्हैयालाल र० दवे, बी० ए०

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

परम पूज्य श्री १०८ महाराज बाबाश्री का अवसान १४ नवम्बर १९५४ को हुआ। पवित्र अस्थि-विसर्जन करने के लिये जब सब मण्डली पवित्र काशी को जा रही थी, उस समय प्रयाग से 'चण्डी' मासिक के सम्पादक श्री रमादत्त जी मिले। वे भी हमारे गुरु-बन्धु हैं। उन्होंने प्रथम विचार प्रदर्शित किया कि 'मण्डली के सब बहन व भाई अपने सम्बन्ध और अनुभव के लेख लिखें और इस प्रकार 'चण्डी' का एक बिशेष अङ्क निकाल कर परम पूज्य बाबाश्री को श्रद्धाञ्जलि दी जाय, तो बड़ा अच्छा हो।'

इस विचार से सबने सहमति प्रगट की। फिर तो क्या बताऊँ! श्री रमादत्तजी की विद्युत्-सम लेखिनी चली और सब मण्डली को उनके पत्र आये और स्मारक पत्र भी आने लगे। अन्त में मुझे भी कुछ लिखने की प्रेरणा हुई कि परम पूज्य श्री १०८ बाबाश्री महाराज का और मेरा सम्बन्ध कब हुआ और क्या-क्या स्मृतियाँ स्मरण-पट पर हैं। अतः यह लेख लिखने का प्रयत्न करता हूँ।

पहले पहल १९२१ के नवम्बर में परम पूज्य श्री के सम्बन्ध में अपने गुरु-बन्धु चि० रमाशङ्कर से मैंने कुछ सुना। बाद में जनवरी १९२२ में जब मेरा बनारस जाना हुआ, तब विशेष मालूम हुआ। उस समय से दर्शन की उत्कण्ठा हुई। अपनी पत्नी के अवसान से इस समय मेरा चित बहुत दुःखी और चिन्ता-ग्रस्त था तथा मन में बड़ी अशान्ति थी। अतः दर्शन पाये बिना ही परम पूज्य श्री को मैं पत्र लिखने लगा और उन पत्रों का उत्तर वे चि० रमाशङ्कर द्वारा, जो पूज्यश्री के शिष्य थे, लिखकर भेजने लगे।

मन की शान्ति के लिये बाबाश्री ने 'गणेश-जननि' का एक उत्तम चित्र पसन्द करके मुझे भेजा और 'देवी-सूक्त' का पाठ करने की आज्ञा की। इस आज्ञा का नियमित रूप से पालन करने पर मुझे बड़ी शान्ति का अनुभव हुआ।

इस बीच मैं पत्र द्वारा उनसे मुम्बई पधारकर दर्शन देने के लिये बराबर विनती करता रहा। अन्त में मेरी बिनती स्वीकार कर ९-४-१९२३ के रोज दोपहर में पधारने का तार मिला। मेरे पूज्य पिताजी आठ दिन से बहुत बीमार थे। तार सुनते ही मुझसे कहा—'अच्छा हुआ, आते हैं, मुझे दर्शन होगा।' लेकिन उसी रोज तार मिला कि ता० १० को पधारेंगे।

मेरे पिता जी का अवसान ता० ९-४-२३ को ही शाम को हुआ। यह बात रास्ते में पूज्यश्री को मालूम हो गई होगी। फौरन किसी स्टेशन पर उतर गये और कहा 'कल जायँगे।' साथ में चि० रमाशङ्कर और उनकी बहन भी आ रही थीं। रास्ते में क्यों उतरे, इसका कारण उनको नहीं बताया। जब दूसरे

दिन मुम्बई आये, तब हमारे पिता के अवसान की बात जानकर उन्हें पता चला कि इसी कारण रास्ते में रुक गये थे।

भव्य तेजोमय प्रसन्न-वदन, योग-सम्पूर्ण उज्ज्वल शरीर की कान्ति, सरल मधुर वाणी, गौर सुन्दर वर्ण, बड़े घुंघराले सुन्दर बाल और छोटी-सी दाढ़ी। देखते ही हृदय में एक ऐसी भावना स्फुरित हुई जिसका शब्दों में वर्णन नहीं कर सकता। उनके प्रति पूज्य-भाव और गुरु भाव इतने जोर से जागृत हुआ कि मेरे मन में उसी समय निश्चय हो गया कि पूज्यश्री से मेरा कुछ पुराना सम्बन्ध होना ही चाहिये। इसी समय प्रथम दर्शन और प्रथम चरण-स्पर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

परम पूज्य बाबाश्री स्नानादि से निवृत्त हुए और घर के सब कमरे देखने को पधारे। फिरते-फिरते मेरे पिता जी का कमरा आया। तब अन्दर जाकर जिस जगह पर मेरे पिता जी को अन्तिम समय रखा गया था, उसी जगह के समीप खड़े रहकर अपना मृग-चर्मासन लाने की आज्ञा दी और ठीक उसी जगह पर उसे बिछवाया। वहाँ विराज कर दो घण्टे तक सर्वाङ्गासन से समाधिस्थ रहे। यह प्रथम प्रसङ्ग देखने को मिला।

'हरि ॐ' पुकार कर जागृत हुये। प्रेम-भरे स्मित-वदन से रस-मय मुग्ध-वाणी से जीव के सम्बन्ध में जो उपदेश किया, वह लिखने में समर्थ नहीं हूँ क्योंकि प्रथम प्रसङ्ग और सुनने में दत्त-चित्त होने से लिख लेने को याद भी नहीं रहा।

पिता जी की उत्तर-क्रिया करने के लिये मुझे १४ दिन के लिये गुजरात जाना पड़ा। पूर्ण व्यवस्था करके मैं गया।

एक दिन रहने के बाद परम पूज्य श्री की एकान्त जगह में रहने की इच्छा होने से मेरी अनुपस्थिति में मेरे सम्बन्धियों ने मलाड में उनके ठहरने का प्रबन्ध किया। २७ एप्रिल को मैं दर्शन को गया। उस समय मुझे घर बदलना था। ११ मई १९२३ को मेरे नये स्थान पर पधार कर मुझे कृतार्थ किया, घर पावन किया और घर की सब मण्डली को आशीर्वाद मिला। १२ मई १९२३ को अपने प्रिय शिष्य श्री रमाशङ्कर से मेरी बड़ी लड़की की शुभ सगाई करने में मुझे पूर्ण सहायता दी।

सायं-काल के समय रोज मोटर में बाहर पधारते थे। एक दिन महा-लक्ष्मी पर मोटर में विराजमान थे। दूसरे लोग जो साथ थे, वे जरा घूमने चले गये। मैं अकेला परम पूज्य श्री के पास रह गया। परम पूज्य बाबाश्री के देह के विषय में कुछ अधिक ज्ञान मिले, ऐसी जिज्ञासा से मैंने परम पूज्य श्री से प्रार्थना की।

प० पू० बाबाश्री ने फरमाया कि 'इस प्रश्न से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। इस देह के साथ तुम्हारा बड़ा प्राचीन सम्बन्ध है। इसका पुराना इतिहास मैं बड़ी खुशी से बतलाता हूँ।'

तदनन्तर उन्होंने प्रेम से परम-पूज्य बाबाश्री का देह कैसे दिव्य तत्वों का बना है: जन-कल्याणार्थ भूमि पर क्यों जन्म लिया है और इस देह में सेवा करने के लिये कैसे-कैसे दैवी पुरुष और शक्तियाँ पधारती हैं तथा किस तरह क्यों पधारती हैं, यह सब समझाया और कहा कि भविष्य में विशेष अनुभव होगा। तुम्हारा अहो-भाग्य है कि तुम्हें देह की सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है और तुम्हारा कल्याण होगा। पूर्ण श्रद्धा और निःशङ्का से सेवा करना तथा जिज्ञासु रहकर देह की सब कार्य प्रवृत्तियों में रस लेकर यथा-शक्ति सर्व प्रकार सेवा करना व आज्ञा-पालन करना।'

यह अन्दर का रहस्य मालूम होने के बाद एक विचित्र प्रकार का मुझमें परिवर्तन हुआ। दो

दिन के बाद मालूम हुआ कि यह सब बात बतानेवाले और शिक्षण देनेवाले मेरे गुरु-देव ही थे, जिन्होंने मुझे २० मई १९२३ को मेरी प्रार्थना पर दीक्षा दी और अपना बनाकर पावन किया।

इस लेखक का परम पूज्य बाबाश्री के सम्बन्ध का ३१ वर्ष का समय उषा-काल की तरह बीत गया। इस समय के बीच मुझे जो-जो अनुभव हुआ, जो-जो सहायता मिली और समय पर जो रक्षण हुआ, उस सबका वर्णन लिख नहीं सकता। यह लिखने में मेरी ही दशा लिखने जैसी हो जायगी लेकिन इतनी बात निःसंशय है कि दिव्य देह में क्रिया तो सदैव चलती ही रहती थी।

दिव्य देह में महान् दैवी व्यक्ति पधारकर इस भू के ऊपर का कार्य और दूसरे सप्तकों के साथ इस सप्तक में उसकी सङ्कलना करते थे। यह सब दिव्य देह के समीप रहनेवाले व्यक्तियों को भिन्न भिन्न रूप से अनुभव होता रहता था। कार्य से रात भर जाग्रत् रहकर मात्र ब्राह्म-मुहूर्त के समय दिव्य देह दो-तीन घण्टे विश्राम पाती थी। देह से समय-समय पर उपदेश का जो निर्मल प्रवाह बहता था उसके आनन्द में मग्न होकर मुग्ध होने का अवसर प्रत्येक उपस्थित व्यक्ति को मिलता था।

२६ जून १९२३ को पूज्य श्री कटनी पधारे और वहाँ से पत्र द्वारा मेरी बड़ी लड़की के विवाह के सम्बन्ध में प्रेम-मय उपदेश लिखकर सब समस्याओं का उत्तर देकर रास्ता बताते रहे। २६ जुलाई १९२४ को एकाएक बिना खबर दिये नासिक से एक छोटे से कपड़े में बँधा हुआ पुस्तकों का एक बंडल लेकर मुम्बई पधारने की कृपा की। २१ अगस्त १९२४ को मलाड से फिर नासिक पधारे। वहाँ मैं गया। २४ सितम्बर १९२४ को मुम्बई पधार कर रात्रि को बोरीवली गये और २९ सितम्बर से मुम्बई में पहली बार नवरात्र करने को एकान्त बँगले में ऊपर के एक कमरे में, जिसके चारों ओर एक छोटी सी खुली छत थी और द्वार के सम्मुख एक बड़ी बारादरी थी, विराजमान हो गये।

कमरे के बीच में बड़े दरवाजे के सम्मुख मध्य में चार अंगुल ऊँचा पीठ बनवाया और उसके ऊपर ज्वलित अग्नि स्थापित की। थोड़ा कोयला अग्नि के ऊपर रखवा दिया। अन्य काष्ठ, कोयला आदि सब हटवा दिया। एक छोटे कुम्भ में पानी रखवाया और मात्र मृग-चर्मासन बिछाकर सब दरवाजे बन्द करके आठ दिन के लिये वहाँ बैठ गये।

मैं रोज सवेरे नवरात्र की पूजा करके सात बजे आ जाता था और बाहर बारादरी में सीढ़ी के पास एक छपरे के नीचे जप करने बैठता था। वहाँ से रात को आठ बजे चला जाता था। रात में दूसरे दो शिष्यों के रहने का प्रबन्ध किया गया था। पहिले दिन नीचे से तुलसी का पानी बना कर स्वच्छ पात्र में लाया। प्रथम परिचय होने से किवाड़ खटखटाने का साहस नहीं हुआ। दरवाजे पर टप-टप हलकी ध्वनि करके आवाज की। जवाब नहीं मिला। फिर एक बार वैसा ही किया, तो भी जवाब नहीं मिला। तीसरी बार जरा साँकल खड़खड़ा कर विक्षेप किया। तब अन्दर से पादुका की आवाज आई। दरवाजा खुला और सामने भव्य तेजोमय क्रोधायमान मूर्ति का दर्शन होते ही प्रणाम किया। डर तो गया, लेकिन हाथ जोड़कर विनती की, 'बाबा, कुछ लिया नहीं है। तुलसी का पानी लाया हूँ, कृपा कर लीजिये।'

कड़क कर उत्तर मिला 'ठहरो।' द्वार बन्द कर दिया। मैं बाहर खड़ा रहा। थोड़ी देर में द्वार फिर खोला। तब मैंने पुनः विनती की, 'प्रभु, ऐसा तो नहीं चलेगा। २४ घण्टे में कुछ तो लेना ही होगा। रोज इस समय दरवाजा खड़खड़ाऊँगा।' इस पर जरा हँसे और बोले, 'मैं कुछ लेता तो नहीं हूँ। आग्रह है तो अच्छा, यह तुलसी का पानी रोज इस समय लूँगा।' दण्ड-वत् प्रणाम करके मैं बाहर चला आया और आठ दिन सब नियमित चला।

नवें दिन सवेरे विसर्जन करने की आज्ञा की थी। कोयला आदि तो कुछ अन्दर था नहीं, तो भी अग्नि जैसी-की-तैसी बनी थी। अग्नि में घृतादि आहुति दिलवाई, पूजन करवाया और विसर्जन किया। दूसरे दिन स्नानादि करके थोड़ा-सा फल का रस लेकर मलाड पधारे। ८ अक्टूबर १९२४ से २० दिन वहाँ ठहरे। उस समय 'प्रेम-तरङ्ग' और 'दर्शन एकाग्रता भाव' शीर्षक दो बड़ी गजलें (श्री 'भैरवोपदेश' में उक्त गजलें छपी हैं) लिखीं। वहाँ रोज उपदेश होता था।

२८ अक्टूबर को मुम्बई पधार कर दूसरें दिन दीपोत्सव की प्रतिपदा को बनारस पधारे। इस वर्ष दिसम्बर में मुझे बनारस जाने का अवसर मिला। वहाँ परम पूज्य श्री के पास अधिक समय रहने का लाभ मिला। बनारस की मण्डली के दर्शन हुये, सत्सङ्ग हुआ, पूजन-अर्चनादि करने का पहला अवसर प्राप्त हुआ। यहाँ एक बात बताने की आवश्यकता है कि परम पूज्य श्री एक स्थान में तीन मास से अधिक नहीं रहते थे। दूसरे स्थान पर अवश्य चले जाते थे। इस नियम का पालन वे सदा करते थे। केवल इसी साल एक जगह अधिक ठहरे।

सन् १९२४ के पहले से परम पूज्य बाबाश्री की देह पर समग्र सप्तक का काल-विष डाला जाता था और देह की सेवा करने को भैरवों में से कोई-न-कोई रहते थे। इस विष का अमृतीकरण करके विश्व के उपयोग में लिया जाता था। यह क्रिया वर्षों तक चली और परम पूज्य बाबाश्री की देह एक मध्यस्थ केन्द्र रही। उस समय देह की सेवा करने, विष का पृथक्करण करने, क्रिया देखने या सीखने के लिये महान् व्यक्तियाँ—महा-शक्तियाँ आदि निवास करके कार्य कर जाती थीं। यह क्रिया फैलती ही गई। दूसरे और सप्तक हैं, ऐसा मालूम हुआ। उन सब सप्तकों को शामिल करते गये और इस प्रकार महा-प्रभु शरभ की सहायता से कोटि सप्तकों का समूह एकत्र हुआ और परम पूज्य भगवान् महा-काल के नये काल-चक्र के नीचे सबको लिया गया।

१९२७ के जून में परम पूज्य श्री के साथ बनारस से कलकत्ते होकर रायपुर जाने को मिला। वहाँ रायपुर की मण्डली के सब भाई-बहनों के दर्शन हुये। वहाँ से पूज्य श्री के साथ महा-नदी के उदगम के पास शिवपुर जङ्गल में माई का स्थान है और शिवालय है, वहाँ एकान्त स्थान में रहने का अवसर मिला। वहाँ धर्म-शाला थी, पर उसमें नहीं ठहरे। किनारे से जरा दूर माई का स्थान था। वहीं परम पूज्य श्री ठहरे। खुले द्वार और माई की मूर्ति के सीधे हाथ पर परम पूज्य श्री का आसन रखा गया और मैंने अपना आसन मन्दिर के समीप खुले द्वार और माई के दाईं ओर दीवाल के समीप जरा दूर पर रखा।

दो रोज बाद एक दिन रात को द्वार के समीप अपना शिर हिलाते हुये एक व्याघ्र का दर्शन हुआ। उस समय इस शरीर की डर के मारे क्या अवस्था हुई होगी, वह यह लेख पढ़नेवाले सोच सकते हैं। मैं परम पूज्य बाबा श्री के उपस्थिति में किसी तरह हिम्मत कर चुपचाप पड़ा रहा। अब क्या होगा, यह विचार एक पल में आया था कि इतने में ही परम पूज्य बाबा श्री ने जोर से 'हुंकार' की आवाज दी और व्याघ्र महाशय शिर हिलाते-हिलाते पीछे हटकर चले गये! वह दृश्य आज भी जब याद आता है, तब शरीर जरा काँप जाता है। ऐसे हिंसक प्राणी को इतने निकट देखने का यह प्रथम अनुभव था।

परम पूज्य बाबा श्री को ऐसे भयङ्कर जङ्गलों में रहना, गुफाओं में समाधिस्थ समय व्यतीत करना, दरिया किनारे पर एकान्त जगह पर बैठना—यह सब बहुत पसन्द था। पहले भी आबू के जङ्गल में बहुत समय रहे थे। मुम्बई-निवास के समय कार्य-वशात् रोज रात को किसी भी ऋतु में जुहू, बरसोवा, घाटकूपर, बोरीवली, लोनावला, माथेरान, महाबलेश्वर के जङ्गलों में रहना उन्हें बड़ा प्रिय

था। ऐसे समय जिनके भाग्य थे, वे सब साथ में जाते थे। रोज का जागरण होते हुए भी साथ में जाने-वाले सब व्यक्तियों का शरीर उत्साही कार्य-मय जीवन में लगा रहता था।

सन् १९२७ में परम पूज्य बाबा श्री जब बरसोवा बोरीवली और घाटकूपर में कार्य-निमित्त ठहरे थे, उस समय घाटकूपर में 'श्री भैरवोपदेश' लिखने की कृपा की। यह पुस्तक-रूप में सन् १९४३ में गुजराती में प्रसिद्ध हुआ और इसका हिन्दी-अनुवाद सन् १९५२ में प्रकट हुआ। 'उपदेश मुक्तावली' के बीज यहीं से पोये गये। वृक्ष रूप से होकर उसके फल गीता के रूप में १५०० भजन हुये हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को उपदेश-पत्र लिखे गये।

सन् १९२८ में नारायण सरोवर, कच्छ मांडवी, भुज, जामनगर, अहमदाबाद, बडोदरा होकर मुम्बई पधारे। आते समय बीच में अहमदाबाद उतरने की इच्छा हुई। परम पूज्य श्री को मालूम होगा कि मैं बीमार होनेवाला हूँ। एक मित्र के यहाँ ठहरे। उसी दिन रात को जब मुझे ऐसा कड़ा ज्वर आया कि जैसा कभी नहीं आया था, तब पता चला कि क्यों अहमदाबाद ठहर गये। सबेरे सुदर्शन चूर्ण मँगवाकर उसका काढ़ा बनवाकर दिया। पाँच रोज में ज्वर उतरा, तब मुझे बडोदरा ले गये। पहले बहुत वर्षों पूर्व परम पूज्य बाबा श्री की देह वहाँ के एक कालेज में पढ़ती थी। वहाँ मेरी अनेक समस्याओं का समाधान करके मुझे वहाँ छोड़कर स्वयं मुम्बई पधारे।

सन् १९२५ में जब आबू पधारे थे, तब बाल-बच्चों सहित मेरे जामातृ श्री राम जी, मेरी बड़ लड़की, सौ० मुक्ता और अन्य दो-चार व्यक्ति – कुल बारह-पन्द्रह व्यक्तियों की मण्डली साथ में थी। देवी-मन्दिर में नीचे धर्मशाला में भयङ्कर वन में सब ठहरे थे। पास में टेकरी के ऊपर एक गुफा में परम पूज्य बाबा श्री दस दिन समाधिस्थ रहे। उस समय सिरोही की महाराणी श्री को दर्शन मिले। महारानी श्री ने सबको एक दिन अपने महल में आने का निमन्त्रण दिया। वहाँ परम पूज्य बाबा श्री ने उपदेश किया। महाराणी श्री की दो कुमारियाँ वहाँ थीं। बड़ी कुमारी ने अच्छा विवाह, सत्ता, बालकों का सुख, आदि माँगा और छोटी लड़की ने माँगा कि इस परतन्त्रता से छूट जाऊँ। समय आने पर बड़ी कुमारी जामनगर की महाराणी हुईं और सुख-सम्पत्ति-सत्ता-परिवार सुख का अनुभव किया और छोटी कुमारी का जिस दिन लग्न होनेवाला था, उसी दिन ३१-१-१९२९ को प्रातःकाल उसका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार दोनों की मनोवांछायें पूरी हुईं।

सन् १९२९-३० में बनारस पधारे। काशी से सुपण्डित शिष्यों को साथ में मुम्बई लाये और भारत की स्वतन्त्रता के लिये १३ अप्रैल १९३० को खार में प्रथम अनुष्ठान प्रारम्भ किया। उसमें मुझे बैठने की आज्ञा की। एक मास में १२ मई १९३० को अनुष्ठान पूर्ण हुआ। इस समय रात्रि के कार्यक्रम के बाद रात भर भजन चलता था।

१३ मई १९३० को दूसरे अनुष्ठान की तैयारी हुई। विशाल मण्डप बाँधा गया। एक ओर भू के ऊपर श्रीबाला-गर्भित 'श्री यन्त्र' बनवाया गया। वहाँ नित्य पूजार्चन आदि परम पूज्य बाबा श्री के समक्ष होता रहा। सुपठित २१ ब्राह्मणों की मण्डली अन्त में प्रत्येक मन्त्र का सम्पुटित उच्चारण करके पाठ करती थी और पाठ के अन्त में परम पूज्य श्री की आज्ञानुसार आहुतियाँ दी जाती थीं। इस तरह हवन का कार्य जोर से चलता रहा। इस समय सत्याग्रह, देश की स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन, बड़े-बड़े कार्य करनेवाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों का कैद होना, लाठी-चार्ज आदि नित्य की बात थी। अनुष्ठान २३ अगस्त १९३० को पूर्ण हुआ।

उसके पहिले परम पूज्य श्री बाबा ने एक दिन फरमाया कि 'आज से बारह वर्ष के अन्दर भारत

स्वतन्त्र हो जायगा।' इस कथन के अनुसार देखने को सब भाग्यशाली हुये हैं। इसी साल कच्छ के महाराव श्री विजयराज जी महोदय, जो उस समय युवराज-पद पर थे, पहली बार महाराज श्री के दर्शन को आये थे। इनको महाराज श्री ने बता दिया था कि ये गद्दी पर कब आएँगे और कितने वर्ष राज्य करेंगे। परम पूज्य बाबा श्री के ऊपर उनकी बड़ी श्रद्धा थी।

सन् १९३० में परम पूज्य बाबा श्री माथेरान में दो मास रहे। प्रत्येक यात्रा में होमियोपैथिक व आयुर्वेदिक दवाएँ साथ रखवाते थे। इस समय भी होमियोपैथिक दवाओं की पेटी साथ में थी। जो कोई व्यक्ति दवा लेने आता था, उसे उसमें से दवा दिलवाते थे। एक गरीब दुखी प्रज्ञा-चक्षु आया और दवा माँगी। उसको दवा दिलवाई और आठ दिन दवा लेने को कहा। वह दर्द धीरे-धीरे सुधरने लगा और आठ दिन में बराबर आँखें खुल गईं और वह देखने लगा। उसके आनन्द का क्या कहना! गद्गद् होकर पूज्य श्री के चरण छूने लगा। ऐसे ही कई व्यक्तियों को इस समय अच्छे होते देखा।

सन् १९३१ में महाबलेश्वर पधारे थे। वहाँ बड़ी मण्डली जमा हुई। उसमें से दो-तीन व्यक्ति एकाएक बीमार होनेवाले हैं, यह सूचना सच्ची हुई। साथ में एक कुत्ता था जिसका नाम मीकी था। वह बहुय समझदार था। एक बार रात को बारह बजे के समय बरामदे में बैठे। अवकाश में किसी से बात करते हुये आप बोले, 'देखो, हमारी भू पर ऐसे जानवर भी उच्च-कोटि वाले हैं।' उसको बुलाया, हाथ रखकर बताया। दूसरे दिन फिरते-फिरते किसी चीज पर उसका पैर पड़ गया, बीमार पड़ा। मुम्बई जाने के समय मोटर में उसको बिठा लिया लेकिन पूना आकर जब गाड़ी ठहरी, तब वहाँ वह बेचारा आखिरी अवस्था में दिखाई पड़ा। हम सबने प्रार्थना की कि कम से-कम बेचारा मुम्बई पहुँच जाय, तो अच्छा। थोड़ा पानी पिलाने को कहा। वह सावधान हो गया। मुम्बई जाकर दो रोज बाद घर में पूज्य श्री की कुरसी के पास बैठकर प्राण छोड़ दिये। ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुईं।

प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन के प्रारम्भ में शिक्षण लेने की आवश्यकता होती है। शिक्षण लेने के लिए मुझे जो भोगना पड़ा, वह मैंने खूब भोगा है और भोगता हूँ। मेरें जीवन में उतार-चढ़ाव १९२१ से शुरू हुआ। जब पूज्य बाबाश्री के सम्पर्क में आया, तब से अति विपरीत अवस्था में भी अपना भोग भोगने की शक्ति प्रदान करने की कृपा की। यह सब लिखना सम्भव नहीं।

१९३१ में एक समय परम पूज्य बाबा श्री की सुवाणी से सुना कि 'एक के पीछे एक लगातार सफलता मिलती जाय, तो प्रकृति धक्का मारने को तैयार है, ऐसा समझना और धक्का पड़े, तो उसके साथ बीच-बीच में जो राहत मिलती है, वह मात्र प्रकृति ज्यादा सहन करने के लिये देती है। कठिन कष्ट-भोग के अन्त में सुख मिलता ही है।'

१९३१ में चौपाटी का स्थान छोड़कर दूसरे स्थान में जाने की आज्ञा की। ३० नवम्बर १९३१ को केडल रोड पर रहने को आये। पहले स्वयं आकर इस स्थान में बैठ गये। पीछे सब घर बदलने में आठ दिन निकल गये।

सन् १९३२ में भारत के लिये चिन्ता करते थे कि कब स्वतन्त्र होगा। इस समय कार्य-निमग्न रहे। १९३३-३५ की मई को मैं घर में से स्नान-गृह में जा रहा था। नारियल के वृक्ष कम्पाउण्ड में बहुत थे। उनमें से एक बड़े वृक्ष का सूखा पत्ता ऊपर से गिरा। न जाने क्यों, सहसा जरा हट जाने का विचार आने से मैं थोड़ा हट गया। मैं बाल-बाल बच गया। पूज्य श्री की दया।

सन् १९३४ में परम पूज्य बाबा श्री लोनावला में दो मास रहे। वहाँ जङ्गल में कार्य-वश पहाड़ों के ऊपर घूमना पसन्द आया। इस समय वहाँ बड़ी मण्डली जमा हुई थी। कुल २५-३० व्यक्ति साथ में

थे। इस अवसर पर बहुत प्रवचन हुये। कुण्डलिनी-सद्योग-योग आदि कई विषयों पर उपदेश हुये। इस समय मण्डली के सभी लड़के-लड़कियों को आगे का मार्ग बतलाया। मण्डली के सभी लोगों को कुछ-न-कुछ प्रत्यक्ष अनुभव हुआ।

सन् १९३७ में मेरा बड़ा लड़का जो लश्कर में था, अचानक बीमार पड़ा। मुझे पहिले से वहाँ जाकर उसको देख आने की आज्ञा भी दी थी। इतने में तार आने पर मैं वहाँ तुरन्त चला गया। १९ मार्च १९३७ को जिस दिन पूना में उसको भयङ्कर बीमारी थी, उसी दिन बोरीवली में, मेरे लड़के का काला कुत्ता, जो परम पूज्य श्री की बैठने की ओर सोने की जगह के नीचे बैठा रहता था, सहसा वहाँ से उठा और दौड़ता हुआ बाहर गया। बाहर वह एक मोटर के नीचे आ गया, बड़ी चोट आई; फिर भी दौड़कर परम पूज्य श्री के झूले के नीचे बैठ गया और प्राण छोड़ दिये। उसी दिन मेरा तार पूने से परम पूज्य श्री को मिला कि 'बाबू बहुत बीमार हैं।' उधर इसी दिन पूने में मेरे लड़के ने उक्त कुत्ते को देखा और उसकी मृत्यु भी देखने में आई। यह बात मुझे उसने सवेरे बताई। उसी दिन कुत्ते के मरने की खबर भी आई। अगले दिन से मेरा लड़का अच्छा होने लगा और एक मास में अस्पताल से आ गया।

सन् १९४३ से मेरी लड़की सौ० मुक्ता का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और १९४४ में उसका अवसान हुआ। वह वसन्त-पञ्चमी को ही होनेवाला है, यह परम पूज्य जानते ही होंगे लेकिन बताया नहीं था। मेरे लड़के की विवाह-तिथि शनिवार चतुर्थी बताई थी। पूज्य श्री बाबा जी ने कहा कि 'पञ्चमी से पहले कर लो।' आज्ञा और लोगों की अनुकूलता के बीच में हम सबने रविवार पसन्द किया। बिनती की कि 'अनुमति होने से सबको सुभीता होगा।' तो कहा, 'ठीक, करो।' लग्न-समारम्भ के बहुत पहले सबको लेकर बनारस पधार गये। विनती की, तो भी ठहरे नहीं। लग्न के पहिले सबको वापस भेज दिया। आप एक-दो भक्तों के साथ बनारस ठहर गये। ठीक लग्न के दिन प्रातः चार बजे श्री मुक्ता का अवसान हुआ। लग्न बन्द रहा। तब हम सबको अनुभव हुआ कि परम पूज्य श्री की आज्ञानुसार लग्न न रखने से कैसे विघ्नों का सामना करना पड़ा।

१९४५ में सौ० मुक्ता के अवसान-विषय में शापादि सब हाल ५००० वर्ष पहले का बताया और उसका शापोद्धार कैसे हुआ, यह सब बताया।

१९४६ के अक्टूबर में १६ ता० को परम-पूज्य श्री बाबा जी को सख्त ज्वर आया। उस बीच बाँयें हाथ में कुनैन का इंजेक्शन दिया गया, जिसमें से बड़ा फोड़ा हो गया और एकदम 'बनारस जाऊँगा' यह आज्ञा की। चार घण्टे में तैयारी करके घर की मण्डली व एक-दो दूसरे शिष्यों के साथ बनारस पधारे। वहाँ डाक्टर जे० नारायण माथुर के यहाँ ठहरे और तात्कालिक आपरेशन बाँयें हाथ की पिण्डी में करवाया। जिस समय आपरेशन टेबल पर लेटे, तब कहा कि, 'क्लोरोफार्म देने की कोई जरूरत नहीं, मुझे बताना कि कब आपरेशन शुरू करते हो और कब खतम हुआ।' एक घण्टा आपरेशन चलता रहा और आप पड़े रहे। जब आपरेशन पूरा हुआ, तब बताया, तो सावधान होकर 'हरिः ॐ' किया। सभी डाक्टर विस्मय में देखते ही रहे।

इसके पीछे देह को विश्राम देने के लिये १८ अक्टूबर को कसौली पधारे। वहाँ दो मास ठहर कर मुम्बई पधारे। कसौली में बहुत से वैज्ञानिकों, डाक्टरों आदि विज्ञ व्यक्तियों के समक्ष प्रवचन होते रहे। ७ अप्रैल १९४७ में पूना पधारे। १९४८-४९ में महाबलेश्वर आए। इन वर्षों के बीच शरीर के ऊपर जो धक्का लगा, उसका असर दिखाई पड़ता था लेकिन होमियोपैथिक और आयुर्वेदिक दवाओं से

शरीर थोड़ा सुधार लेते थे और कार्य तो चलता ही रहता था। कुछ होनेवाला हो, इसका उल्लेख पहिले से करते थे। फिर वह जब होता, तब वे वचन याद आते कि 'हाँ, यह तो परम पूज्य श्री बराबर कहते ही रहे।'

भारत भूमि के प्रति परम पूज्य श्री बाबा जी का इतना प्रेम था और उसके लिये इतनी चिन्ता तथा परिश्रम करते थे कि सन् १९१३ के साल से देश को स्वतन्त्र करने की प्रार्थना समय-समय पर करते ही रहते थे, जैसा कि उनकी निम्न रचनाओं से प्रकट है—

१ भगवान् शिव की आरती में—

ऐक्यं देहि स्व-देशे देशोदय प्रातः। स्वाराज्यं प्रति नय हे हिन्द प्रजा तातः॥

२ भगवान् गणेश की आरती में—

ऐक्यं देहि स्वदेशे, जन-मन-धी नेता। स्वाराज्यं वैराज्यं सुख-कर्ता जेता॥

३ एक प्रभाती कविता में—

भारत भूमि ने दया करी स्वतन्त्रता प्रदान। एज माँगवूँ प्रजा सुखी रहे हमारूँ॥

४ प्यारा भारत जग अनमोल।

दूसरी रचनाओं में भी उक्त प्रकार की तीव्र इच्छा व्यक्त होती देखने को मिलती है। जैसा कि लिख आए हैं, देश की स्वाधीनता हेतु दो अनुष्ठान करने से बारह वर्ष के बदले में दस ही वर्ष में १९४७ में भारत को स्वतन्त्रता मिली।

परम पूज्य बाबाश्री के सम्बन्ध में बहुत से चामत्कारिक अनुभव हमें हुये। पहले तो वे सफेद दाढ़ीवाले भव्य साधु के वेश में मेरे यहाँ पधारे। मेरी धर्म-पत्नी बाहर दरवाजे पर आई, उससे भिक्षा माँगी और फल माँगे। उसी समय बताया कि 'तुझे बेटा होगा। एक वर्ष का होकर चला जायगा।' मेरी पत्नी ने कहा—'प्रभु, फल तो घर में नहीं है।' तो भी उन्होंने फरमाया कि 'बेटा, देखो, घर में जरूर है।' मेरी पत्नी जल्दी घर में गई, तो वहाँ फल देखे। लेकर एकदम बाहर देने को आई। फल लेकर उन्होंने आशीर्वाद दिया और अन्तर्ध्यान हो गए। इसके बाद उसके एक पुत्र हुआ, जो एक वर्ष का होते ही उसी दिन चला गया।

१९३८-३९ में बनारस नाटी इमली में १५-२० व्यक्तियों के संघ के साथ रहते थे। बच्चे भी थे। एक दिन पूज्य बाबाश्री ने बताया कि 'सँभालना, बच्चे तूफान करते हैं। छत है, कोई गिरे नहीं।' उसके दो तीन दिन बाद एक दिन मैं और मेरी पत्नी श्री काशी विश्वनाथ जी के दर्शन को गये थे और मेरा दूसरा लड़का चि० गंगनाथ, जो छः वर्ष का था और घर में ही था, खेलते-खेलते छत पर से नीचे पत्थर के फर्श पर लगभग ४० फुट नीचे आ गिरा लेकिन परम पूज्य बाबाश्री की दया से वह बच गया। मात्र पैर में चोट लगी।

दिव्य-शक्ति के विषय में लिखने को जरा सङ्कोच होता है। इन सब बातों पर जन-समूह को श्रद्धा हो या नहीं, इसलिये लिखना उचित नहीं लगता। परन्तु परमपूज्य श्री की देह बड़ी दिव्य देह थी। पहले बताया है कि महान् दिव्य व्यक्तियाँ देह की सेवा करने को आती थीं और कभी-कभी ऐसा वाक्य-प्रवाह चलता था कि मन में विस्मय होने लगता कि यह क्या सुन रहे हैं। इन अलौकिक प्रवचनों को एकत्र करके यथा-शक्ति परिश्रमपूर्वक छपवाकर विश्व के कर-कमलों में लाने का प्रयत्न हो रहा है।

इस विश्व के संचालन में अपनी आवश्यकता के कारण प्रकृति चित्-सत्व में से किसी अमुक बड़े

व्यक्ति का उत्थान करती है। उसको केन्द्रस्थ व्यक्ति कहते हैं। एक केन्द्रस्थ जीव के साथ एक अनु-व्यक्ति भी उत्पन्न होता है। उसको समकोणस्थ जीव कहते हैं। केन्द्रस्थ व्यक्ति सम-कोणस्थ व्यक्ति को उत्थान में सहायता देता है।

उदाहरण के लिये परम पूज्य बाबाश्री ने बताया था कि भगवान् भर्तृहरि, जो उज्जैन में बड़े राजा हो गये, केन्द्रस्थ जीव थे। उनको अष्ट-भैरवों में से भगवान् रुरु-भैरव ने श्री भगवान् मत्स्येन्द्र का अवतार लेकर योग का उपदेश देकर राज्य छुड़वाया और उच्च स्थान पर ले गये हैं। महात्मा गांधी (जैमुनि/क्राइस्ट), चाणक्य (मुसोलिनी), शकटार (हिटलर) आदि जीव इस भू पर क्या कर गये, वह सब जानते ही हैं।

समुद्र के तट पर या पहाड़ पर, जङ्गल में अनेक बार तेजस्वी ज्योति, वृष्टि के अन्धकार में चन्द्र आदि अलौकिक दृश्य हम लोगों ने परम पूज्य श्री के साथ में देखे। कभी-कभी पहले से कहकर दिशा भी बता देते थे कि कहाँ ज्योति होगी। पृथ्वी-सौर-आदित्यों आदि की बातें स्पष्ट शब्दों में समझाते थे और जो कहते वह सब वैज्ञानिक-रूप से प्रमाणित करते थे।

रहने के स्थान में मृत्युञ्जय यन्त्र, मृत संजीवनी यन्त्र, भगवती दुर्गा यन्त्र, भगवती तारिणी यन्त्र, भगवती आद्या काली मा का यन्त्र, भगवान् कबन्ध यन्त्र और चिच्छक्ति-यन्त्र तत्व के अनुसार रङ्ग का मिश्रण कराकर कहाँ कैसा रङ्ग भरना है, वह सब बतलाकर स्वयं बनवाया।

अपनी इच्छानुसार किसी भी व्यक्ति को प्रेरणा करके काम कराने की चतुरता विलक्षण ही थी। सन् १९२५ में यहाँ पधारे। तब से सबके अति आग्रह से प्रातः तुलसी का पानी, दोपहरी में थोड़ा फल का रस और शाम को थोड़ा दूध लेते थे। कार्य-वशात् दिन-पर-दिन देह जब दुर्बल होने लगी, तब अति प्रार्थना से शाम को छः बजे एक समय थोड़ा भोजन लेते थे। उसके पहिले देह छः मास नीम की पत्तियों के रस पर रहा था। सन् १९१२ के पहिले परम पूज्य श्री ने भारत का भ्रमण किया था। इस भ्रमण के समय परम पूज्य श्री को कई पुराने व्यक्ति मिले, जिनमें अघोरी अर्जुनपुरी ६०० वर्ष के थे

श्री अघोरी हरनाम गिर ने, जिसने परम पूज्यश्री के ऊपर मारण किया और उसमें निष्फल हुआ, बाद में इसी मारण से हैदराबाद का बाँध तोड़ा था। श्री परशुराम मिले थे, जिनको वहाँ के भील लोग मखणिया बाबा कहते थे क्योंकि वे माखन माँगकर अपने घाव पर लगाते थे। अर्बुद में बहुत समय तक गुफा में रहे। वहाँ अब भी 'भर्तृहरि गुहा' प्रसिद्ध है। सह्याद्रि आदि प्रदेशों में भ्रमण के समय दूध, फल आदि जो मिला, उसी पर रहे। काठियावाड़ में चार दिन के भूखे थे, उस समय एक खेडुत ने बाजरी का रोटला और छांछ दी थी। यह बात बड़े प्रेम से कहते थे। मथुरा के जङ्गल में ग्वालन के रूप में माई ने दूध पिलाया और पात्र वहाँ रखकर चली गई। यह बात भी श्री मुख से सुनी। कुछ समय थोड़ी विजया और पान के ऊपर भी रहे थे। मात्र १९३५ से हम लोगों की प्रार्थना से क्रम बदला गया।

सन् १९५० से अति कार्य-वशात्-भारत-भूमि के संरक्षण, प्रकृति के प्रश्नों के लिये शरीर पर बीमारी के हमले होने लगे। बारह वर्ष पूर्व देह में से महा-प्रभु भगवान् शरभ ने एक समय कहा था कि शरीर के ऊपर बीमारी के तीन कड़े हमले होंगे। इस बात का प्रथम प्रारम्भ होने लगा। समय-समय पर फरमाते थे कि 'समय बारीक आ रहा है और मनुष्य के जीवन पर उसका अति कठोर प्रभाव होनेवाला है।' सन् १९५३ में जब रोहिणीशकट योग हुआ, उसके एक वर्ष पूर्व कहते थे कि 'पृथ्वी के ऊपर नये-नये परिवर्तन होंगे। हर तरह की आपत्ति आएगी।' देखते-देखते समुद्र का आक्रमण, ईरान-कोरिया—ईजिप्ट नेपाल—तिब्बत आदि देशों का स्वतन्त्र होना, राजाओं का पद-भ्रष्ट होना—गद्दी छोड़ना, हिन्द-पाकिस्तान

के प्रश्न, कश्मीर की स्वतन्त्रता आदि गंभीर परिस्थितियाँ उपस्थित हुईं। कोरिया के विषय में सतत कार्य करते रहे। जगत्- संग्राम न होवे, इस कार्य में शरीर के ऊपर बड़ा दबाव दिखने लगा।

सन् १९५२ में थ्राम्बोसिस का पहिला हमला हुआ। वाचा एकदम बन्द हो गई लेकिन तीन घण्टे में प्रकृति अच्छी हो गई। इसके बाद देह की बहुत सँभाल रखने को विनती करते रहे। दूसरा हमला सन् १९५३ की जनवरी में हुआ। वाचा और दाहने हाथ पर प्रभाव पड़ा। तीन दिन में हाथ अच्छा हो गया और वाचा भी खुली। तो भी बोलने में परिश्रम पड़ने लगा।

जिस देह को घण्टों प्रवचन करने और प्रश्नों का उत्तर देने की आदत थी, उसको ऐसी रुकावट होने से बड़ी विकलता होने लगी। देह के ऊपर कार्य का प्रभाव बहुत दिखाई देता था। एक दिन एक दर्द, तो दूसरे दिन कुछ दूसरी पीड़ा होने लगी। यह सब धैर्य से सहन करते रहे। किसी को भी कुछ बताते नहीं थे।

इस साल हरद्वार पधारे। तब प्रकृति बहुत नरम थी। हरद्वार में एक मास ठहर कर देहरादून पधारे। वहाँ भी प्रकृति जितनी चाहिये, उतनी अच्छी नहीं हुई। कुछ फर्क देखने में आया। तीसरा हमला अक्टूबर १९५४ में नवरात्र के नवें दिन हुआ। उस दिन स्नानादि से निपटकर हवन करने को घर के बाहर कम्पाउण्ड में जब पधारे, तभी एकाएक शरीर बिगड़ा। मण्डली उपस्थित थी। अमुक मन्त्र से हवन पूर्ण करने की आज्ञा दी। तीन घण्टे में स्वास्थ्य जरा ठीक हुआ। खुद को मालूम ही होगा लेकिन किसी को बताया नहीं कि अब देह-त्याग करने का समय पास है।

दो दिन बाद हृदय के ऊपर दबाव पड़ा। एक बार कुछ दवा के लिए जब मैंने विनती की कि 'प्रभु, आप आयुर्वेदिक दवा कुछ लीजिये', तब मुझसे कहा, 'कन्हैयालाल, देह के ऊपर हमले ऐसे होते हैं। अब यह देह क्या रखने लायक है?' मैंने कहा, 'प्रभु, आपकी इच्छा होवे, तो ठीक करने में क्या देर लगती है।' तो फरमाया कि ''हाँ, ठीक है लेकिन प्रकृति के विरुद्ध जाने का हम लोगों को क्या हक है? कुछ नहीं, हम वैसे जितना बनता है, उतना हम लोग देह के लिये करते हैं।'

यह सुनकर बहुत दुःख हुआ लेकिन लाचारी से प्रार्थना करने के सिवा क्या उपाय था! फिर भी एक समय जरा ज्यादा आग्रह और प्रार्थना करने पर बताया कि 'इस देह की सेवा के लिये हमसे जितना प्रयत्न हो सके, वह सब हम लोग करते हैं और करते रहेंगे। फिर भी प्रकृति के आधीन है। हाँ, एक बात लक्ष में रखना कि हमेशा मृत्यु के लिये तैयार रहना, लेकिन मृत्यु समीप और सामने आवे, तब अपनी पूरी ताकत से उसका अन्त तक सामना करना।'

इस कथन की सत्यता पूर्ण रूप से करके परम पूज्य श्री ने बताई। जब-जब देह को कष्ट हुआ, उसे परम शान्ति से सहन किया। देह को ठीक करने के सब प्रयत्न सदा करते रहे। तो भी अन्त तक देह में कार्य करते ही रहे। अक्टूबर १९५४ में जो अन्तिम बीमारी आई, वह इतनी त्वरित और जोर से आई कि डाक्टर ने बताया कि 'हृदय के लिये प्राण-वायु (आक्सीजन) आदि शीघ्र उपायों के लिये अस्पताल में ले जाना ही होगा।'

परम पूज्य श्री से डाक्टर सेठ और हमारे परम मित्र श्री बाबूभाई शाह ने विनती की और परम पूज्य बाबाश्री ने यह बात स्वीकार कर ली। अच्छे अस्पताल में एक एकान्त बड़े अच्छे कमरे में देह को रखा। उपचार शुरू हो गये और आठ रोज में हृदय की बीमारी तो सतत प्रयत्न से अच्छी हुई लेकिन देह सात वर्ष की लगातार कुछ-न-कुछ शिकायतों से दुर्बल हो गई थी। इससे कमजोरी बहुत मालूम हुई। उपचार चलते ही रहे।

दीपोत्सव का समय नजदीक था। उसके तीन दिन पहले मुझे बुलवाकर कहा—'कन्हैयालाल, चार रोज के बाद यह देह बेकाम हो जायगा।' दूसरे अवयवों का काम होना बन्द हो गया, तो भी दीपोत्सव के नये वर्ष को सबको दर्शनार्थ अन्दर बुलाते गये, आशीर्वाद दिया, थोड़ी-थोड़ी बात भी करते रहे। इस तरह पाँच-छः दिन प्रकृति रही।

ता० १४ नवम्बर १६५४ के सबेरे देह को नियमानुसार लघु-शङ्का शौचादि से स्वच्छ किया, स्वच्छ कपड़े बदल लिये। तब किसी को भी शङ्का तक न हुई कि देह सहसा छोड़ देंगे। परम पूज्य श्री ने कुछ बताया भी नहीं। एक-दो बार केवल इतना पूछा कि 'क्या समय हुआ?' दस बजे के करीब मैं और श्री शाह पास खड़े थे। हमने नम्र विनती की कि 'क्या करें?' कुछ बताया नहीं। श्री शाह का और मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर जरा प्रेम से दबाया, सामने देखा, कुछ बोलने का विचार किया लेकिन कुछ कहा नहीं। रक्त-चाप जरा नीचे हुआ और हृदय पर थोड़ा दबाव पड़ा। नाड़ी जरा धीमी मालूम हुई और ठीक एक बजे संकेत से मुझे बताया कि 'देह को बिठा दो।'

अपने हाथ से बगल के तकिये हटा दिये और किसी को मालूम भी न पड़ा, ऐसे एक क्षण में प्राण त्याग दिये। हम लोगों ने देह को सुलाया तो पूर्ण शान्त निद्रा-वश स्थिति दिखाई। डाक्टर ने बताया कि 'हृदय बन्द हो गया।' इस प्रकार सारी मण्डली को रोती हुई छोड़कर स्थूल देह का सम्बन्ध त्याग दिया।

देह को रहने के स्थान पर ले आये। छः घण्टे के बाद भी देह की गरमी बनी रही; किसी भी अवयव में जरा भी कड़क मालूम नहीं हुई; सबके सब बिलकुल मुलायम बने रहे। इतनी राह देखकर आखिर देह को समुद्र-तट पर श्मशान में लाये। यथा-विधि-चन्दन काष्ठ से देह को भस्मीभूत किया और पवित्र अस्थि लेकर स्थान पर लौटे।

जीवन के अन्तिम समय तक परम पूज्य श्री पूर्ण चेतनता में रहे। अन्तिम समय तक सेवा के लिये पास रहनेवाली मण्डली को कल्पना तक नहीं हुई कि प० पू० श्री इतना त्वरित देह छोड़ देंगे। तीन-चार वर्ष देह अस्वस्थ रही और दुर्बल हो गई थी, तो भी उज्ज्वल कान्ति वैसी की वैसी बनी रही। प्रसन्न वदन से सबको दर्शन देते थे और इधर इस बीच बोलने में कठिनता होते हुए भी उत्तर देकर सबको सन्तुष्ट करते थे।

भारत-भूमि के ऊपर ऐसी दिव्य महात्मायें जन्म लेकर पधार कर क्या करती हैं, वह जानने, देखने और उस विषय में कुछ भी लिखने का प्रयत्न करना बड़ा विकट है। तो भी ये थोड़े अक्षर लिखकर क्षुद्र प्रयत्न करके अपना कर्तव्य पालन किया है।

प० पू० बाबा श्री की मण्डली दिव्य देह की तुलना में बहुत छोटी सी थी, तो भी उसमें प्रोफेसर, डाक्टर, वकील, जज, इन्जीनियर्स, वैज्ञानिक, व्यापारी, शिक्षक, धीवर, कौल महाव्यक्ति, महाराजा आदि सब थे। प० पू० श्री की उपस्थिति में सबके सङ्कल्प-विकल्प शान्त हो जाते थे और प्रवचन के समय प्रश्नों का उत्तर देने में प्रत्येक व्यक्ति का सच्चा कर्तव्य क्या है, इस विषय पर घण्टों तक उपदेश-सरिता बहती रहती थी।

सच्चा धर्म किसको कहना इस विषय के ऊपर अपने स्वतन्त्र विचार प्रदर्शित करते थे। हरेक बात विज्ञानपूर्वक प्रमाणित करके धर्म और विज्ञान का सम्बन्ध बहुत सूक्ष्म रूप से बताकर प्रश्न करनेवालों को सन्तोष होने तक अनेक रीति से सरल भाषा में समझाने की प्रभावपूर्ण शक्ति अलौकिक ही थी। हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी भाषाओं में समान सरलता से प्रवचन करते थे। ब्रह्मचर्य पालन करना,

संन्यस्त लेना और वेश बदलकर भटकने के बदले गृहस्थ के नियम पालन कर सत्य-परायण नीति-मय जीवन बिताकर प्रभु का स्मरण अच्छी तरह हो सकता है, इस बात पर बहुत बल देते थे।

झूठें वेश-धारी साधु होने, त्यागी संन्यस्त जिन्दगी होते हुए भी मठ बाँधने, द्रव्य सञ्चय करने और खा-पीकर जीवन व्यतीत करने से क्या परिणाम होता है, यह बता देते थे। नियम-बद्ध जीवन, सच्चाई, प्रामाणिकता, शुद्ध हृदय से प्रभु की भक्ति उक्त वेशधारियों से बहुत ही अच्छी है – यह स्पष्ट शब्दों में कहते थे। अपने शिष्यों और सम्पर्क में आनेवाले व्यक्तियों से बहुत नम्रता से, स्मित वदन से बात करते थे और घर में अतिथि आया, तो उसकी सेवा बराबर होती है या नहीं, यह ध्यान से देखते थे।

परम पूज्य १०८ श्री बाबाश्री के संस्मरण लिखते रहो, तो उसका अन्त नहीं आये। इस समय अत्यन्त दुःख हो रहा है। आज अखिल शाक्त परिवार अप्राप्य, अमूल्य, अद्भुत गुरु गौरव-शून्य हो गया है। प्रभु के सन्मुखत्व से, हम सबको जरा गर्व था कि दूसरे से कह सकते हैं कि यदि इस पुनीत प्रबल शाक्त-मार्ग का प्रत्यक्ष कुछ भी जानने की इच्छा हो, तो श्रीमान् प० पू० योगिराज महाराज श्री १०८ बाबाश्री के दर्शन कीजिये।

अब तो प्रभु श्री से एक ही प्रार्थना करने की रही कि हे नाथ! जिस प्रकार से अत्यन्त दयालु होकर हम सबको अपनी आश्चर्यमयी लीलायें दिखाकर अनेक आपत्तियों में भी रक्षा कर मार्ग पर लगाते रहे हैं, वैसे ही आपकी दया हम पर सदा बरसती रहे और शीघ्र-से-शीघ्र उचित समय पर निज सान्निध्य पुनः प्रदान करने की कृपा करें और मार्ग पूर्ण होने पर वृथा भटकावें नहीं।' पूर्ण विश्वास है कि प० पू० बाबाश्री किसी को भूलेंगे नहीं और अपनी दयालु प्रेम-मय दृष्टि से सबको शुभाशीर्वाद प्रदान करते ही रहेंगे क्योंकि परम पूज्य श्री ने लिखा है कि—'यहाँ से हम हटे, तो भी हमारा दिल यहीं होगा।' यह वचन सत्य ही होगा।

इतना लिखकर परम पूज्य दयालु श्री १०८ योगिराज महाराज श्री बाबाश्री के दिवङ्गत होने पर उनकी परम पवित्र स्मृति में अपने द्रवित हृदय से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करके पवित्र चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम करता हूँ।

॥ ॐ श्री गुरवे नमः ॥

बड़ा सूरज खड़ा पृथ्वी परिक्रम दम न कम होगा।
यहाँ से हम हटे तो भी हमारा दिल यहीं होगा॥
छुटे ना तार मन कैसे न मनका तार से छूटे।
टूटे गर तार गुरिया तो जड़ा जिस जाँ वही होगा॥
अजब दिल में मिला दिल है करूँ क्या छूटना क्योंकर।
कहो हम छोड़ देवें पर हमारा दिल यहीं होगा॥
हजारों कुन्दनी दिल यों पिघल के आतिशे उलफत।
अगर दिल तार में लटके गये हम बह वहीं होगा॥
बड़े गज बीज के 'मोती' जड़ा वह काश दे यक सा।
समत्वानन्द दिखलाता हमारा दिल यहीं होहा॥ बड़ा०॥

उपदेश-मुक्तावली (भजन सं० १४७)

श्रद्धाञ्जलि-सप्तक

श्री रमाशंकर पण्डया, एम० ए०, एल० टी०

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

यह लखो रमे मुक्त मोती में, बुद्धि से परे स्पन्दन सोती में।
क्या रहा अहा ! सीप में तबै मूल जल भरे रङ्ग मोती में ।।

सन् १९२७ में मैं जब लन्दन में था, उस समय पूज्य श्री ने मुझे उद्देश्य कर गुजराती में जो पत्र लिखे हैं, उनमें से उक्त ४ कड़ियों का यथा-शक्ति अनुवाद कर उस मूल-जल का आवाहन करने का प्रयत्न करता हूँ, जो उनके चरणों में से सदा आशीर्वाद-रूप होकर विश्व में बहा करता था और उनके दरबार में से किसी को भी खाली हाथ नहीं जाने देता था।

[१]

आज न तो विश्व में वह – (१) स्पन्दन-बिन्दु रहा, (२) न वह मूल जल, (३) न मोती, (४) न मुक्त, (५) न वह भरा जाता रंङ्ग और (६) न मोती को व्यक्त करनेवाला कीट ही। रह गया क्या ? मात्र (खाली) सीप !

सीप की ५ मालाएँ पड़ी हुई हैं, जो श्री बाबा जी के लेख के रूप में हैं और जो उन्होंने मात्र स्मृति से ही लिखी हैं। कभी किसी पुस्तक को खोल कर उन्होंने हमारे सामने न देखा, न बाँचा और न नकल की।

(१) छगनलाल को लिखे हुए पत्र। (२) लन्दन को लिखे हुए पत्र। (३) भैरवोपदेश। (४) आरती-संग्रह। (५) तन्त्रशास्त्र, मन्त्र, यन्त्रादि साहित्य यह सहस्र पृष्ठों से अधिक है)।

उस मूल-जल का स्मरण करते हुये उस आशीर्वाद-जनित अश्रु-धारा से इस सीप-माला को मेरी प्रथम श्रद्धाञ्जलि पहुँचे।

[२]

सीप-वासी कीट का क्या वर्णन किया जाय ! वह योगी था, योगेश्वर था, स्वामी था, सेवक था। विश्व-सेवा ही उसका एकमात्र धर्म था। भारत-स्वातन्त्र्य, दो विश्व-युद्ध, कम्युनिस्ट-वाद की स्थापना—इस लक्ष्य से कि द्रव्य व स्त्री का आकर्षण मानवीय जीवन में से क्रिया को लूटना बन्द कैसे करे, कोरिया की शान्ति, जिसमें उन्होंने देहार्पण किया – इत्यादि इस भू से सम्बन्ध रखते हुए कुछ कार्य उन्होंने किये व कराये।

परन्तु हम जैसे क्षुद्र जीवों के प्रति उस कीट की परम कृपा इसी रूप में रही कि वह सीप के दोनों पट खोल कर अपने हृदयाश्रम में स्थान देकर मोती का दर्शन कराता था। उसे हमारे अश्रु से द्वितीय श्रद्धाञ्जलि पहुँचे।

[३]

इस कीट के हृदयान्तर्गत एक मोती था। वह उस कीट के परिश्रम-स्वेद से बना हुआ था। परिश्रम के पड़ के पड़ उसमें लपेटे हुये थे। उसकी दो शक्तियाँ थीं। एक वैखरी, जिसको आजकल का विश्व 'रेडियो एक्टिविटी' के नाम से पहचानता है। दूसरी विश्व रश्मि यानी 'कास्मिक रे'।

वैखरी-शक्ति के प्रताप से, हम लोगों ने रात्रि का भेदन करना सीखा और दिन भर परिश्रम कर रात भर जागरण कर, फिर दूसरे दिन परिश्रम कर ३६ घण्टे की क्रिया का चक्र स्थापित कर, अपने चारों तरफ प्रभु-स्मरण-मय वैखरी-मेघ रेडियो ऐक्टिव क्लाउड की स्थापना कुछ समय के लिये कर सके।

अपने सम्मुख भजन कराकर वैश्विक-रश्मि की वर्षा वे किया करते, जिससे वह वैखरी मेघ भाव-युक्त जल से पूर्ण होकर हम पर बरस पड़ता था व जीवन में वृथात्व के स्थान में हमें कृतकृत्यता का अनुभव कराता था।

जो लोग जागरण भजन में सम्मिलित नहीं हो सकते थे, उनके लिये भी वह खजाना खुला था। शरणागत की आर्ति-हरण होती रोज प्रति-क्षण दिखाई देती थी। स्त्री, द्रव्य, पुत्र, नौकरी, मुकदमे में विजय- जिसे जो चाहिये था, मिलता था। यह सब लुटानेवाले मोती को सम्पूर्ण कृतज्ञता-सहित मेरे अश्रु की तीसरी श्रद्धाञ्जलि पहुँचे।

[४]

इस लुटाते हुए खजाने में रमनेवाला खिलाड़ी कौन था ? वह सदैव निःस्पृह व मुक्त था। अपने स्वभाव से लुटाता था—कीर्ति या अन्य किसी प्राप्ति आदि कामना से नहीं। वह सदैव धन (प्लस) था, ऋण (माइनस) नहीं। 'धन' होना ही ऋण होने की तैयारी करना है, यह वह मानता था। उसका खजाना अक्षय था। जिस प्रकार रश्मि अक्षय होती है, उस अक्षय खजाने की शोध तथा अपने में स्थापित करने की प्रेरणा वह सबको करता था। लुटाना ही उसका खेल था। ऐसा भान होता था कि इस खजाने से परिश्रम से कोई सम्बन्ध नहीं। आध्यात्मिक द्रव्य को वर्षाती हुई हिरण्य-वर्णा रजनी सदैव विद्यमान रहती थी। कभी किसी से कुछ लिया नहीं, मात्र दिया ही दिया। दिखने में लिया भी, तो कई गुणित कर उसे ही वापिस दिया। ऐसी भयङ्कर माया में- स्त्री-द्रव्यादि से भरे हुए विश्व के आकर्षण में पूर्ण अज अमल अबद्ध का दिग्दर्शन जिसने कराया, उसे भाव-पूर्ण अश्रु की मेरी चौथी श्रद्धाञ्जलि अर्पित हो।

[५]

उस मोती का रंग श्वेत था अर्थात् गुरु-स्वरूप था। आश्रय देना व आपदुद्धरण— यही धंधा था परन्तु उस श्वेत वर्ण में नाना रङ्ग दिखते थे। कभी नील तो कभी रक्त, कभी श्याम तो कभी केशरी, कभी जोगिया तो कभी पीत इत्यादि। पूछने पर यही उत्तर मिलता था कि बाबा का देह क्रिया-मय है। वैश्विक क्रिया प्रकृति की आवश्यकतानुसार जब जैसा रूप धारण कर ले, वैसा ही दिखता है। इस मोती में पर्व-पर्व पर नाना विधि रङ्ग बदलते थे, जिससे यह पता चलता था कि विश्वास्तित्व अकर्ता होते हुए भी उसकी मर्जी क्षण क्षण बदलती रहती है और उसी प्रकार प्रकृति को घुमाती-फिराती है।

इस प्रकार हमको सुझाकर समझानेवाले इस रङ्ग-मय गुण को मेरी पाँचवीं श्रद्धाञ्जलि अर्पित हो।

[६]

मोती में रङ्ग भरनेवाला कौन ? मूल-जल । वह क्या ? प्रकृति की आवश्यकता । विश्व-प्रवाह जिस समय जैसा स्वरूप धारण कर ले । जैसे हमको अपनी आवश्यकताओं का अनुभव होता है, उसी प्रकार विश्व के कार्य-कर्ताओं को विश्व की आवश्यकताओं का अनुभव होता है । फर्क इतना ही है कि हम अपनी आवश्यकता अपने मजे के लिये पूरी करते हैं; विश्व कार्य-कर्ता अनन्तात्मिका प्रकृति के भय से क्योंकि यदि आवश्यकता पूर्ण न हो, तो जिसको उसका भान हुआ, उसे ही आदेश मिलता है और वह उसे पूरा करने का प्रयत्न करे, तो उसे सहायता मिलती है, नहीं तो वह पिस जाता है । इसी कारण भगवान् शिव ने इस मूल-जल रूप विश्वावश्यकता को शिर पर चढ़ाया है ।

इस मूल-जल का कुछ भी थोड़ा-थोड़ा सा भाव जिस कृपा से हमें प्राप्त हुआ, उसकी स्मृति में यह छठवीं श्रद्धाञ्जलि अर्पित हो ।

[७]

विश्व-प्रवाह का भान हमें जिस विन्दु से प्रारम्भ होता हुआ दिखाई देता है, वह स्पन्द-बिन्दु है । पूज्य बाबा-रूपी प्रकृति-प्रवाह जिस बिन्दु को कारण बनाकर विश्व में बह निकला, उस कारण के भी कारण रूप सत् (बींग), परिणमन (बिकमिंग), कारण (कैज़ुलिटी), कारक (कैज़ुएशन) और क्रिया (पर्पज़)—पाँचों के मूल-रूप झरने के स्रोत रूप जो कुछ भी हो, जो आगे बह कर पूज्य बाबा का रूप बन गया, उसे उपलक्षित कर मेरी सातवीं श्रद्धाञ्जलि अर्पित हो ।

इसी को उद्देशित कर पूज्य बाबा ने लिखा है—

लख प्यारा आओ जरा जरं (तेज) रहने का ढाम । झर होकर जर नीसरे जरमय नगर (षटचक्र) तमाम ।।

यही सहस्रार-बिन्दु है, जहाँ से वैश्विक किरणों का पान किया जाता है परन्तु सर्व-शङ्का, शोकादि के चरणार्पण हो जाने के बाद ।

श्री प्रभु के चरणों में इस प्रकार मूलाधार से सहस्रार-पर्यन्त सप्ताञ्जलि चढ़ाते हुये प्रार्थना है कि श्री प्रभु चरणों से बहती कृपा-धार हमें उन सातों स्थानों में प्राप्त हो और तत्त्व का अनुभव करा कर वह हमें जीवन प्रदान करावे व हमारा संरक्षण कर प्रत्येक आपत्ति से हमारा उद्धार कर हमारी रक्षा करे ।

पूज्य श्री बाबा जी ने श्रीशिव-आरती में लिखा है—

माया जूट जटा जल स्वाती बिन्दु पड़े । मोती जन्मि जगत मँह चरणन आय अड़े ।।

यह मन्त्र है । इतिहास भी है । अपने जनन की क्रिया के साथ-साथ यह भी बतलाया है कि इष्ट में से गुरु-जनन कैसे किया जा सकता है । प्रभु करे, हमें भी उन चरणों में अड़ने को मिले; उन्हें अपना कर उनका हो जाने को मिल जाय । शायद इसी को गुरु चरण-रज प्राप्ति कहते होंगे परन्तु उस रज में से तो यही धुन निकलती है 'मैं तो पायो मोति पसीने में ।'

युक्त परिश्रम ही प्रभु-प्राप्ति का एक-मात्र मार्ग है । यही उन्होंने हमें समझाया और हमसे वैसा ही परिश्रम करवाया ।

।। श्रीगुरवे नमः ।।

श्रद्धाञ्जलि

सुश्री तरला बहन

('चण्डी' वर्ष १३, सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ ई०, सं० ३)

मैं पूज्य श्री बाबाश्री की एक तुच्छ सेविका हूँ। न मैं कुछ ज्यादा पढ़ी, लिखी हूँ और न मुझे ऊँचा ज्ञान है। मैं सिर्फ सेवा करके ही अपना जीवन व्यतीत करती थी। वह सेवा आज छीन ली गई।

पूज्य श्री बाबाश्री जब बम्बई पधारते थे, तब मेरे पिता जी कन्हैयालाल जी के यहाँ ठहरते थे। तब मैं छोटी थी। उस समय मेरी बड़ी बहिन स्व० सौ० मुक्तागौरी पूज्य श्री की सेवा करती थीं। उनके ही आग्रह से पूज्य श्री ने बम्बई में रहना स्वीकार किया था। तब से पूज्य श्री बराबर बम्बई में रहते थे। साल में सिर्फ २-३ महीने बाहर घूम आते थे। तब मैं भी साथ-साथ घूमने जाती थी और बहन के साथ मैं भी सेवा का लाभ उठाती थी, इस प्रकार सेवा का काम-काज मैंने सीख लिया। बड़ी बहन का अवसान होने के बाद पूज्य श्री की सेवा में मेरा समय ज्यादा व्यतीत होने लगा।

पूज्य श्री गौर श्वेत वर्ण के थे। श्री चरण सदा से दुर्बल रहे। केश भूरे और घुंघराले थे। छोटी सी सुन्दर दाढ़ी थी। जब से मैंने दर्शन किये, तब से केश और दाढ़ी अन्त तक वैसे ही रहे। प्रारम्भ में केश अधिक थे, बीमारी में कम हो गये थे किन्तु दाढ़ी वैसी ही थी।

पूज्य श्री अति दयालु थे। उनकी दया का वर्णन क्या और कहाँ तक करूँ। कभी मुझे पर यदि नाराज भी होते थे, तो क्षण ही भर बाद पुचकार कर बुलाते थे और समझाते थे कि 'मैं नाराज नहीं होता। मैं कुछ भी कहता हूँ, वह तुमको सिखाने के लिये, तुम्हारे कल्याण के लिये।' थोड़ी देर बाद मुझे भी लगता कि पूज्य श्री का कहना ठीक है। मुझे बुरा नहीं लगना चाहिये। कुछ भी कहेंगे, अपने भले के लिये। पूज्य श्री तो दया से भरे हुए थे।

पूज्य श्री खुद तो कुछ भी खाते नहीं थे लेकिन सबको खिलाने में बहुत खुश होते थे। सब प्रकार की मिठाई, नमकीन, रसोई आदि स्वयं बहुत स्वादिष्ट बनाते थे और ऐसी चीज बनती थी कि हम लोग महीनों तक खाते और नित्य नवीन स्वाद का अनुभव करते। चीज जरा भी बिगड़ती नहीं थी। पूज्य श्री को तरकारी खरीदने का भी बहुत शौक था। सिर्फ खरीदते ही नहीं अपितु घर आकर अपने हाथों से काटकर उसे तैयार भी करते थे। तरकारी का चावल बाबा जी विशेषतया बनाते थे। उसमें पानी का अंश जरा भी नहीं रहता था। पकाने के लिये नींबू का रस, मुसम्मी का रस, सन्तरे का रस, दही यह सब इकट्ठा कर इस सारे रस में चावल पकाते थे। हम जैसे साधारण लोग खटाई डालकर इस प्रकार चावल नहीं पका सकते। आखिर में हम लोगों को बाबा जी से कहना पड़ता था कि 'बाबा जी, एक बार अपने हाथ से झरनी फिरा जाइए, हम लोगों से पकता नहीं। कच्चा का कच्चा ही है।' जब बाबा जी एक बार आकर चला जाते, तब वह चावल पक जाता। उसे एक बार गोल-गोल कर हाथ फिरा जाते; तब हम उसे बन्द कर देते। फिर खाने के समय ही ढँकना हटाया जाता। उसे हम लोग दो-दो तीन-तीन

दिन तक खाते। वह तनिक भी बिगड़ता नहीं था। बाबा जी का बनाया भोजन हम लोग कभी फेंकते नहीं थे। वह कभी बिगड़ता ही न था। उसे कई दिनों तक खाया जाता। इस प्रकार तरकारी का चावल पराठे आदि कितनी ही चीजें बाबा जी ने बनाकर खिलाईं, जिनका स्वाद कभी भुलाया नहीं जा सकता। अब तो वे मिलनी भी असम्भव हैं।

पूज्यश्री अन्त तक व्यवहारकुशलता से काम लेते रहे और दूसरों को भी यही उपदेश दिया कि 'दुनिया में रहकर सबके साथ व्यवहार रखना और अपना कर्तव्य करते रहना।' मन्त्र आदि जो किसी को देते थे, उसमें किसी तरह का बन्धन नहीं रखते थे। बिना नहाये-धोए भी उसका साधन-भजन किया जा सकता था। पूज्यश्री मण्डल में हर समय कहा करते थे कि 'सब कोई ईर्षा, द्वेष अपने दिल में न रखकर आपस में मिल-जुलकर रहो।' पूज्यश्री कहते थे कि 'अपने दुश्मन से भी अच्छी तरह बात करो।' हर समय पूज्यश्री हँसने-बोलने में खुश रहा करते थे और दूसरों को भी खुश रखते थे। दरबार में हर समय हँसी-खुशी की बात हुआ करती थी। पूज्यश्री के पास कोई भी कपड़ा, इत्र आदि चीजें लोग लेकर आते थे, उनमें वे स्वयं हाथ नहीं लगाते थे। हम उन्हें उठा लेते थे और पूज्यश्री की ही सेवा में काम लाते थे।

पूज्यश्री के पास साधु-संन्यासी, गृहस्थ आदि सभी तरह के व्यक्ति आया करते लेकिन जैसा देखते थे, उसके साथ वैसा ही व्यवहार करते थे। कोई संन्यासी आता, तो उसके लिये आसन आदि बिछवाकर उसका इतनी अच्छी तरह सत्कार करते कि हम लोग देखते ही रह जाते थे। हम लोग कहते भी कि 'आपको उठकर इतने सत्कार से बुलाने की क्या जरूरत है?' तब समझाते थे कि 'यह व्यक्ति का सत्कार नहीं है अपितु संन्यस्त लिया है, इसलिये उसका सत्कार करना चाहिये।' संन्यासी ही नहीं किन्तु कोई गरीब छोटा व्यक्ति भी सामने आ जाय, तो उसको सत्कार और प्रेम से बुलाकर बैठाते थे।

पूज्यश्री का मण्डल बहुत छोटा सा है। वे चाहते भी नहीं थे कि मण्डल बहुत बड़ा हो, प्रसिद्ध होने की उनकी इच्छा ही नहीं थी। उनसे हमने तथा अन्य लोगों ने भी निवेदन किया कि 'प्रभो, एक छोटा आश्रम-जैसा बनवाएँ।' लेकिन पूज्यश्री ने सदा अस्वीकार किया। उनको यह सब ढोंग-धतूरा पसन्द नहीं था। साफ बात कहनी पसन्द थी, चाहे किसी को बुरा लगे या अच्छा। श्री रमादत्त जी ने आग्रह करके 'चण्डी' पत्रिका में पूज्यश्री की कविता, लेख आदि देकर जो कुछ प्रचार किया, उससे बहुत लोग आए और चले भी गए। बहुत कम व्यक्ति पास रह सके। पूज्यश्री ने एक बार कहा था कि 'जिस व्यक्ति के साथ देह का सम्बन्ध होगा, वह टिक जायगा।' इस पर भी पूज्यश्री ने बहुत कठिन परीक्षाएँ भी लीं और जिनको टिकना था, वे ही टिके रहे। जो भी व्यक्ति प्रश्न करता, उसका उत्तर पूज्यश्री बराबर देते थे किन्तु यदि कोई अण्ड बण्ड प्रश्न बिना समझे करता, तो उससे साफ कह देते थे कि 'यह कोई प्रश्न नहीं है। ठीक से पूछो।'

पूज्यश्री का नित्य का क्रम बिलकुल नियमित था। सुबह ७-७½ के बीच उठ जाते थे। उठकर तुलसी, पुदीना और अदरक का काढ़ा थोड़ा सा दूध डालकर कुल एक कप लेते थे। उसके बाद शौचादि से निवृत्त होकर १ से १½ घण्टे तक समाचार-पत्र पढ़ते थे। उसके बाद ११-११½ बजे तक कभी-कभी १ पाव दूध आग्रह करने पर लेते थे अन्यथा कुछ भी नहीं लेते थे। एक-दो घण्टे दोपहर में आराम करते थे। यदि कोई मिलने आ गया, तो यह आराम भी नहीं मिलता था। शाम को २½-३ बजे फिर काढ़ा पीकर स्नानादि को चले जाते थे। प्राणायामादि से निवृत्त होकर ७ बजे बाहर आते थे। बहुत आग्रह करने पर इस समय थोड़ा अन्न, खिचड़ी या मेथी की पूड़ी, नीम के फूल और मेथी का साग—कढ़ी—बिना नमक या मसाला के लेते थे। बिलकुल सादा भोजन होता था। दरबार में यदि किसी ने प्रश्न

फा० १५

किया, तो उस पर प्रवचन होते, नहीं तो भजन गाए जाते। दरबार समाप्त होने पर और लोग तो जाकर सो जाते, पर स्वयं रात भर जागते। रात को ४ बजे के बाद ७ बजे तक सोते।

पूज्यश्री के सम्बन्ध के अनुभव तो तमाम हैं। उनमें से कुछ का यहाँ वर्णन कर रही हूँ—

पूज्यश्री अपने कार्य के लिये रात्रि के समय समुद्र-तट पर या पहाड़ और जङ्गल में रोज पधारते थे। उस समय हम लोग भी साथ-साथ रात भर घूमते थे। इस प्रकार महीनों तक रात में जागरण करना और दिन में अपने काम करना—यही क्रम चलता था। लेकिन पूज्यश्री की कृपा से किसी पर भी उनका कोई शारीरिक प्रभाव नहीं पड़ता था। सब में हर समय स्फूर्ति बनी रहती थी।

कार्य-वश पूज्यश्री जब समुद्र किनारे जाकर विराजते थे, तब हम सबको कुर्सी से दूर बैठाते थे। एक दिन मैंने पूछा कि 'बाबा आप क्यों जरा दूर बैठने को कहते हैं?' उत्तर मिला कि, 'कार्य का बुरा प्रभाव किसी पर न पड़े, इसलिये।' कभी कोई यदि सामने आ जाता, तो पूज्यश्री उसे पकड़ लेते थे और सामने देखकर बुरा प्रभाव यदि पड़ा हो, तो समेट लेते थे।

पूज्यश्री समुद्र किनारे दूर पर बालू में जब कुर्सी पर विराजते थे तब उतार के समय भी पानी का तेज बढ़ाव हो जाता था और जब तक श्रीचरणों का स्पर्श न होता, तब तक पानी पीछे नहीं हटता था। एक बार पूज्यश्री के साथ मोटर में लोनावला गये थे। बारिश का दिन था। लोनावला में बहुत तेज वर्षा हो रही थी। वहाँ सड़क ही पर पूज्यश्री अपने कार्य से रुक गये। उस समय घमासान वर्षा के बीच हम सबने मेघाच्छन्न आकाश में चन्द्रमा के दर्शन किये। जब तक पूज्यश्री का कार्य चलता रहा, चन्द्रमा बराबर दिखाई पड़ता रहा और जैसे ही कार्य खतम हुआ, चन्द्रमा भी गायब हो गया।

एक बार डॉ० माताप्रसाद ने पूज्यश्री को निमन्त्रित किया। हरकिशन भाई, अजब भाभी आदि सब साथ गये। वहाँ खाने की तैयारी करते समय हरकिशन भाई ने एक कुर्सी उठाई जो बहुत वजनदार थी। उसे लेकर हरकिशन भाई अकस्मात् गिर पड़े और गिरने के साथ ही बेहोश हो गये। नाड़ी आदि का कुछ पता न रहा और दाँत भी बन्द हो गये। उठाकर कुर्सी पर बैठाया गया किन्तु शरीर में कुछ प्रतीत नहीं होता था। सब लोग घबड़ा गये। इलाज किया। डाक्टर आये ब्राण्डी की मालिश की गई। सब करके जब थक गये, तब पूज्यश्री से निवेदन किया गया कि 'आप कहिये यदि कुछ हो, नहीं तो आशा नहीं है।' थोड़ी देर चुप रहे। फिर हरकिशन भाई की नाड़ी वापस आई और आँख खुली। पूज्यश्री की कृपा से उनको फिर जीवन मिला। तब सबके जान में जान आई।

इसी प्रकार पूज्यश्री एक बार राजघाट पर एक मकान में ठहरे थे। वहाँ पर श्री धनपतराम जी नागर का लड़का चि० अद्भुतराम दो या तीन साल का था। मकान में छज्जा था, उसका एक सींखचा टूटा हुआ था। लड़का उसमें से निकल गया और नीचे गली में पत्थर की जमीन पर जा गिरा। नीचे दौड़कर लड़के को ऊपर ले आये। बिलकुल नीला पड़ गया था। नाड़ी आदि कुछ नहीं थी। थोड़ी देर बाद लड़का रोया, तब सबको होश आया। यदि कोई पूछे 'वह कैसे बचा, तो पूज्यश्री की दया से।

एक बार पूना गये थे। वहाँ बाबा जी के पट्ट शिष्य बंशीलाल जी रहते थे। उनके शिष्य भी वहाँ बहुत से थे। एक दिन बाबा जी ने बंशीलाल जी को आमन्त्रित किया कि 'आज यहाँ ही भोजन करना।' हम लोगों ने उनसे पूछा कि 'कितने आदमी आयेंगे?' उन्होंने कहा कि '५ ६ आदमी आयेंगे।' पर शाम को जब आये, तो ३०-४० आदमी आये। उन सबको देखकर हम लोग बड़े घबड़ाये क्योंकि खाना तो ५-६ लोगों के ही लिये बना था। हम लोगों ने बाबा से आकर कहा कि 'यह कैसे पूरा पड़ेगा?'

बाबा ने कहा कि 'तुम लोग सबको बैठा दो और खिलाओ, सब पूरा पड़ेगा।' हम लोगों ने कहा कि 'एक बार आप देख तो आयें।' उन्होंने कहा 'मैं कहता तो हूँ। सब पूरा पड़ेगा। तुम लोग जाकर खिलाओ तो।' आखिर छत पर सब लोग बैठाये गये और हम लोगों ने परोसना शुरू किया। सबने खूब पेट भर खाया। फिर भी खाना बच रहा।

हमारे घर की नौकरानी जमना बाई भी एक बार पूज्यश्री के साथ महाबलेश्वर गई थी। वहाँ पर एक दिन पूज्यश्री तथा उनके साथ घर के सब लोग सुबह से ही घूमने चले गये। उस समय जमना बाई ने क्या देखा कि पूज्यश्री के कमरे के दरवाजे पर एक बहुत भारी लाल मुँह का बन्दर बैठा है। उसे बड़ा डर लगा। उसके साथ उसकी चार महीने की छोटी लड़की थी, उसको लेकर वह बाहर ही बैठी रही। वहाँ से वह कमरे पर बराबर दृष्टि रखे रही। कभी तो बन्दर दिखाई पड़ता, कभी गायब हो जाता। शाम तक वह बाहर बैठी रही। पूज्यश्री जब पधारे, तब उसने यह सब कह सुनाया। पूज्यश्री ने कहा कि 'डरी क्यों? वह तो संरक्षक था! ऐसा दिखाई पड़े, तो कभी डरना नहीं।'

इस प्रकार के कितने ही अनुभव हैं। उन दया-मय श्री प्रभु के सम्बन्ध में जितना भी लिखा जाय, थोड़ा है। वे तो साक्षात् शिव-मूर्ति थे। उनका वर्णन मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति कैसे कर सकते हैं। इधर के तीन वर्ष प्रभुश्री ने कष्ट में ही बिताये, एक पर एक दौरा पड़ता रहा; फिर भी प्रभु हर समय हँस-मुख वदन का ही दर्शन कराते थे। अन्तिम क्षण तक प्रभु बात करते रहे। इतना कष्ट होते हुए भी किसी को मालूम नहीं होने दिया और स्मित-वदन से कष्ट सहन किया, जिससे किसी को दुःख न हो सके। ऐसे महान् दया-मय, पर-दुःख-कातर श्री प्रभु के श्रीचरणों में श्रद्धालु हृदय से श्रद्धाञ्जलि अर्पित करती हूँ।

अन्तरानुभव

सौ० शान्ताबाई श्रीपाद देवकर

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

परम पूज्य बाबाश्री के प्रथम दर्शन मुझे १९४७ में हुए। उसी समय से एकाएक अन्तःकरण में न जाने कैसा परिवर्तन हो गया और स्त्री-हृदय का कोमल भाव रहते हुये भी वज्र जैसी शक्ति-मत्ता अनुभव होने लगी। परिश्रम, सेवा-भाव, कुटुम्ब का बोझ आदि सब मुझ पर ही आ गया। संसार में भाई-बन्धु, सगे मित्रों ने आर्थिक हानि पहुँचाकर हमसे विरोध प्रकट किया। ऊपर से आरोग्यहीनता। फिर भी पूज्य-श्री जी की आरती सभी कष्ट दूर करती रही।

पूज्य श्री के उपदेश-मय भजनों में जो आनन्द प्राप्त होता है, उससे तमाम कष्ट हरण हो जाते हैं। परम पूज्य बाबाश्री के दर्शनों का लाभ जब-जब मिला, तब-तब दिव्य सत्सङ्ग का सौभाग्य मिला।

परम पूज्य बाबाश्री के शरीर (स्थूल रूप) छोड़ने पर भी चित्त-समाधान का अनोखा अनुभव होता है। ऐसा लगता है कि पूज्य बाबाश्री की कृपा से हमारा भारत देश जरूर एक दिन 'जय संयुक्त हिन्द' होगा और सर्वत्र शक्ति ही की उपासना का प्रभाव होगा। साथ ही यह भी अनुभव होता है कि परम पूज्य बाबाश्री का जो कुछ कार्य अपूर्ण है, वह सब वे स्वयं अपने सामर्थ्य से किसी के द्वारा कृपा-प्रसाद से पूर्ण करेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

॥ ॐ नमः बाबाश्री ॥

गुरु-चरणों में

श्री हंसराज जेठाभाई

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

पूज्य बाबाश्री के साथ मैं अनेक वर्षों तक सेवा में रहा और इस प्रकार उनके सम्मुखत्व का परम लाभ उठाने का मुझे सौभाग्य मिल सका।

पूज्यश्री मिताहारी नियमित जीवन बिताते थे और प्रति-दिन रात को उनके उपदेश का कार्य-क्रम समस्त मण्डली के लिए आशीर्वाद-रूप होता था। इस अवसर पर बाहर से आनेवाले श्रोताओं की शङ्काओं का निवारण शास्त्रार्थ से और अपनी शान्त शैली से तथा विद्वत्ता से ऐसा समझाते थे कि मानों साक्षात् प्रभु बोल रहे हैं। फलतः श्रोता-जन पूर्ण सन्तोष व्यक्त करके प्रणाम कर दूसरी बार आने के लिए अनुमति लेकर अपने मुकाम वापस जाते थे।

वैसे तो मेरे अनुभव बहुत हैं किन्तु इनमें से एक का उल्लेख यहाँ पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करता हूँ। मैंने यह सदा अनुभव किया कि जब-जब जो विचार लेकर उस सम्बन्ध में समझने के लिये मैं पूज्यश्री के पास पहुँचता, तब-तब हमारी बात सुने बिना ही वे कहते कि "इस समय क्यों इसलिए आये हो? लो सुनो, इसका अर्थ यह है।" यह सुनते ही आश्चर्य होता था कि पूज्यश्री बिना बताये कैसे जान लेते हैं। मैंने एक बार इसका रहस्य पूछा भी, तो हँसते-हँसते कहने लगे कि 'वह तो माँ की कृपा है। मां जाने!' ऐसी महान् विभूति आज हमारे बीच से प्रभु ने उठा ली।

सन् १९४४ की बात है। एक दिन मैं पूज्यश्री के पास बैठा हुआ था। उसी समय पूज्यश्री के मन में एक विचार (यन्त्र का) आया। उसका स्वरूप बनाने के लिये उन्होंने इस सेवक को आज्ञा की। बनारस के स्वर्गीय शम्भूराम दुर्गाराम नागर भी उस समय उपस्थित थे। उन्होंने भी इस कार्य का अनु-मोदन किया अर्थात् एक विश्व-यन्त्र तैयार किया जाय।

यन्त्र का कार्य प्रारम्भ करने से पहले दश-महाविद्याओं की क्रिया-प्रक्रियाओं का एक छोटा-सा चार्ट बनाया गया। उसके बाद आयल पेण्ट से 'आम वृक्ष'—'जीव' और 'शिव' का एक चार्ट बना और इसके बाद आयल पेण्ट ही से—विश्व-यन्त्र का श्रीगणेश हुआ। इस यन्त्र की प्रेरणा देनेवाली हमारी माता-स्वरूप स्व० मुक्ता बहन थीं। इस यन्त्र के बनाते समय बनारस के श्री सुमतराम दुर्गाराम नागर कुल-कर्म-वाचस्पति' ने हमें हमारी भाषा में समझाने में बड़ा परिश्रम किया। विश्व-यन्त्र का बनाना मेरे लिए अति दुस्तर कार्य था। उसके बनाने की शक्ति पूज्यश्री ने किस तरह मुझमें भर दी, यह आज भी मेरी समझ के बाहर की बात है। इस यन्त्र का भगीरथ कार्य पूज्यश्री की कृपा-युक्त प्रेरणा और आशीर्वाद से १९५० के

दिसम्बर में पूरा हुआ और उनकी दया के बिना यह कार्य कदापि पूरा न हो सकता, यह मेरी दृढ़ मान्यता है।

इसमें सन्देह नहीं कि सर्व शाक्त-समाज के लिए उक्त विश्व-यन्त्र पूज्यश्री का एक दर्शनीय प्रसाद है। इसे उन्होंने अपनी स्वयं प्रेरित भावना से बनवाया है। इस यन्त्र में सभी शाक्त-बन्धु, जब अवसर मिले, विश्व-दर्शन अवश्य करें, यह मेरा नम्र निवेदन है। (इस यन्त्र का परिचय आगे दिया है)

विशेष क्या लिखूं ? पूज्यश्री के न रहने से मानो अपने शाक्त मार्ग के एक तेजस्वी तारे का जीवन-दीप बुझ गया। हम सब पूज्यश्री के उपदेश और आज्ञानुसार ऐक्य-भाव से रहें, तो पूज्यश्री की स्मृति सदा कायम रहेगी। इस विनम्र निवेदन के साथ मैं श्री गुरु-चरणों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

पुरुषोत्तम बाबाश्री

डाक्टर दशरथलाल श्रीवास्तव

('चण्डी' वर्ष १३, सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ ई०, सं० ३)

बाबाश्री पण्डित मोतीलाल मेहता जैसे महान् व्यक्ति की प्रशंसा के सम्बन्ध में उपयुक्त शब्द पाना कठिन है और इस लेख के लेखक के लिये वह कठिनाई और भी अधिक है क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु के लिये बाबाश्री का कृतज्ञ है। मैंने उनका दर्शन पहले पहल ३२ वर्ष पूर्व बनारस में पाया था और तब से उनका आशीर्वाद पाने का सौभाग्य मुझे बराबर मिलता रहा। बम्बई में तीन वर्षों तक प्रायः प्रति सायं-काल उनके चरणों में बैठने और कुछ नई बात जानने का सुअवसर मुझे मिला। मेरे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे मेरे बराबर घनिष्ठ मित्र, दार्शनिक और मार्ग-दर्शक बने रहे और अब जब कि वे भौतिक रूप में मह लोगों से दूर हो गये हैं; मैं उनका अभाव हर कदम पर अनुभव करता हूँ।

बाबा जी की उच्च आध्यात्मिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ कहने का अधिकारी मैं नहीं हूँ किन्तु पुरुषोतम बाबा जी के सम्बन्ध में मैं दो-एक शब्द कहना चाहूँगा। बाबाजी की सेवा में हर समय सभी जातियों और सम्प्रदायों के पुरुष, स्त्री तथा बच्चे एक बड़ी संख्या में उपस्थित होते थे, उन सबके प्रति वे जिस प्रकार हर सम्बन्ध में अति सही ढङ्ग से व्यवहार करते थे, उस प्रकार की कुशलतावाला दूसरा व्यक्ति मिलना कठिन है। यदि इन गुणों से सम्पन्न होने के साथ उन्होंने सार्वजनिक जीवन में आने की केवल इच्छा भर की होती, तो उनकी लोक-प्रियता देश में अद्वितीय होती। तथापि उन्होंने विश्व और देश के हित में चुपचाप और अपेक्षतया अलग रहकर ही कार्य करना चुना।

उनके प्रवचन अत्यधिक शिक्षा-प्रद, उद्बोधक और तर्क-सम्मत होते थे। वे यह कभी नहीं चाहते थे कि हम किसी बात को यों ही ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लें, अपितु वे यह चाहते थे कि हम हर बात के सम्बन्ध में उनसे तर्क-वितर्क करें और उसे तभी स्वीकार करें, जब हमें उस पर विश्वास हो जाय। सबसे बड़ी चीज जो मैंने उनके चरणों में सीखी, वह है अपने कर्तव्य का, निष्ठा के साथ, पालन करना। मेरी प्रार्थना है कि उनके आशीर्वाद से जो कुछ उन्होंने मुझे सिखाया, उसका मैं पालन करता रह सकूँ।

श्रद्धाञ्जलि

श्री हरकिशन ल० झवेरी

('चण्डी' वर्ष १३, सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ ई०, सं० ३)

हे परम पूज्य गुरुदेव ! मैंने आपके प्रथम दर्शन २७ वर्ष पूर्व जिस दिन किये, उसी दिन से मैं आपको प्रभु मानने लगा। आप खुद सचमुच प्रभु हैं, यह आपने मुझको कई बार बताया और मेरी श्रद्धा दिन-प्रतिदिन आप पर अधिकाधिक बढ़ती गई। मैंने मूढ़ मति होकर २-३ बार आपसे अलग होने का विचार भी किया लेकिन हर समय आपने मुझ पर असीम कृपा कर अपने चरण-कमलों से विमुख नहीं किया। वैसे विमुख होकर मैं जाता भी कहाँ क्योंकि आप तो हर जगह मौजूद थे।

मेरे दुर्गुण हटाने के लिये आपने मेरी सब छिपी हुई बातें मुझे कई बार बताईं। उससे मुझे प्रतीत हुआ कि आप सब कुछ जानते हैं और आपसे दुनिया की कोई बात छिपी नहीं है। इससे भी आप प्रभु ही हैं, इस बात ने मेरे मन में सदा के लिये घर कर लिया।

आपने मुझे शरण में लेकर साथ-ही-साथ रखा और जगत् के बहुत सारे कड़वे-मीठे अनुभव भी करवाये। आध्यात्मिक विषय में भी आप मुझे कदम-कदम आगे बढ़ाते ही गये। आपने मुझे और क्या-क्या अनुभव नहीं करवाये ? अपने प्रति आपकी असीम कृपा की ये सब बातें बता कर मैं जगत् को कैसे विश्वास दिला सकता हूँ कि आप 'गुप्तावतार' थे ?

आप सदैव एक साधारण व्यक्ति की भाँति अपने को छिपाये रहे। जिस पर आपकी कृपा रही, वही आपके पास आ सकता था। आपको तीसरी कोटि के महा-पुरुष जानते या मानते हुए लोग भी आपका लाभ उठाने में असमर्थ ही रहे। आपने इस पृथ्वी पर 'गुप्तावतार' लेकर विश्व के कई कार्य किये। मैंने आपको विश्व के कई कार्य करते देखा। आपने कई प्रपात भी किये। मैं सिर्फ अपनी कलम से दुनिया को इन बातों का विश्वास नहीं दिला सकता। लेकिन आपने संवत् १९८५ की कार्तिक बदी ८ को वसोवा में सेठ जगमोहनदास मङ्गलदास के बँगले में ठहर कर जो प्रपात किया था, उसका वर्णन आपने खुद अपने परम शिष्य श्री रमाशङ्कर पण्ड्या को लन्दन लिख भेजा था। वह पत्र अब भी मौजूद है। आपने गद्य और पद्य में क्या-क्या लिखा है, यह न बताकर आपने 'क्या नहीं लिखा !' इतना ही कहना काफी है।

आपने 'भैरवोपदेश' नाम की अपनी एक पुस्तक में जगत् को धर्मोपदेश किया है। वह पुस्तक आपकी एक अनोखी कृति है। भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता-रूपी परमोपदेश में अर्जुन को पाप-मुक्त कर ब्रह्म का साक्षात्कार हो सके, वहाँ तक का ही रास्ता बताया है लेकिन 'भैरवोपदेश' में आपने पूर्ण-ज्ञान-योग के प्रसङ्ग में भूतपूर्व राजा भर्तृहरि को 'पुरुष-पद की प्राप्ति तक का मार्ग बताया है। इस प्रकार आपने ईश्वर-मार्ग में जानेवालों पर असीम कृपा दिखाई है। 'पुरुष'-पद की प्राप्ति का मार्ग 'महा-पुरुष' के अतिरिक्त और कोई नहीं बता सकता। अतएव आप स्वयं महा-पुरुष' थे, इसमें कोई शङ्का नहीं।

अब आप हमारे सामने स्थूल रूप से नहीं हैं, तो भी आप हमारे साथ हैं और रहेंगे, ऐसा मुझे पूर्ण विश्वास है, कारण आपने हमारा हाथ इस जन्म के लिये ही नहीं अपितु जन्म-जन्मान्तर के लिये पकड़ा है। अन्त में, हे गुरुदेव ! आप 'महा-पुरुष' ने इस पृथ्वी पर 'गुप्तावतार' धारण किया था, उसकी गाथा लोग आपके उपदेश और कृतियाँ पढ़कर समझें, जानें और मानें—इस प्रार्थना के साथ मैं श्रद्धा के साथ दी हुई यह छोटी सी अपनी श्रद्धाञ्जलि आपके चरण-कमलों में अर्पित करता हूँ।

———

श्री चरणों में

श्रीमती अजब बेन

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०- सन् १९५४ : सं० ३)

परम पूज्य गुरु-देव के श्रीचरणों में श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने का विचार हमारे भाई श्री रमादत्त के मन में आया। उन्होंने मुझसे भी कुछ लिख देने का आग्रह किया। मेरे सामने यह बहुत कठिन समस्या आ पड़ी। मेरे गुरुदेव कितने महान् थे, इस बात का वर्णन करना मेरे लिए कोई साधारण बात नहीं है। तो भी जो कुछ अपना निजी अनुभव लिख सकती हूँ, यहाँ लिख रही हूँ। मेरे गुरु साक्षात् ईश्वर थे, यह शायद दूसरों को सच न लगे। पर यह तो निजी अनुभव की बात है। इसलिए मैं अपने आत्म-सन्तोष के लिये ही लिखती हूँ। विशेष तो 'मुमुक्षु मार्ग' से जानने को मिलेगा।

मैं जब सात-आठ साल की थी, तब एक दिन एक अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी महात्मा मेरे स्वप्न में आये। मैं उस समय इन बातों को मानती या समझती नहीं थी। तो भी मैंने उनको प्रणाम किया और उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ फेरा। यह सब बात तो पुरानी हो गई परन्तु वह चेहरा मेरे सामने जैसा दिखा था, वैसा ही रहा। इसके बाद कई साल बीत गये। मैं अपने घर आ गई। लड़का भी हो गया। मैं करीब बीस साल की थी, तब एक दिन सुना कि बाबा जी महाराज आये हैं, उनके दर्शन करने जाना होगा। मैं किसी भाव को लिये बिना अपनी सास, जेठानी आदि के साथ श्री कन्हैयालाल भाई के घर गई। मैं सबसे छोटी थी इसलिए सबके पीछे थी, और दर्शन की वैसी उत्कण्ठा भी नहीं थी। परन्तु भीतर जाते ही देखा तो एकदम धक्क-सी रह गई क्योंकि वह तो वे ही थे, जो मेरे स्वप्न में मुझे दर्शन देने आये थे।

मैंने जाकर बहुत प्रेम से विह्वल होकर प्रणाम किया। उन्होंने मेरी पीठ पर हाथ फेरा। मानो कुछ जादू-सा हो गया। थोड़ी देर के बाद हम लोग जब लौटने लगे, तब उन्होंने मुझसे दूसरे दिन आने के लिए कहा। मैंने तुरन्त 'हाँ' कह दिया और मैं बराबर दिन में वहाँ जाने लगी। जैसे पूर्व का कुछ परिचय हो, इसी तरह का मेरा मन हो गया।

इसके बाद तो फिर इस २६ साल में बहुत कुछ अनुभव और कृपा-प्रसाद मिलता रहा, जिसका उल्लेख करना कठिन है पर इतना तो सभी समझ सकते हैं कि कुछ मीठा न मिलता, तो शायद कोई न जाता।

सन् १९३५ के वर्ष में मेरे लड़के का अवसान हुआ। श्री गुरुदेव के चरणों में प्रणाम करके उसका हृदय बन्द हो गया। एकदम हलचल मच गई। सबके सब दुःखी हो गये, पर मेरे गुरुदेव उसी प्रशान्त मुद्रा से झूले पर बैठे रहे। जो होना था, हो गया। मेरे रिश्तेदारों में बहुत निन्दा होने लगी, जैसे कि सब जगह होती है। जिन्होंने इस मार्ग का रहस्य न जाना हो, उनसे हम लोग और क्या आशा रख सकते हैं ! नरसी मेहता, मीरा और कई भक्तों का दृष्टान्त अपने सामने है। ऐसे महान् भक्तों को भी समाज ने नहीं छोड़ा, तो हम लोग क्या चीज हैं ? परन्तु उस समय भी हम दोनों अपने पूज्य श्री गुरुदेव की असीम कृपा से इन सब बातों से बचते रहे।

फिर तो हमारे प्रभु ने हम दोनों को साथ-ही-साथ रखा। यहाँ तक कि अन्तिम बीमारी में भी हम लोगों के हाथ पकड़ते रहे और अन्तिम समय जब देह छोड़ा, तब मेरे हाथ पकड़े हुए बैठकर देह छोड़

दिया। इससे बढ़कर और क्या कृपा हो सकती है ! अब वे हमारे सामने स्थूल शरीर से नहीं हैं परन्तु सूक्ष्म रूप से सदैव हमारे थे, हैं और रहेंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। स्थूल में न होने से हमें दुःख तो बहुत होता है क्योंकि हमारी तो सारी दुनिया ही उजड़ गई। पर यही विश्वास है कि वे हम लोगों को छोड़कर कभी नहीं जा सकते। अन्तिम समय उन्होंने शब्दों में कुछ नहीं कहा, पर हाथ पकड़कर यह जता दिया कि मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा रहा हूँ।

उन्होंने कई साल पहले एक भजन में लिखा है कि 'यहाँ से हम हटे, तो भी हमारा दिल यहीं होगा' -- इस पंक्ति को कोई अपने मन से जिस अर्थ में लेना चाहे, ले सकता है, पर मैं तो उसका यही अर्थ कर सकती हूँ कि वे सदैव हमारे साथ रहेंगे क्योंकि अब हम उनके सिवा किसके पास जा सकते हैं ? एक बार जिसने असली दूध पिया हो, उसे पाउडर के दूध से कहीं सन्तोष हो सकता है ? अब तो यही भाव सम्मुख रखकर समय व्यतीत करना है। यही मेरा निजी अनुभव और मानना है।

सूर्य का प्रकाश तो सब जगह एक-सा है, पर घर में परदा लगा देने से धूप और प्रकाश न आये, तो इससे सूर्य को कोई एक-पक्षीय नहीं कह सकता। इसलिए किसी को अनुचित लगे, तो पाठक-गण मुझे क्षमा करें। पर मेरे गुरु इतने दयालु और सम-भावी थे कि सब कोई कह सकते हैं कि 'हमारा है मोती, हमारा रहेगा', इसमें कोई शक नहीं है। जिन्होंने जो चाहा होगा, वही उनको मिला होगा। उन्होंने स्वयं लिखा है कि 'अनन्त छतां भक्त ज्यां चित्त आपे। तथा थी प्रगट ध्यान ने नाम जापे ॥' अब इससे बढ़कर हम और सान्त्वना की क्या आशा रख सकते हैं ? उन्हीं के श्रीचरणों में सहस्र कोटि साष्टाङ्ग प्रणाम।

महा-प्रयाण पर

श्री प्रभातकुमार बनर्जी

('चण्डी' वर्ष १३, सम्वत् २०११ वि० - सन् १९५४ ई०, सं० ३)

कलि काल के अधर्म-विस्तार के सङ्कट-काल में शक्ति-मयी श्री विश्व-माता के परम भक्तों के परित्राण के लिये उन्हीं की इच्छानुसार आप परम भक्तों के बीच प्रकट हुए थे और उन्हें पथ निर्देश देते थे। अपनी महती उदारता से आप अपने भक्तों को स्वेच्छा-कृत सहायता से इतना अधिक विमुग्ध कर चुके हैं कि आपके इस जीव-लोक से महा-प्रयाण कर जाने पर भी आपकी विभूति अभी भी भक्तों के बीच विद्यमान अनुभव होती है और आपकी अवर्णनीय गुणावली के खेल आज भी दृष्टि-गत हो रहे हैं। भक्तों के बीच से आपका पूर्णतया हटना कदापि सम्भव नहीं और आप परम भक्तों की श्रद्धाञ्जलि पाते ही रहेंगे।

आपने शक्ति-मयी देवी के परम गुप्त रहस्यों को स्वतः उद्घाटित करके बिना किसी भेद-भाव के भक्तों में बाँटा है। इसके लिये अखिल भक्त वर्ग आपको सतत श्रद्धाञ्जलि चढ़ाते रहेंगे। आपके गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा सदा होती रहेगी।

आपने अनेक भक्तों को देवी-सायुज्य दिला दिया है; इससे परम भक्तों को भले प्रकार अनुभव हो चुका है कि आप कितने उच्च कोटि के परम सिद्ध महा-पुरुष रहे हैं। आप श्री श्री महादेवी की महा-शक्ति के धारण और वितरण के लिये परम उपयुक्त महाधार हैं। आपकी जय-जयकार सदा बनी रहे।

श्रद्धा के वनफूल

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल

पूज्य-चरण श्रीमान् बाबा जी का नाम सुना था। उनकी कीर्ति भी सुनी थी, यह भी सुना था कि वे मूर्ति-मान कौल हैं परन्तु दुर्भाग्यवश उनके दर्शन करने को मैं उनकी सेवा में कभी उपस्थित नहीं हो सका। वे प्रायः प्रति-वर्ष बम्बई से काशी जी पधारते थे और वहाँ लगभग दो महीने रहकर फिर बम्बई चले जाते थे। काशी में उनकी वृद्धा माता जी काशी-सेवन करती थीं। बाबा जी की एक-मात्र पुत्री वहीं एक गुजराती सम्भ्रान्त ब्राह्मण-परिवार में व्याही थीं। इसके अतिरिक्त वहाँ के कुछ नागर तथा खेडेवाल गुजराती ब्राह्मणों का एक मण्डल उनका अनन्य भक्त था। कदाचित् इन्हीं सब बातों के कारण वे प्रति वर्ष काशी जी आया करते थे। उनके इस आगमन और वहाँ उनके ठहरने तथा उनके दरबार की तरह-तरह की बातें मेरे काशी के मित्र मुझसे आकर कहा करते थे। उनकी बातें सुनकर मैं उनके दर्शन के लिये उत्साहित तो होता था परन्तु इसके लिये काशी कभी जा नहीं सका।

बहुत दिन बाद जब प्रयाग के पण्डित शिवनाथ काटजू ने सन् १९४२ के महा-कुम्भ पर्व के अवसर पर 'अखिल भारत-वर्षीय शाक्त सम्मेलन' की स्थापना की और उसी वर्ष के अप्रैल में सम्मेलन के मुख-पत्र के रूप में 'चण्डी' नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, तब उसकी एक प्रति बम्बई के पते पर पूज्य-चरण श्रीमान् बाबा जी की सेवा में भेजी जाने लगी।

बाबा जी पत्रिका के अङ्कों को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। यहाँ तक कि उन्होंने 'चण्डी' के लिये एक पत्र लिखकर काटजू साहब को बधाई भी दी। यही नहीं, उस वर्ष जब वे काशी जी को पधारने लगे, तब मुझे हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यिक पण्डित ज्वालादत्त जी शर्मा का एक तार मिला। उन्होंने मुझे आदेश किया था कि 'बाबा जी प्रयाग पधार रहे हैं, अमुक सज्जन के यहाँ ठहरेंगे। जाकर उनके दर्शन अवश्य करो।'

शर्मा जी की मुझ पर बड़ी कृपा रहती थी। इसके पहले वे प्रयाग पधार कर बाबा जी के सम्बन्ध में बहुत कुछ बता गये थे। मुझे डाँटा भी था कि 'तुम कितने निकम्मे आदमी हो, बाबा जी प्रति वर्ष काशी आते हैं, वहाँ जाकर तुम्हें उनके दर्शन नहीं करते बनता।' आदि आदि।

खैर, तार पाते ही में इण्डियन प्रेस के काम से छुट्टी पाने पर घर गया और जल्दी-जल्दी सब कामों से निपट कर वहाँ पहुँचा, जहाँ बाबा जी ठहरे हुये थे। गृह-स्वामी मेरे मित्र थे।

मकान के बाहर के एक छोटे-से कमरे में बाबा जी का दरबार लगा हुआ था। भजन हो रहे थे। भीतर पहुँचकर दूर से प्रणाम कर अपना परिचय देकर मैं एक जगह पर बैठ गया। जब भजन समाप्त हुआ, तब गृह-स्वामी ने धीरे से मुझसे कहा कि 'कोई प्रश्न पूछो, उपदेश सुनने को मिले।' परन्तु हिम्मत नहीं पड़ी।

जब दूसरा भजन समाप्त हुआ, तब फिर उन्होंने मुझसे आग्रह किया। इस बार हिम्मत बाँधकर मैंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'क्या मैं कुछ जिज्ञासा कर सकता हूँ ?'

बाबा जी उठकर बैठ गये और बड़ी प्रसन्नता से कहा कि 'हाँ हाँ, अवश्य पूछिये।'

मैंने हाथ जोड़कर कहा कि 'शाक्त-धर्म का ह्रास क्यों हो रहा है ?'

बाबा जी उसी क्षण अपना प्रवचन करने लगे। प्रवचन क्या था, कौल धर्म की ऐसी सुन्दर विवेचना थी, जिसे मैंने अपने जीवन में पहली ही बार सुना था। सभी लोग चुपचाप सुन रहे थे। बाबा जी धारा-प्रवाह बोल रहे थे। बीच-बीच में उनके एक भक्त उन्हें एक छोटे-से प्याले में कोई द्रव पदार्थ पिलाते जाते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि वे सज्जन बाबा जी की थकान का अनुभव कर यह पेय पदार्थ उन्हें पिला देते थे और बाबा जी अपना उपदेश उसी ओजस्विता के साथ बराबर करते जाते थे।

बाबा जी के भक्तों की भाव-भङ्गी से मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैंने उक्त प्रकार का प्रश्न करके उनको बे-मतलब ही कष्ट दिया है। इस कल्पना से मुझे क्षोभ हुआ। मैं बार-बार उनके भक्तों के चेहरों की ओर देखने लगा। उनके भक्तों में दो गुजराती स्त्रियाँ भी थीं। उनकी ओर मेरी दृष्टि जाते देखकर उन्होंने कदाचित् समझा कि मैं इस विचार में हूँ कि उनके साथ ये युवतियाँ क्यों हैं ? उन्होंने तुरन्त ही अपने प्रवचन में स्पष्ट रूप से कहा कि 'यह सब सामग्री कौल के 'टेस्ट' (परीक्षा) के लिये है।'

मैं हत-प्रभ हो गया क्योंकि वैसा कोई भाव मेरे मन में नहीं था। प्रवचन के समाप्त होने पर वे फिर विश्राम करने लगे और भजन प्रारम्भ हुए। भजन भी क्या थे, अमृत की वर्षा हो रही थी। यही इच्छा होती थी कि बैठे भजन सुनता रहूँ और वहाँ से न जाऊँ, परन्तु यह बड़ी धृष्टता की बात होती। अतएव प्रणाम कर आज्ञा लेकर मैं वहाँ से चला आया।

दूसरे दिन सवेरे मैं काटजू साहब के यहाँ पहुँचा। भेंट होने पर मैंने कहा कि 'बम्बई से बाबा जी पधारे हैं और अमुक स्थान पर ठहरे हैं।' 'चण्डी' के सम्बन्ध में बाबा जी का पत्र उन्हें पहले मिल चुका था। उन्होंने बड़े उत्साह से कहा कि 'चलिये, दर्शन कर आयें।' वे शीघ्र ही तैयार हो गये।

हम दोनों मोटर पर बैठकर बाबा जी के ठहरने के स्थान पर पहुँचे। कमरे में जाकर देखा कि वे एक खटहटी चारपाई पर लेटे हुये हैं, सामान सब बँध गया है। हम दोनों को देखकर वे उठ बैठे। जमीन पर पड़ी हुई सीतलपाटी पर बैठते हुये उन्होंने हम लोगों को भी बैठने की आज्ञा दी। मैंने काटजू साहब का परिचय दिया। वे बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने कहा कि 'ठीक है। आप लोगों से मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।'

काटजू साहब की ओर मुँह करके कहा कि 'आपके भी दर्शन हो गये। मैं तो काशी जाने के लिये तैयार बैठा हूँ। शम्भूराम नागर मुझे बुलाने के लिये आये हैं। बाहर बैठे पूजा कर रहे हैं।' इसके बाद उन्होंने शाक्त-धर्म के सम्बन्ध में एक छोटा—सा भाषण किया। हम दोनों बैठे चुपचाप सुनते रहे। भाषण की समाप्ति पर देखा कि उनको घर के भीतर जाने की जरूरत है। अतएव हम दोनों ने विदा माँगी और प्रणाम कर चले आये।

इस प्रकार मैं बाबा जी के सम्पर्क में आया या यों कहें कि बाबा जी ने हम लोगों को स्वयं प्रयाग पधार कर अपने मण्डल में दया-पूर्वक शामिल कर लिया। बाद को मालूम हुआ कि बाबा जी ने इसी प्रकार अपने भक्तों के मण्डल की रचना की है। बम्बई में भी, काशी जी में भी तथा रायपुर में भी। वे सचमुच बड़े दयालु थे और खोज-खोजकर लोगों को अपने धर्मोपदेशों से उपकृत किया करते थे।

इसके बाद ही मेरी आँखों में भयानक विकार उत्पन्न हुआ। चिकित्सा के लिये जब मैं काशी जी गया, तब मुझे ज्ञात हुआ कि बाबा जी काशी पधारे हैं और सङ्कट-मोचन में निवास कर रहे हैं। मैं वहाँ उनके दर्शन करने गया। काशी में रहकर मैंने अपनी दवा कराई किन्तु लाभ कुछ नहीं हुआ और खाली हाथ लौट आया। जब बाबा जी को मालूम हुआ कि मेरी दृष्टि-शक्ति नष्ट हो गई है, तब बड़ी दया करके वे प्रयाग पधारे और कोई दो महीने तक मुट्ठीगञ्ज की एक गुजराती धर्मशाला में रहकर हम लोगों को नित्य ही अपने उपदेशामृत से तृप्त करते रहे।

इसके बाद वे दूसरे वर्ष फिर पधारे और पूर्व-वत् ही उसी धर्मशाला में ठहरे रहे। इन दो वर्षों के सत्संग में बाबाजी की असीम दया का मैंने अनुभव किया परन्तु वे कौन थे, क्या थे, कैसे थे, इसका पता मुझे न लग सका। वे एक ऐसे केन्द्र में स्थित रहते थे कि उनको पेहचान लेना कम-से-कम मेरी शक्ति के परे की बात थी। अतएव मैं उनके दरबार में बैठकर उनके उपदेशों को सुना भर करता था, अपनी ओर से कभी कोई बात पूछता नहीं था। यदि कभी कुछ पूछता था, तो उनके भ्रमणों की ही बात।

बाबा जी ने हिंदूकुश से लेकर दार्जिलिंग तक हिमालय का, हिंगलाज से लेकर गिलगिट तक पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त का, सह्याद्रि, नीलगिरि, पूर्वी घाट तथा उस अंचल के दण्डकारण्य का, बंगाल के सुन्दर-वन का, आसाम के कदली-वन का पर्यटन किया था। इनके अतिरिक्त अर्बुद, गिरनार, अमर-कण्टक, नर्मदा तथा ताप्ती की घाटी के वनों का भी भ्रमण किया था। यही नहीं, वे योरप भी हो आए थे।

मैंने एक दिन पूछा कि 'आपको योरप में किसी महात्मा के भी दर्शन हुये ?' उन्होंने कहा कि 'भारत के जैसे साधु-सन्तों का वहाँ मिलना सम्भव नहीं। मैंने एक पादड़ी से पूछा था। उन्होंने मुझसे कहा कि जिस प्रकार के साधु-सन्तों से आप मिलना चाहते हैं, वैसे साधु फ्रांस और इटली की सीमा में आपको मिलेंगे। मैं वहाँ गया परन्तु जो भी मिले, उनमें अधिकांश मेस्मेरेज्मि और हिप्नोटेज्मि के ही अभ्यासी मिले। इससे अधिक नहीं। परन्तु इस क्रिया में वे बहुत बढ़े मिले।'

बाबा जी का भ्रमण-वृत्तान्त अनूठा और अनोखा है। वे सदैव निर्जन-प्रिय रहे। एकान्त-वास उनका प्रिय स्थल रहा और हिंसक पशुओं तथा जन्तुओं से आकुल स्थान उनकी विनोद-शाला रही। इन स्थानों का जब वे वर्णन करने लगते, तब उनका चित्र-सा अङ्कित कर देते। उन सबका वर्णन करने के लिये इस छोटे-से लेख में स्थान नहीं है।

जहाँ तक मैं समझता हूँ, उनके भक्तों ने उस सबको लेख-बद्ध कर लिया है, जो सर्वथा उचित ही हुआ है।

एक दिन मैंने विजयनगर के खण्डहरों की चर्चा छेड़ दी। उन्होंने कहा कि 'मैं उधर से निकला "। किष्किन्धा के एक भले आदमी ने मुझे आमन्त्रित किया। मैं इस पार एक दूरस्थ मन्दिर में ठहरा था। जब मैं उसके यहाँ गया, तब उसने कदाचित् जान-बूझ कर इतनी देर कर दी कि मैं वहाँ से रात ही में लौट सका। उसने मेरे साथ दो आदमी कर दिये थे। नदी पार कर चुकने पर वे दोनों वहाँ के दृश्यों को देखकर इतने भयभीत हुये कि भाग खड़ हुये। मैं बड़ी कठिनाई से अपने स्थल को पहुँच सका।

"रात में मार्ग मिलना कठिन था, अन्दाज से ही गया। मुझे देखकर पुजारी ने कहा कि 'इतनी रात को कैसे आये ?' मैंने पूछा कि 'क्यों, क्या बात है ?' वह कुछ नहीं बोला। दूसरे दिन मालूम हुआ

कि मुझे पहुँचाने जो दो आदमी आये थे, वे बीमार हो गये हैं। फिर मुझे वहाँ का और भी हाल मालूम हुआ। तब मुझे किष्किन्धा के उस भले आदमी पर बड़ी खीझ हुई।"

इस प्रकार वे अपने भ्रमण-वृत्तान्तों का उल्लेख किया करते थे, जिन्हें सुनकर कोई नहीं कह सकता था कि यह आँखों देखा वृत्तान्त नहीं है।

एक बार नेपाल के राणा धन शम्शेर जङ्ग बहादुर के पुत्र प्रयाग आये थे। उन दिनों बाबा जी यहीं ठहरे हुये थे। जब उन्हें मालूम हुआ, तब वे उनके दर्शन करने के लिये गये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा कि 'नेपाल में एक ऐसी जगह है, जहाँ की मिट्टी शेर खाते हैं।' बाबा जी हँस पड़े। उन्होंने कहा कि 'शेर मिट्टी नहीं खाता। वह मांस-जीवी पशु है। आपने जो कहा है, वह भी ठीक है। बात यह है कि शेर कस्तूरी मृग का शिकार कर वहाँ रख देता है, तब उस स्थान की मिट्टी उसका रक्त सोख लेती है। वहाँ की मिट्टी में शोषण-शक्ति अधिक है। जब कभी कोई शेर उधर से विकलता है, तब रक्त की गन्ध पाकर वहाँ की मिट्टी कुरेदने लगता है और उसे मुँह में भी डाल लेता है। शेर मिट्टी नहीं खाता।'

बाबा जी ने हिमालय के पर्यटन में वहाँ से निकलनेवाली नदियों के उद्गम-स्थानों का भी परिदर्शन किया, केवल सिन्धु या ब्रह्म-पुत्र के उद्गम-स्थानों तक नहीं गये क्योंकि वहाँ ऐसे साँप रहते हैं, जो उड़कर आदमी को डस लेते हैं। गङ्गा जी के उद्गम-स्थान को भी देखने के लिये वे गये थे। उन्होंने देखा कि मुख्य उद्गम-स्थान का स्रोत बन्द हो गया है और उससे हटकर दूसरी ओर से एक नाली द्वारा जल आता है, जो उद्गम के पास गङ्गा जी की धार में मिलकर उसे प्रवाहित करता है। उन्होंने बताया कि 'निम्न श्लोक की सार्थकता मुझे पहले पहल यहीं दिखाई दी—

कलौ दश-सहस्राणि विष्णुस्त्यजति मेदिनीम्।
तदर्धे जाह्नवी-तोयं तदर्धे ग्राम-देवता॥

—अर्थात् कलियुग के पाँच हजार वर्ष बीतने पर गङ्गा जी यहाँ से चली जायँगी। गो-मुख की धारा के बन्द हो जाने के कारण का इससे समर्थन होता है।'

बाबा जी हिमालय की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। उन्होंने बताया था कि 'हिमालय के विस्तृत क्षेत्र में कोसों तक एक ऐसी लम्बी घाटी है, जहाँ किसी भी प्रकार के प्राणी नहीं मिलते। हाँ, बड़े-बड़े अजगरों से अवश्य भेंट हो जाती है। उस घाटी में एक प्रकार की ऐसी मुलायम घास उगती है कि जिस पर पैर पड़ने से यही अनुभव होता कि मानों मखमल पर पैर पड़ रहा हो। वहाँ ऐसी कन्दों की भी सुलभता है, जिन्हें खाने से भूख-प्यास नहीं लगती।'

हिमालय के भ्रमण करने के बाबा जी के अनुभव अनूठे हैं। वे वहाँ से बहुत से दुर्लभ ग्रन्थ-रत्न भी लाये थे। हिमालय की यात्रा समाप्त कर बाबा जी सीधे रायपुर पहुंचे थे। रायपुर पहुँचकर उन्होंने अर्ध-रात्रि में वंशीलाल का द्वार खटखटाया। उन्होंने भीतर से दरवाजा खोल दिया और बाबा जी का स्वागत करते हुए हाथ जोड़कर निवेदन किया कि 'मैं श्रीचरणों की ही प्रतीक्षा में बैठा हूँ। पधारिये, सब सामान तैयार है।' बाबा जी भीतर पहुँचकर हाथ-पैर धोकर पूजा-गृह में पधारे। वंशीलाल को पहले ही आदेश मिल चुका था। बाबा जी ने उनका संस्कार किया। ये उनके प्रथम शिष्य थे। फिर बाबा जी काशी चले गये और उन्होंने अब अपना धर्म-प्रचार का कार्य चुन-चुनकर कुछ व्यक्तियों

में करना प्रारम्भ किया। उनका यह प्रचार सदैव गुप्त तथा रहस्यात्मक ही रहा और उनके इस प्रचार के मुख्य केन्द्र काशी, रायपुर और बम्बई रहे।

श्रीमान् बाबा जी योगी, दार्शनिक, मन्त्रज्ञ आदि सभी कुछ थे परन्तु मुख्यत: वे राज-राजेश्वरी महा-त्रिपुर-सुन्दरी के ऊर्ध्वाम्नायी उपासक थे। उनका अधिकांश जीवन योग-साधना तथा कुलार्चन में ही व्यतीत हुआ परन्तु उनको साधनाओं का रहस्य कोई-ही-कोई जान सका। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि कोई भी नहीं जान सका। यह अवश्य है कि लोगों ने उन्हें योगाभ्यास करते देखा; आठ-आठ, दस-दस दिन तक समाधिस्थ रहते भी लोगों ने देखा। उनके कुलार्चनों में भक्त लोगों ने सम्मिलित होने का सौभाग्य भी प्राप्त किया। यह सब हुआ, तो भी वे सदैव अज्ञात ही रहे। उनके वास्तविक स्वरूप को कोई नहीं जान सका।

जानने से मेरा तात्पर्य यह है कि उनके अपना भेद खोल देने पर भी उनके उस असल स्वरूप को पहचान कर उनके अनन्य भक्त तक उनके प्रति अपनी भावना को दृढ़ता से स्थिर नहीं रख सके और उनका सान्निध्य प्राप्त करते हुये भी सभी भव की भाव-धारा में ही बहते रहे। कौस्तुभ-मणि को पाकर भी वे उसे सब किसी की दृष्टि से छिपाये रखने में ही सदा व्यस्त रहे या यही बात इस तरह कहें कि स्वयं बाबा जी ने ही उन सबको ऐसा मोह-ग्रस्त रखा कि उनका स्वरूप सर्व-साधारण को किसी भी प्रकार प्रकट न होने पावे। कम-से-कम मुझे तो ऐसा ही अनुभव हुआ है। वे सचमुच ही एक दिव्य विभूति थे और उनके अत्यन्त निकट रहकर भी, आत्म-समर्पण कर देने पर भी, उनको पा लेना कम-से-कम मैंने असाध्य कार्य ही समझा।

बाबा जी की साधना की कथाएँ भी बड़ी रोचक, हृदय-ग्राही तथा उत्साह-वर्धक हैं। जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, समय-समय पर उन्होंने उनका वर्णन स्वयं ही किया है और वे भी यात्रा-विवरणों की भाँति अवश्य लिख ली गई हैं। मुझे भी उनमें से कुछ स्वयं उनके श्रीमुख से सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

एक बार बाबा जी काशी जी में मरुआ डीह में एक एकान्त स्थान में ठहरे थे। भक्त लोग वहाँ उनकी सेवा में नियत समय पर बराबर पहुँचते रहते थे। एक कौलाचार्य को बाबा जी के आगमन का पता लग गया। बाबा जी के एक भक्त द्वारा ये भी उनकी सेवा में पहुँच गये। इनसे वार्तालाप होने पर दयालु बाबा जी ने इन्हें भी अपने कुलार्चन में आमन्त्रित किया। ये भी बराबर नियत समय पर पहुँचने लगे। बाबा जी ने उन्हें समझ लिया कि ये कितने गहरे पानी में हैं। एक दिन के अर्चन में बाबा जी के एक भक्त के साथ उनका आठ वर्ष का बालक भी था। अर्चन प्रारम्भ हुआ। बालक को भी उतना प्रसाद मिलता, जितना उन कौलाचार्य जी को। अर्चन के बाद जब उन्होंने बालक को पूर्व-वत् ही स्थिर और अविकल देखा और अपनी स्थिति से उसकी स्थिति की तुलना की, तब उन्हें मन-ही-मन बहुत क्षोभ हुआ। उन्होंने बाबा जी से अपने मन की बात कही। बाबा जी ने हँस दिया और कहा कि 'यह तो अपनी मनो-दशा का परिणाम है। बालक की पूजा बटुक के रूप में हुई है। उसे आप बालक क्यों समझते हैं?' वे मन-ही-मन बहुत कुण्ठित और लज्जित हुये और फिर उस दिन से वे बाबा जी की सेवा में उपस्थित नहीं हुये।

काशी जी में रहते समय बाबा जी प्रति-दिन सन्ध्या समय अपने भक्त शिष्यों के साथ गङ्गा जी के किनारे-किनारे होते हुये अस्सी के उधर उस स्थान पर पहुँच जाते थे, जहाँ बाबू शिवप्रसाद की 'सेवा-

सदन' नाम की कोठी बनी हुई है। उन दिनों वहाँ कोठी आदि कुछ नहीं थी। एकदम सूनसान और एकान्त था। बाबा जी वहीं भक्तों के साथ यजन कर समाधि लगाया करते थे। इसके अतिरिक्त काशी जी के बाहर स्व० गोविन्दराम जी की बगिया में रहकर भी उन्होंने बहुत दिनों तक एकान्त-वास में साधना की थी। उनके वर्तमान शिष्यों में से एक प्रमुख शिष्य श्री रमाशङ्कर पण्डचा उन दिनों हिन्दू कालेज में अध्ययन कर रहे थे। ये प्रायः बाबा जी के दर्शनार्थ वहाँ जाते और उनकी सेवा में अपना समय देते। बाबा जी की इन पर विशेष कृपा थी और ये भी उनके अनन्य भक्तों में से अन्य-तम थे।

शारदा-पीठ के भूतपूर्व शङ्कराचार्य स्वामी श्री त्रिविक्रमतीर्थ जी महाराज कौल साधकों में अग्रगण्य समझे जाते थे। इन्होंने शारदा-पीठ की गद्दी छोड़कर देश के भिन्न-भिन्न भागों में भ्रमण कर कुल-धर्म का अच्छा प्रचार किया था। ये काशी में प्रायः आया करते थे। अपनी इसी एक यात्रा में ये एक दिन भिक्षा के लिये स्वर्गीय शम्भूराम जी नागर के घर पधारे। वहाँ उनके पूजा-गृह में एक यन्त्र को देखकर इन्होंने नागर जी से पूछा कि 'यह यन्त्र तुमको कहाँ मिला ?'

नागर जी ने बताया कि 'गुरुदेव बाबा जी से प्राप्त हुआ है।' स्वामी जी ने पूछा कि 'ये आपके गुरुदेव बाबा जी कहाँ हैं ?' उन्होंने बाबा जी का पता बता दिया। स्वामी जी ने चुपचाप भिक्षा की। भिक्षा कर चुकने के बाद उन्होंने नागर जी से कहा कि 'तुम भी जल्दी खा-पी लो और मेरे साथ बम्बई चलो। जो भी पहली गाड़ी मिलेगी, उसी से चलूँगा। मैं आपके बाबा जी के दर्शन करना चाहता हूँ।'

नागर जी ने आज्ञानुसार जल्दी-जल्दी भोजन किया और स्वामी जी के साथ हो लिये। दोनों आदमी तुरन्त स्टेशन पर पहुँच कर बम्बई की गाड़ी पर सवार हो गये। उनके बम्बई पहुँचने पर बाबा जी ने स्वामी जी का उनके अनुरूप ही स्वागत-सत्कार किया।

सुअवसर मिलने पर बाबा जी का स्वामी जी से वार्तालाप हुआ। वार्तालाप क्या, दोनों में एक प्रकार का शास्त्रार्थ हुआ। प्रसङ्ग-वश अघोर का भी विषय छिड़ा। इस विषय का बाबा जी ने ऐसे उत्तम ढङ्ग से स्पष्टीकरण किया कि स्वामी जी अवाक् रह गये। दूसरे दिन जब इन दोनों महा-पुरुषों का फिर सत्सङ्ग हुआ, तब स्वामी जी ने बाबा जी को एक हस्त-लिखित पुस्तक भेंट की। वह थी 'अघोर-सूत्रावली'। पूर्व दिन अघोर-विषय पर बाबा जी ने जो प्रवचन किया था, उसी को स्वामी जी ने सूत्र-बद्ध कर दिया था। इस पुस्तिका को देखकर बाबा जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वामी जी की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

इन दो महा-पुरुषों के इस सम्मिलन से बाबा जी का दरबार एक दिव्य रूप प्रदर्शित करने लगा। वहाँ के एक दिन के अर्चन—अर्चन नहीं, महाऽऽर्चन में, लोगों का विश्वास है, बाबा जी में शङ्कर का आवेश हुआ था और वे हलाहल का पान करने लगे। भूल से स्वामी जी ने उसमें से कुछ भाग ले लिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि वे अचेत हो गये। रात भर वे उसी दशा में पड़े रहे। इधर बाबा जी का अर्चन-भजन सारी रात होता रहा, दूसरे दिन जब स्वामी जी सावधान हुये, तब वे बहुत ही लज्जित हुये। बाबा जी ने उन्हें सान्त्वना देते हुये कहा कि 'कोई बात नहीं। आपको क्या पता कि मैं हलाहल पान कर रहा हूँ कि अमृत।'

स्वामी जी अब अच्छी तरह जान गये कि बाबा जी किस कोटि के महात्मा हैं। अब स्वामी जी अपनी जिज्ञासा की पूर्ति के लिये बाबा जी से आग्रह करने लगे। फलतः एक दिन निश्चित हुआ

और बाबा जी निशा में अपनी मण्डली के साथ स्वामी जी को लेकर समुद्र-तट पर गये। मण्डली को अपने से कुछ दूर बिठाया और अपने से कुछ दूर स्वामी जी को। सब लोग निर्दिष्ट स्थान पर बैठ गये। इस अवसर पर बाबा जी ने क्या किया, यह मुझे नहीं ज्ञात परन्तु ये सब लोग रात भर वहीं बैठे रहे। सारी रात उन पर घोर वृष्टि होती रही और तूफानी हवा चलती रही परन्तु किसी को तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। तड़का होने पर बाबा जी उठ खड़े हुये। उन्हें देखकर और भी लोग उठ खड़े हुये।

जल-वृष्टि और तूफानी हवा भी बन्द हो चुकी थी। बाबा जी के समीप आकर स्वामी जी ने कहा कि 'मेरा अभीष्ट पूरा हो गया। आप धन्य हैं। आप बड़े दयालु हैं।' इसके बाद वे सब लोग वहाँ से चल पड़े और ऊपर आकर पेय-गृह में चाय पीकर अपने स्थान में आ गए। उन सबको दिन भर ऐसा ही प्रतीत हुआ, मानों पिछली रात में कुछ हुआ ही नहीं। बाबा जी की यह लीला उनकी ऐसी ही लीलाओं में एक निराली लीला थी।

स्वामी जी अब कृतार्थ थे। उन्होंने उपर्युक्त घटना के उपलक्ष्य में बाबा जी को रौप्य का एक पान-पात्र दिया था, बहुत ही सुन्दर और उसके भीतर श्रीयन्त्र अङ्कित। उस पात्र को मैंने देखा है। स्वामी जी बाबा जी से इतना उपकृत हुए कि उन्होंने इनकी एक छोटी-सी जीवनी लिखी थी। बाबा जी की लिखी हुई सप्तशती की एक कापी का उन्होंने फोटो भी लिया था। यह बाबा जी की एक अद्भुत रचना है। इसमें सप्तशती के प्रत्येक श्लोक का बीज, उसका देवता, उसका ध्यान आदि अनेक बातें प्रत्येक श्लोक के साथ-साथ लिखी गई हैं।

जब स्वामी जी बाबा जी से विदा होने लगे, तब उन्होंने कहा कि 'अब आपका समय पूरा हो गया है।' स्वामी जी ने उत्तर दिया कि 'मैं पूर्ण मनोरथ हो चुका हूँ। मेरी अब यहाँ आवश्यकता भी नहीं है।' यह कहकर स्वामी जी ने बाबा जी से विदा ली। इसके बाद निर्दिष्ट समय पर वे दिवङ्गत हो गये।

इस प्रकार की एक नहीं, अनेक घटनायें हैं। उन सबका वर्णन करना इस लेख में सम्भव नहीं है तथापि एक-दो का और वर्णन करके मैं अपना लेख समाप्त करूँगा।

बाबा जी के एक अति प्रिय शिष्य हैं। उनका नामोल्लेख मैं यहाँ नहीं करना चाहता। वे अमेरिका में थे। मोटर-दुर्घटना के शिकार हो गये। जब उन्हें होश हुआ, तब उन्होंने देखा कि वे एक शय्या पर लेटे हुए हैं और एक अंग्रेज महिला उनकी शुश्रूषा कर रही हैं। सात-आठ दिन में वे चंगे हो गये, तब उससे विदा लेकर उसके घर के बाहर आये। उन्होंने बाहर उस मकान को अच्छी तरह देखा-भाला, मुहल्ले का नाम भी पड़ोसियों से ज्ञात किया—इस विचार से कि अवसर मिलते ही कुछ उपहार लाकर इस दयालु महिला के प्रति अपनी कृतज्ञता-ज्ञापन करूँगा।

अपने ठहरने के स्थान पर जाकर उन्होंने अपनी दुरवस्था का हाल अपने मित्रों से बताया। सब लोगों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया और वे सब प्रसन्न हुए। दूसरे दिन जब वे उपहार लेकर उस मुहल्ले में गए और उस मकान के द्वार पर पहुँचे, तब देखा कि उसमें ताला जड़ा हुआ है। उन्होंने पड़ोसियों से पूछा कि 'इस मकान की गृह-स्वामिनी कहाँ गई हैं?' उन्होंने हँसकर कहा कि 'कहाँ की गृह-स्वामिनी! यह मकान तो छः महीने से इसी प्रकार बन्द है।' यह सुनकर वे बड़े आश्चर्य-चकित

हुए और वहाँ से चुपचाप अपने घर लौट आए। इस घटना का विवरण उन्होंने बम्बई अपने मित्रों के पास लिख भेजा। उन्होंने जब उनका यह पत्र बाबा जी को सुनाया, तब वे कुछ नहीं बोले, केवल मुस्करा भर दिया। लोगों ने यही समझा कि यह सब बाबा जी की लीला है।

बाबा जी अपने को फक्कड़ कहा करते थे। जब ये अपने अवधूत-वेष में अर्बुद, गिरनार आदि पर्वतों के भ्रमण में होते, तब वहाँ के अन्य साधु भी 'फक्कड़' ही कहकर इनका आगत-स्वागत किया करते। एक बार अर्बुद की एक साधु-मण्डली के पास से जब बाबा जी निकले, तब उनमें से एक ने इन्हें बुलाया और जब ये उनके पास पहुँचे, तब कहा कि 'फक्कड़, बैठो और आज पञ्च-रत्नी का आस्वादन करो बाबा जी ने इन्कार किया परन्तु जब उन्होंने बहुत आग्रह किया, तब इन्हें बैठ जाना पड़ा। पञ्च-रत्नी क्या थी, संखिया, सींगिया आदि पाँच महा-विषों के मिश्रण की चिलम तैयार की गई थी, जो वे साधु पी रहे थे। इनका नम्बर आने पर बाबा जी ने भी एक फूंक लगाई और ये वहाँ से अपने स्थान को चले आए। अपने स्थान पर आकर बाबा जी ने कुछ यौगिक क्रिया की, साथ ही कुछ घृत का भी पान किया। फिर जल्दी-जल्दी नीचे उतरकर उस साधु-मण्डली के पास गये। वहाँ सबके सब बेहोश पड़े थे। उनका यह हाल देखकर बाबा जी द्रुत गति से नीचे उतर गये और पुलिस चौकी में पहुँचकर उस घटना की सूचना दी। तुरन्त पुलिस आई। तब तक दो साधु दिवङ्गत हो चुके थे। तीन का उपचार होने लगा और कदाचित् वे बच भी गये। इस प्रकार की भी लीलाएँ बाबा जी किया करते थे।

बाबा जी का वार्तालाप अधिकतर उपदेशात्मक ही होता था। व्यर्थ की बातचीत वे बहुत कम करते थे। उनकी बातचीत सुनकर सभी लोग दङ्ग रह जाते थे। उनकी स्मृति-शक्ति विलक्षण थी। पुरानी-से-पुरानी बात वे ज्यों-की-त्यों ऐसे ढङ्ग से कहते थे, मानों कल की ही उनकी देखी-सुनी है। एक बार प्रसङ्ग-वश मैंने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की चर्चा की। बाबा जी ने कहा कि 'मैं द्विवेदी जी से मिल चुका हूँ।' मैंने आश्चर्य के साथ पूछा कि 'यह कब की बात है ?' बाबा जी ने कहा कि अपने कार्य के वश मैं नन्दा पर्वत जा रहा था। मार्ग में झाँसी पड़ गई। मैं वहाँ अपने एक मित्र के यहाँ ठहर गया। सन्ध्या समय उन्होंने कहा कि 'चलो, एक विद्वान् से तुम्हें मिलावें।' मैं सहर्ष उनके साथ हो गया। द्विवेदी जी ने हम लोगों को बड़े आदर-सत्कार के साथ लिया। बातचीत होने लगी। इसी बीच में उन्होंने अपनी नई कविता हमें सुनाई। वह कविता अयोध्या के राजा के प्रति लिखी गई थी। उसकी दो पंक्तियाँ मुझे आज भी याद हैं।'

और वे पंक्तियाँ बाबा जी ने पढ़ दीं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। सन् १९०३ के पहले वह कविता लिखी गई थी और आज सन् १९४७ में बाबा जी उसकी दो पंक्तियाँ मुझे सुना रहे हैं, जिनमें कुछ भी कवित्व नहीं है! मैंने पूछा कि 'महाराज, यह कौन-सा महत्व का पद्य है, जिसे आप इतने दिनों से याद किए हुए हैं!' बाबा जी ने हँसकर कहा कि 'ठीक कहते हो परन्तु इसमें जो के० सी० एस० आई० शब्द का प्रयोग हुआ है, वह मुझे अच्छा लगा। इसी से ये पंक्तियाँ याद रहीं।'

एक बात और। बाबा जी काशी में ठहरे हुए थे। वहाँ उनकी एक-मात्र पुत्री की कन्या का विवाह था। देश के दुर्भाग्य से विवाह के दिन ही महात्मा गांधी मार डाले गए। प्रयाग के जो व्यक्ति उक्त विवाह में शामिल होने के लिए गए थे, उनमें से एक ने आकर मुझे बताया कि बाबाजी को महात्मा जी के मारे जाने की बात पहले ही से ज्ञात हो गई थी। उन्होंने कहा कि 'बाबा जी ने कोई ४ बजे आज्ञा दी कि शहर जाकर यहाँ के लोगों को जल्दी वापस ले आओ।' वे सब लोग उस दिन विवाह के

सिलसिले में शहर गए थे। बाबा जी छावनी में अपने भक्तों के साथ डा० जे० एन० माथुर के बँगले में ठहरे थे। उक्त बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। काशी से लौटने पर जब बाबा जी प्रयाग के स्टेशन पर बम्बई की गाड़ी पकड़ने के लिए उतरे, तब मैं भी उनके दर्शन करने के लिए गया। वे फर्स्ट क्लास के वेटिंग रूम में ठहरे हुए थे। अवसर पाते ही मैंने पूछा कि 'क्या सचमुच आपको गांधी जी के मारे जाने की बात पहले से मालूम हो गई थी?' उन्होंने कहा 'ऐसा तो नहीं। उस दिन मैं ध्यानस्थ था। मुझे कुछ ऐसा जान पड़ा कि कोई अघटित घटना होनेवाली है इसलिए मैंने डा० माथुर के लड़के को बुलाकर कहा था कि शहर जाकर मण्डली के लोगों को जल्दी लिवा लाओ।' मैंने फिर पूछा कि 'क्या वह अघटित घटना जानी जा सकती थी?' बाबा जी ने कहा कि 'यदि प्रयत्न किया जाता, तो कोई असम्भव बात नहीं थी।' बाबा जी की ऐसी ही विचित्र बातें होती थीं।

बाबा जी ने अपनी दया दिखाकर मुझे बहुत ढीठ बना दिया था। अतएव मैं उनसे इसी तरह के ऊटपटाँग प्रश्न प्रायः किया करता था। वे भी दयापूर्वक मेरा पूर्ण रूप से समाधान कर देते थे। वे जैसा पात्र देखते थे, उसी के अनुरूप वे उसके साथ व्यवहार करते थे। वे यह जानते थे कि मैं कौल मार्ग की पद्धति का माननेवाला हूँ। वे मेरे भाव का बड़ा आदर करते थे। इस विषय का जब मैं कोई प्रश्न उनसे करता, तब वे बड़ी प्रसन्नता के साथ मेरा पूरा समाधान कर देते थे।

इधर कई वर्षों से न मालूम किस कारण उन्होंने कुलार्चन करना छोड़ दिया था, परन्तु यह नहीं था कि वे उसके विरोधी हो गये। एक दिन मेरे यहाँ अर्चन था। उस दिन हम लोग दरबार में नहीं उपस्थित हो सके। बाबा जी को अर्चन की बात पहले हो से ज्ञात थी। उन्होंने मण्डली में कहा कि 'आओ, आज शुक्ल जी के यहाँ चलें। उनके यहाँ अर्चन हो रहा है।' परन्तु कदाचित् उनके भक्तों की सहमति उन्हें नहीं मिली और उन्होंने आने का कष्ट नहीं किया। इसे मैं अपना दुर्भाग्य समझता हूँ। वे उस दिन पधारते, तो उनकी चरण-पादुका का अर्चन कर मैं स-परिवार कृतार्थ हो जाता।

बाबा जी के सत्सङ्ग का आनन्द मुझे बहुत ही कम प्राप्त हुआ। वे प्रयाग पधारकर दो ही बार यहाँ ठहरे। इन्हीं अवसरों पर मैं उनके दरबार में उपस्थित होकर प्रायः प्रति-दिन उनके उपदेशामृत का पान करने का अवसर पा सका। उसकी याद भूलने की नहीं। उनके उपदेशों का बहुत कुछ प्रभाव मुझ पर पड़ा है। मैंने उनसे काफी अधिक लाभ उठाया है परन्तु उनके वास्तविक स्वरूप को प्रयत्न करने पर भी कभी हृदयङ्गम नहीं कर सका। वे मुझ जैसे अल्प-मति के व्यक्ति के बहुत परे की वस्तु थे।

बाबा जी वस्तुतः एक दिव्य विभूति थे। यहाँ आए और विश्व के कल्याण का कार्य सम्पन्न कर चुपचाप यहाँ से चले गए। जो सौभाग्यशाली थे, उन पर उनकी कृपा हुई और वे निःसन्देह धन्य हैं। मैं उतना सौभाग्यवान् नहीं था, तो भी उन्होंने अपनी असीम दयालुता के कारण मुझे ही नहीं, मेरे परिवार के सभी लोगों को प्रेमपूर्वक अपने दरबार में बैठने का स्थान ही नहीं दिया किन्तु बहुत कुछ अपना बना लेने की भी उदारता दिखाई।

आज बाबा जी का पार्थिव शरीर यहाँ नहीं है परन्तु उनकी पुनीत स्मृति हम लोगों को उनके बताए हुए गन्तव्य मार्ग की ओर पूर्व-वत् ही अग्रसर कर रही है। मुझ जैसे क्षुद्रों के लिए यह एक बहुत बड़ी बात है। 'चण्डी' के उनके श्रद्धांक में अपने विचारों के ये कुछ बनैले फूल उनके श्रीचरणों में श्रद्धा के साथ अर्पित करके मैं उनको भक्तिपूर्वक बार-बार प्रणाम करता हूँ।

एक दिव्य विभूति

श्री १०८ स्वामी अक्षोभ्यानन्द सरस्वती जी महाराज

श्रीमान् बाबा मोतीलाल जी महराज का परिचय मुझे पहले पहल प्रयाग में ही प्राप्त हुआ था। वहाँ मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि ये विन्ध्याचल में अष्ट-भुजा के पास बहुत दिन तक रहे और वहाँ ये 'नीम-बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे। बात यह थी कि प्रति-दिन नीम की पत्तियों का एक बड़ा गोला भाँग की तरह पीसा जाता, जिसे घोल कर ये पी जाते। मैंने भी इनका नाम सुना था परन्तु भेंट कभी नहीं हुई थी; यद्यपि ये मेरे भैरव-कुण्ड के आश्रम से कुछ ही दूर निवास करते थे। मेरा ज्येष्ठ पुत्र इनसे खूब परिचित था। उसे ये कुश्ती लड़ना सिखाया करते थे परन्तु यह बात मैं नहीं जान सका था कि ये एक श्रेष्ठ कौल महात्मा भी हैं।

प्रयाग में अपने भक्तों से बाबा जी का पूरा परिचय पाकर बड़ी प्रसन्नता हुई और एक दिन गुजराती धर्म-शाला में जाकर मैंने उनके दर्शन भी किये। उस अवसर पर उन्होंने मेरा यथोचित सत्कार किया और बड़े प्रेम से बातचीत भी की। बाद को जब मैंने लक्ष-चण्डी महा-यज्ञ करने का विचार किया और उसके सम्बन्ध में बम्बई गया, तब मैंने बाबा जी से भी उस सम्बन्ध में परामर्श करना उपयुक्त समझा। अतएव मैं उनके स्थान पर गया। उस समय वे वायु-विकार से पीड़ित थे। न तो चल-फिर सकते थे, न बोल ही सकते थे। तो भी उन्होंने मेरा बड़े आदर के साथ स्वागत किया। मुझे अपनी बात कहने में सङ्कोच हुआ परन्तु अन्त में कहनी ही पड़ी। बाबा जी ने बड़े उत्साह के साथ मेरे यज्ञ-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन ही नहीं किया किन्तु स्लेट पर लिखकर यह भी बताया कि इस महा-यज्ञ में कितना धन लगेगा और अन्य बातें भी ब्योरेवार बताईं। मुझे इस प्रकार उन्होंने बहुत कुछ प्रोत्साहित किया। वे वस्तुतः एक दिव्य विभूति थे।

दुःख की बात है कि उनके जैसे महात्मा और भगवती के अनन्य उपासक देश के इस सङ्कट-काल में नहीं रहे। उनकी अवस्थिति इस समय अत्यधिक आवश्यक थी। तो भी मुझे विश्वास है कि उनकी उच्च-तम आत्मा उस परम धाम से भी हम लोगों को सन्मार्ग प्रदर्शित करती रहेगी।

अभाव का अनुभव

श्रीमती सर्वेश्वरी देवी माथुर

परम पूज्य बाबाश्री के दर्शन मुझे सबसे पहले सन् १९४७ में मिले। दर्शन पाकर मुझे बड़ी ही शान्ति मिली। जो कुछ मेरे मन में इच्छा हुई, वह परम पूज्य बाबा श्री के आशीर्वाद से हमेशा पूरी हुई।

इतने बड़े महात्मा जी इतनी जल्दी हम सबको छोड़कर चले गये और हम लोगों ने कुछ ज्ञान नहीं सीख पाया, इसका मुझको बड़ा दुःख है।

परमहंस बाबा जी

श्री धनशम्शेर जङ्ग बहादुर राणा

श्री १०८ पूज्य मोतीलाल जी महाराज परमहंस थे। आपके महा-प्रयाण से शाक्त-समाज की महान् क्षति हुई है। आप जैसे परमहंस के साथ फिर हम लोगों का सम्पर्क होना दुर्लभ-सा ही है। आपसे 'चण्डी' ने कितनी सहायता पाई, इस बात को 'चण्डी' स्वयं ही कहेगी।

लीलामय बाबाश्री

श्री शङ्करलाल भगवान दास

बाबाश्री के विषय में कुछ भी लिखना मेरे लिए सम्भव नहीं। उन्होंने ऐसी - ऐसी बातों का दर्शन और अनुभव कराया, जिनका वर्णन यदि करने बैठें, तो किसी को विश्वास न हो। वे एक महान् विभूति थे। उनकी लीलाओं का स्मरण करके आज भी मेरा रोम-रोम रोमाञ्चित हो उठता है। वे कितने स्नेह-शील थे ! मुझे उन्होंने पग-पग पर सावधान किया, चेतावनी दी। जब-जब उन्होंने जो भी मुझसे कहा, वह आगे चलकर सच साबित हुआ।

एक बार शाम को अचानक ही पूज्यश्री का आदेश हुआ--'चलो, लोनावला चलें।' मैं बीमार था, शरीर से बिल्कुल दुर्बल। फिर भी मण्डली के साथ गया। लोनावला पहुँच कर पूज्यश्री सबको लेकर एक पहाड़ पर चढ़े, मैं भी किसी तरह ऊपर पहुँचा। शिखर पर खड़े होकर पूज्यश्री ने कुछ क्रिया-सी की और निर्मल आकाश में, जहाँ तारे छिटके हुये थे, वहीं बादल घिर आए, बिजली कड़कने लगी, पानी बरसने लगा, सभी तर-बतर हो गए।

मैं कुछ तो निर्बलता से और कुछ विस्मय-विमूढ़ता से काँपता हुआ बैठ गया। माँ मुक्ता बेन मौजूद थीं। उन्होंने मुझे अपने पैरों के पास बिठा लिया और सान्त्वना दी--'घबड़ाओ नहीं।' इसी समय पूज्यश्री ने गम्भीर स्वर में 'ॐ' का उच्चारण करते हुए हाथ की मुद्रा से फिर कुछ क्रिया की और बादल आदि साफ हो गए।

हम लोग नीचे उतरे। भीगे हुए कपड़े निचोड़े। चाय की आवश्यकता प्रतीत हुई किन्तु वहाँ जङ्गल में चाय कहाँ ? फिर भी संयोग देखिए कि जब हरकिशन भाई इधर-उधर ढूँढ़ने निकले, तो कुछ दूर पर एक दूकान में पता चला कि चाय की सब सामग्री मौजूद थी। बात यह हुई कि कोई बारात उधर आनेवाली थी। उसी के लिए चाय की वहाँ व्यवस्था की गई थी किन्तु बारात किसी कारण से नहीं पहुँच सकी और जामन न होने के कारण दूकानदार दूध को जमा भी नहीं सका। फलतः हम सब लोगों को चाय मिल गई और शरीर में कुछ गर्मी अनुभव हुई।

मैं डर रहा था कि इस प्रकार रात भर जागने और पानी में भीगने से अब और भी बीमार पड़ूँ या क्या ऊपर आए। पर सिर तक नहीं दुखा और दूसरे दिन यह जान तक नहीं पड़ा कि पिछली रात का जगा था या पानी में भीगा था।

इस प्रकार के कितने ही अनुभव हुए, जिनका वर्णन करना लेख का कलेवर बढ़ाना मात्र होगा। अतः लिखना बन्द कर लीला-मय बाबाश्री की लीलाओं की पुण्य स्मृति में अपनी श्रद्धा-पूर्ण श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूँ।

शिव-रूप बाबा श्री

श्रीपाद गणेश देवकर

परम पूज्यश्री के प्रति अपने अनुभव लिखने के लिए पू० पप्पा जी (श्री कन्हैयालाल जी दवे) ने पत्र देकर सूचना दी लेकिन मैं कुछ समझ न सका कि परम गुरु बाबाश्री के सम्बन्ध में क्या लिखूँ, कारण यह मेरे जैसे अल्पज्ञ के परे बात है। फिर भी श्रीकृपा से कुछ अनुभव लिखने की चेष्टा करता हूँ। वैसे तो पूज्यश्री के अनुभव यदि मैं लिखूँ, तो एक मोटी किताब ही तैयार हो जाय। उन अनुभवों के साथ मेरा अपना भी चरित्र प्रदर्शित होगा। अतः कुछ ही अनुभव क्या, एक प्रत्यक्ष घटना जो मेरे जीवन में घटित हुई, यहाँ पर लिखता हूँ—

मेरी गृह-लक्ष्मी मृत्यु-शय्या पर अपने मायके में पड़ी थीं और हर प्रकार की दवा कर हम सब परेशान हो चुके थे। ऐसी स्थिति में एक दिन मैं पूज्यश्री से प्राप्त मन्त्र का जप तन्मय होकर कर रहा था। एकाएक श्री भगवान् नीलकण्ठेश्वर के रूप में दर्शन देकर उन्होंने मुझसे कहा 'नारायण राव, उठो। परेशानी किस बात की? जब मैं ही सर्वस्व हूँ, तो घबराते क्यों हो? सुनो, मैं सौ० शान्ता की प्रकृति आज ही से सँभाल लेता हूँ। लेकिन उसके सर्व-विकार तो मैं ग्रहण कर लूँगा किन्तु स्त्री-विकार ग्रहण नहीं करूँगा।'

मैं हत-बुद्धि-सा हो गया और जप समाप्त होने पर सबेरे ११-३० से लेकर २-३० बजे तक मेरे रोम-रोम में एक प्रकार की सनसनाहट होती रही। श्री प्रभु की कृपा से उसी दिन से मेरी गृह-लक्ष्मी की प्रकृति सुधरने लगी और तब से स्त्री-विकार को छोड़कर उसमें कोई अस्वस्थता नहीं रही। इस रहस्य को एक सर्वेश्वर बाबाश्री ही जानें।

इस प्रकार के चमत्कार-पूर्ण अनुभव तो कितने ही हैं, उन्हें कहाँ तक लिखूँ! किन्तु धन्य है परम पूज्यश्री के अमृत-मय उपदेश को, जिसमें भक्ति, ज्ञान, योगादि का रहस्य तो परिपूर्ण रहता ही था, हमारे जैसे लोगों के कल्याण के लिए उसमें युग-धर्म शक्ति-उपासना का मर्म भी बड़ी खूबी से भरा रहता था। लोगों में मन्त्र-तन्त्र के सम्बन्ध में जो घृणा थी और 'वाममार्ग-वाममार्ग' कहकर जिस शक्ति-पन्थ की अवहेलना हो रही थी, उसका वास्तविक रहस्य अपने उपदेश से प्रकट कर उस सारे प्रतिकूल भाव को उन्होंने दूर कर दिया। इस प्रकार जगत्-कल्याण का अपना महान् कार्य उन्होंने पूरा कर दिखाया। पूज्य श्री वस्तुतः शिव-रूप थे और मैं तो उन्हें साक्षात् भगवान् शिव ही मानता था और मानता हूँ।

ज्यादा लिखना एक आडम्बर-जैसा होगा या प्रचार जैसा लगेगा। अतएव पूज्य श्री - चरणों में प्रणामपूर्वक लेख समाप्त करता हूँ।

आशुतोष पूज्य बाबाश्री

श्रीमती शीला माथुर

बाबाश्री के दिव्य दर्शनों का सौभाग्य मुझे प्रथम बार सन् १९३७ में अपने छोटे पुत्र के मुण्डन के अवसर पर हुआ। पहले से कुछ विशेष परिचय न होने पर भी पूज्यश्री ने हमारे प्रथम निमन्त्रण को ही स्वीकार कर लिया था। उनके कुछ प्रधान शिष्यों को इस बात पर आश्चर्य भी हुआ था और उन्होंने कहा भी कि पूज्यश्री आना स्वीकार करेंगे, इसमें संदेह है क्योंकि वे किसी के यहाँ आते-जाते नहीं हैं। परन्तु पूज्यश्री की तो हम पर बड़ी कृपा थी, जिसका वर्णन करना कठिन है।

इस प्रथम दर्शन के बाद से तो अन्त समय अर्थात् नवम्बर १९५३ तक उनकी दया हमारे ऊपर सदा बनी रही। हम लोग प्रति-दिन सन्ध्या समय सन् १९३७ से १९५१ तक पूज्यश्री के दर्शन को जाते थे और वहाँ कई घण्टों तक बैठकर उनके सुन्दर उपदेशों तथा अलभ्य दर्शनों का लाभ उठाते थे। सचमुच वे हमारे जीवन की बहुत ही उत्तम घड़ियाँ थीं, जिनमें हमें उनका सामीप्य प्राप्त होता था।

पूज्यश्री जी के विषय में अधिक कहना मेरे जैसे तुच्छ व्यक्ति के लिए अति कठिन है परन्तु फिर भी इतना कहना अनुचित न होगा कि पूज्यश्री परम दयालु तथा देश-भक्त थे। उनकी इस देह की कठिन तपस्याएँ तथा साधनाएँ अवर्णनीय हैं। वे नीच-ऊँच, अमीर-गरीब, सुखी-दुखी—हर व्यक्ति को एक समान देखते थे तथा सब पर उनकी एक सी दया रहती थी। वे बड़े ही महान् व्यक्ति थे। ऐसी महान् आत्माएँ संसार में बार - बार नहीं आतीं।

उनका प्रत्येक भक्त यह अनुभव करता था कि मुझ पर उनकी सबसे अधिक दया है परन्तु मेरी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यह धारणा गलत है। उनके लिए सब एक समान थे। वे तो परम दयालु, भक्तों के मनोरथों को पूर्ण करनेवाले आशुतोष भगवान् शङ्कर के समान थे। उन्हें धन-दौलत, सुख-दुःख, आनन्द-भोग किसी वस्तु की अपने लिए आवश्यकता ही नहीं थी। वे सिद्ध महा-पुरुष और दिव्यात्मा थे। उनके लिए जो भी कहा जाय, थोड़ा है। अपने भक्तों और शरण में आए आर्त्त-जनों की पुकार को उन्होंने कभी नहीं ठुकराया। चाहे किसी ने उनके सम्मुख आकर मुँह से कुछ कहा या कहीं दूर से मन में उनका ध्यान किया, उन्होंने सदा उसके दुःखों को दूर किया है।

मेरे साथ भी ऐसा ही अनेक बार हुआ है। उन्होंने सदा ही सुख-दुःख में और कठिन अवसरों पर मेरी सहायता की है। यद्यपि मैं समझती हूँ कि पूज्यश्री की भक्त-मण्डली में मैं ही सबसे तुच्छ हूँ। जब कि और भक्तों ने उनके लिये अपना सर्वस्व भी त्यागकर उनकी अनवरत सेवा की, अपने सुख-दुःख को भुला दिया; जिस समय जो आज्ञा हुई, उसे बिना सोचे-विचारे पालन किया; अपने जीवन के अन्य आमोद-प्रमोदों को त्यागकर उन्हीं में अपने को तन्मय कर दिया--वहाँ मैंने उनके लिए कुछ भी नहीं किया, जरा सी भी तो सेवा नहीं की, उल्टे उन्हें सदा कष्ट ही देती रही! फिर भी यह लिखने में बहुत ही सुख का अनुभव होता है कि ऐसे योग्य अनेक भक्तों के होते हुए भी उनकी दया मुझ जैसी कुपात्री पर भी कम नहीं थी—जैसे मा के अनेक योग्य बालक होने पर भी उसे अपने अयोग्य और दीन बालक पर कम दया और सहानुभूति नहीं होती बल्कि कुछ अंशों में अधिक ही होती है, वैसे ही मुझ पर भी उनकी सदा ही अपार दया रही है।

श्री बाबा जी का विज्ञानमय उपदेश

श्रीश्यामलाल सक्सेना

सर्वश्री १००८ बाबा जी के दर्शन प्रथम बार कोई १६ साल हुए, एक मित्र के घर पर हुए। श्री बाबा जी उनके यहाँ आमन्त्रित थे और मैं यों ही पहुँच गया था। बाबा जी स्वयं बड़े सफाई-पसन्द थे। उनके भक्त लोग उन्हें प्रेम-वश समयानुकूल वस्त्रों से सुसज्जित रखते थे, जिसे अपनी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार पहले मैंने आडम्बर समझा था। किन्तु एक-दो बार ही के मिलने पर तथा प्रश्नोत्तर पाने पर मुझे भासित हो गया कि मैं एक ऐसे महान् व्यक्ति के सम्पर्क में हूँ, जो धार्मिक तत्वों की मीमांसा विज्ञान के नियमों-द्वारा कर मेरे ऐसे मनुष्य को, जो किसी बात को जब तक समझ न ले, मानने को तैयार न हो, सन्तुष्ट कर सकते हैं। अतएव मैं बाबा जी के निवास-स्थान पर जाने लगा। मुझे खेद है कि मैं बाबा जी से, जितना हो सकता था, उतना लाभ न उठा सका। वे सदैव ज्ञान देने को प्रस्तुत रहते थे। मैं तो समझता हूँ कि उन्हें इसी में हार्दिक प्रसन्नता मिलती थी। शारीरिक कष्ट होने पर भी भक्त-जनों के विरोध करने पर भी, वे कुछ-न-कुछ समझा ही देते थे।

उनके कथनानुसार (जैसा कि मैं समझ सका) संसार में 'जीवन-शक्ति' भरी है, इसके अति-रिक्त कुछ भी नहीं। संसार में जो कुछ भी है, उसी 'जीवन-शक्ति' का अनुरूप है। 'गति' इस 'जीवन-शक्ति' की प्रकृति है और 'विकास' इसका स्वभाव है। यह शक्ति अति सूक्ष्म लहरों में गतिवान है। इन लहरों के संघर्ष तथा एक दूसरे से इस प्रकार मिलने पर, जैसे कि भँवर या गाँठ पड़ जाती है, 'जीवाणु' उत्पन्न होता है। 'जीवाणु' का सर्वाङ्ग जीवन-शक्ति है, जो गति-मय है। केवल उसकी गति केन्द्रित हो जाती है। बहुधा जीवाणु विध्वंस हो जाते हैं तथा 'जीवन-शक्ति' में फिर परिणत हो जाते हैं। किन्तु कुछ जीवाणु एक दूसरे से मिल कर स्थायी हो जाते हैं तथा उनको 'सत्ता' प्राप्त होती है और इस प्रकार जीव की सत्-रूप (मैटर) में उत्पत्ति होती है।

कदाचित् वैज्ञानिक लोग इस 'जीवन-शक्ति' का अनुसन्धान कर सकें। यह अनुसन्धान विज्ञान का सर्वोत्तम अनुसन्धान होगा। जहाँ तक मुझे स्मरण है, बाबा जी ने कहा था कि 'जीवन-शक्ति' सूर्य-मण्डल से अति सूक्ष्म रश्मियों-द्वारा भू-मण्डल में प्रसारित होती है।

प्रथम अनुच्छेद में जीवाणु तथा जीव जड़-रूप में किस प्रकार उत्पन्न होता है, कहा गया है। यह भी कहा गया है कि विकास 'जीवन-शक्ति' का प्राकृतिक स्वभाव है। इसी स्वभाव के अनुसार जीव, जिसका सर्वाङ्ग 'जीवन-शक्ति' है, विकसित होता है तथा उसमें चैतन्यता आती है। जड़-रूप जीव में 'चैतन्यता' किस प्रकार आती है, इस प्राकृतिक नियम का मुझे ज्ञान नहीं। बाबा जी ने कुछ बताया था किन्तु मैं भूल गया। हाँ, यह जानता हूँ कि सत्-रूप जीव का पुनः विकास उसमें 'चैतन्यता' का आना है अर्थात् जीव, जिसका प्रथम गुण 'सत्ता' है, दूसरे गुण 'चैतन्यता' को प्राप्त करता है। उसके आगे का विकास 'मनो-गुण' को प्राप्त करना है। तदुपरान्त बुद्धि का विकास होता है और सर्वोपरि उसमें 'अहङ्कार' आता है। 'अहङ्कार' का सांसारिक अर्थ गर्व लिया जाता है किन्तु यहाँ उसका अर्थ है - 'अहं' (मैं) को प्राप्त करना अर्थात् जीव स्वत्व तथा आत्मत्व प्राप्त कर एक व्यक्ति हो जाता है।

सत-चित्-मन-बुद्धि-अहङ्कार गुणों से सम्पन्न जीव का इस भू-लोक में सर्वोच्च विकास मनुष्य है। मनुष्य तथा उससे निम्न श्रेणी के जीवों में यह अन्तर है कि निम्न श्रेणी के जीव बहुधा एक दूसरे से मिलकर विकसित होते हैं किन्तु अहङ्कार के प्राप्त करने पर जीवन एक पृथक् व्यक्ति हो जाता है। फिर वह किसी दूसरे जीव से मिलता नहीं है और आगे अकेला ही विकसित होता है। द्वितीय जीव जैसे - जैसे विकसित होता है, वैसे-वैसे उसमें स्थिरता आती है। निम्न श्रेणी के जीव कुछ नष्ट होकर विलीन हो जाते हैं। कुछ परस्पर मिलकर एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में विकसित होते हैं किन्तु अहङ्कार के गुण को प्राप्त कर जीव पूर्णतया स्थायी हो जाता है, उसका विनाश नहीं होता।

प्रकृति के किन नियमों द्वारा तथा किस प्रकार जीव जड़-रूप से मनुष्यता को प्राप्त करता है, वैज्ञानिक यदि इसका पता लगा सकें, तो यह प्रकृति के नियमों का सबसे बड़ा अनुसन्धान होगा। विकास 'जीवन-शक्ति' का स्वभाव है। जैसे-जैसे जीव का विकास होता है, वैसे - वैसे उसमें स्थिरता आती है और उसके आगे विकास में प्रकृति का हस्तक्षेप कम हो जाता है। सत्-रूप में जीव उत्पन्न होकर बहुधा विलीन हो जाते हैं अर्थात् फिर 'जीवन-शक्ति' की लहरों में मिल जाते हैं। जो कुछ स्थायी हो जाते हैं, उनके विकास के लिए प्रकृति ही सब कुछ करती है। मनुष्य की श्रेणी के प्राप्त करने पर जीव पूर्णतया स्थायी व्यक्ति हो जाता है। उसका नाश नहीं होता किन्तु उसके विकास के लिए उसे स्वयं ही परिश्रम करना पड़ता है, प्रकृति सहायक मात्र होती है।

मनुष्य सत्, चित्, मन, बुद्धि और अहङ्कार गुणों से सम्पन्न जीव है। उसमें सत - चित् का विकास तो पूर्ण-रूप से हो जाता है। उससे आगे बढ़ने के लिए मन को स्थिर करना तथा बुद्धि को विकसित करना है। जैसा ऊपर कहा गया है, जीव सर्वाङ्ग शक्ति है, जिसकी प्रकृति गति है। उसी प्रकृति के अनुसार मन सदैव गति-मय रहता है। मन की चञ्चलता के कारण ही मनुष्य प्रकृति के आधिपत्य में रहता है। मन के स्थिर हो जाने पर मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करता है। इच्छा मन की चञ्चलता के कारण उत्पन्न होती है। साधारणतया इच्छा की उत्पत्ति पर मनुष्य का काबू (आधिपत्य) नही होता। प्रकृति के वातावरण के अनुसार इच्छा उत्पन्न होती रहती है। जितना ही मन स्थिर होता जाता है, उतना ही प्रकृति का यह खेल कम हो जाता है। स्थिर-मन मनुष्य पर प्रकृति का यह बड़ा दबाव नहीं पड़ता। वह इच्छा - रहित हो जाता है अर्थात् प्रकृति के प्रभाव से उसमें इच्छायें नहीं उठतीं।

मन कैसे स्थिर हो, यह दूसरा विषय है। मुझे इसके बारे में अधिक ज्ञान नहीं। हाँ, इतना ज्ञान है कि ज्ञान तथा योग-द्वारा मन स्थिर किया जा सकता है।

मनुष्य की आत्मा में स्वयं विकास के लिए शक्ति होती है। भू-लोक में वह शरीर द्वारा अपना विकास करती है। अपने विकास के लिए वह शरीर धारण करती है। जब प्रकृति के नियमानुसार शरीर इतना जीर्ण हो जाता है कि आत्मा उसके द्वारा आगे बढ़ न सके, तो वह उसे त्याग देती है। शरीर की मृत्यु हो जाती है। शरीर को त्याग कर आत्मा प्रायः मूर्छित हो जाती है। उस अवस्था में उसके पूर्व-जन्म के प्रकृति से लगे हुये बन्धन धीरे-धीरे मिटते जाते हैं। मृत्यु - समय आत्मा को सांसारिक वस्तुओं से जितना अधिक मोह होता है, उतनी ही देर उसके प्रभाव के मिटने में लगती है। जब उसके पूर्व-जन्म के लगाव मिट जाते हैं, तब आत्मा जागृत होकर प्रकृति के नियमानुसार स्वयं ऐसा स्थान ढूँढ़ लेती है, जहाँ से उसकी फिर उन्नति हो सके अर्थात् वह फिर मनुष्य-रूप में जन्म लेती है।

इस प्रकार आत्मा शरीर धारण करती, छोड़ती रहती उन्नति की ओर बढ़ती रहती है। अकसर यह पूछा जाता था कि मनुष्य की आत्मा मनुष्य के चोले में ही जन्म लेती है अथवा किसी दूसरे चोले में जाती रहती है। इसके बारे में जहाँ तक मुझको याद है, बात्रा जी ने बताया था कि प्रकृति के नियमानुसार जब आत्मा मनुष्य की श्रेणी पर पहुँचती है, तब प्रायः नीचे जाने की सम्भावना नहीं होती। वह आत्मा प्रायः मनुष्य का ही चोला धारण करती है।

आत्मा का जैसे-जैसे विकास होता जाता है, वैसे-वैसे उसमें शक्ति बढ़ती जाती है और वैसे-वैसे उस पर प्रकृति का प्रभाव कम होता जाता है।

या यों कहो कि वह प्रकृति को जीतती जाती है। जब आत्मा इतनी प्रबल हो जाती है कि उसे आगे बढ़ने के लिए स्थूल शरीर धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती, तब वह इस लोक में नहीं आती। यहाँ से बढ़कर 'भुवः'-लोक तथा 'स्वर्ग'-लोक में जाकर वास करती है। वहाँ से फिर आगे बढती है। जितना ही आत्मा का विकास होता जाता है, उतना ही वह प्रकृति के नियमों के बन्धन में नहीं रहती बढ़ते-बढ़ते वह इतनी शक्ति-वान् हो सकती है कि प्रकृति पर अपना आधिपत्य कर ले और इस प्रकार इस सौर्य-मण्डल का भगवान् बनकर प्रकृति के नियम बनाकर संसार को चलावे।

पूज्य बाबाश्री के प्रवचनों से मैंने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है, उसी का सारांश यहाँ लिखा है। आशा है कि पाठक बन्धु इससे आवश्यक उद्बोधन प्राप्त कर पूज्यश्री के पावन स्मरण से कृतार्थ हो सकेंगे।

मेरे कुछ अनुभव

श्री मंगु भीमा

छुटपन में मैं और एक दूसरा लड़का एक भैंस पर चढ़ बैठे। भैंस खूब जोर से दौड़ी। हम दोनों गिर पड़े। मैं बच गया लेकिन दूसरे लड़के के पैर में गहरी चोट लगी। उसके बाप से मैं झूठ बोला। कहा कि 'वह पाल पर से गिर गया।' इस घटना से मैं बहुत ही डर गया था। चित्त में अत्यन्त ग्लानि पैदा हुई थी। मेरे पिता मुझे पीटेंगे, ऐसा डर भी था। मैं आत्म-हत्या करने को नाले के पास पहुँच गया। जल में कूदने ही वाला था कि एक महात्मा आकर बगल में खड़े हो गये। उन्होंने मुझसे कहा कि 'कभी ऐसा काम नहीं करना। जाओ। तुझको कोई कुछ नहीं कहेगा।' घर जाने पर मुझे किसी ने कुछ नहीं कहा। मैं फिर उम महात्मा को ढूँढ़ने लगा किन्तु वे कहीं नहीं दिखाई पड़े। सद्-भाग्य से मैं बम्बई आया और यहाँ उन महात्मा पूज्य बाबाश्री का दर्शन कर मैं कृतार्थ हुआ।

मेरा लड़का मृकपाल बहुत ही बीमार था। हरे रंग के वमन और दस्त होते थे। विले पार्ला में मैंने दो डाक्टरों को दिखाया। दोनों ने मरीज की दवा करने से इन्कार कर दिया। वहाँ के अस्पताल में ले गया। वहाँ कहा गया कि वाडिया अस्पताल ले जाओ। मुझे डाक्टरों और अस्पतालवालों पर खूब गुस्सा आया। मन से गालियाँ भी दे डालीं। घर पर जाकर मैंने दीपक जलाया और लड़के को पूज्यश्री की तस्वीर के सामने--जो होना हो, सो हो--इस विचार के साथ सुला दिया। आधे घण्टे में लड़के ने आँखें खोलीं, पानी माँगा और अच्छा होने लगा।

दशहरे के दिन हवन-कुण्ड बनाने को मैं गया। जब आधा कुण्ड खुद गया, तब उसमें से मुझे एक शिव-लिङ्ग मिला। मैंने किसी को बताया नहीं। उसके ऊपर दो रंग थे। एक काला और दूसरा सफेद। उसके ऊपर मिट्टी लगी थी। उसे धोने गया। धोते ही वह चूर-चूर हो गया। मेरे हाथ ढीले पड़ गये। पीछे कुण्ड तो पूरा बना दिया लेकिन मन में हुआ कि पूज्यश्री आहुति के लिये आयेंगे नहीं। मैं पूज्यश्री के चरण छूकर चला आया। आठ दिन के बाद मालूम हुआ कि पूज्यश्री को अस्पताल ले गये हैं।

एक रात को मैंने स्वप्न देखा। पूज्यश्री ने मण्डप में हम सबको बुलाया और उपदेश दिया कि 'अभी तो मैं हूँ लेकिन यदि मैं न रहा, तो यह जो बड़ा यन्त्र है, इसकी सेवा, जैसी मेरी करते हो, वैसी ही करना।' इतने में पूज्यश्री अन्तर्धान हो गये और मैं जाग गया।

[इस लेखक का लेखक श्रीमंगु भीमा तेरह-चौदह वर्ष की उमर से श्री कन्हैयालाल जी के यहाँ नौकर था। यहाँ ही परम पूज्य बाबाश्री जब-जब मुम्बई आते थे, ठहरते थे। परम पूज्य बाबाश्री ने इसे जपादि भी बताये थे। यह बहुत वर्षों तक नौकर रहा। विवाह किया, बाल-बच्चे हुए। फिर स्वतन्त्र काम में लगा, तो भी परम पूज्य बाबाश्री के दर्शन को आना, पूजा करना आदि नहीं छोड़ा। अपने अनुभवों को इसने अपनी भाषा में लिखवाया, जिसका कुछ अंश यहाँ ऊपर हिन्दी में दिया गया है।]

पूज्य बाबाश्री का कमरा

परम पूज्य बाबाश्री ने बम्बई के दादर नामक स्थान में वर्षों निवास किया। आपके कमरे को आपकी प्रेरणानुसार पूज्या मुक्ता बहन की देख-रेख में विशिष्ट-रूप में सुसज्जित किया गया था। इसका उल्लेख पीछे एक लेख में हुआ है।

समुद्री तूफान एवं वर्षा के कारण उक्त निवास-स्थान अब अपने पूर्व रूप में सुरक्षित नहीं रहा। अतः कमरे का दर्शन सम्भव नहीं है। किन्तु श्री जगदम्बा की कृपा से अनूठी प्रेरणा-वश प० पू० बाबाश्री के निवास का संक्षिप्त वर्णन सुरक्षित है। 'चण्डी' के मानद सम्पादक पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए० वर्षों पूर्व जब बम्बई बाबाश्री के दर्शनार्थ गए थे, तब उन्होंने यह वर्णन लिखा था और इस वर्णन को 'चण्डी' के १३ वें वर्ष में 'श्रद्धाञ्जलि-अङ्क' में प्रकाशित किया गया था।

आज निवास के सुरक्षित न होने पर परम पूज्य बाबाश्री के कमरे का यह संक्षिप्त वर्णन अत्यन्त महत्व-पूर्ण बन गया है। इस वर्णन से हम लोग परम पूज्य बाबाश्री की दिव्यता की झलक का अनुभव करते हुए आज भी अपने जीवन को धन्य कर सकते हैं। आशा है कि पाठक बन्धु आगे प्रकाशित वर्णन से लाभ उठायेंगे।

पूज्य बाबाश्री का कमरा

'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

परम पूज्य बाबाश्री बम्बई के दादर नामक स्थान में समुद्र-तट-वर्ती एक सुन्दर मकान के जिस कमरे में निवास करते रहे, उसकी दिव्यता का क्या वर्णन किया जाय !उसका दर्शन कर आज भी भावुक हृदय द्रवित हो उठता है और उसे यही अनुभव होता है कि यह कमरा वस्तुतः उस महान् विभूति का वास-स्थल बनने का पात्र था। उक्त स्थान से केवल कुछ ही कदमों की दूरी पर समुद्र की जल-राशि दूर तक फैली दिखाई पड़ती है और वहीं पास में दादर का श्मशान-स्थल है। दूसरी ओर कुछ ही अन्तर पर नागरिक हलचल से पूर्ण वातावरण दृष्टि-गत होता है।

पूज्यश्री के कमरे में प्रवेश करते ही छत के मध्य से लटकते हुए पर्यङ्काकार झूले के दर्शन होते हैं, जिस पर विराजमान रहकर पूज्यश्री अपनी यौगिक एवं मन्त्रात्मक क्रियाओं में निरन्तर तल्लीन रहा करते थे। इसी झूले पर बैठकर पूज्यश्री भक्त-जनों को प्रवचनामृत का पान कराते थे और इसी पर वे विश्राम लेते थे। आज उस भौतिक दिव्य देह के दर्शन तो दुर्लभ हैं तथापि उक्त झूले पर विराजमान पूज्यश्री बाबा की सु-स्पष्ट छवि और श्रीचरण-पादुकाओं के दर्शन प्राप्त कर भक्त-जन हृदय से अपने को कृतार्थ अनुभव करते हैं।

उक्त परम पूज्य प्रतीक अखण्ड ज्योति से बराबर प्रकाशित रहते हैं और नित्य-प्रति यथोपचारों से इनकी उपासना होती रहती है। झूले के बाद दर्शनार्थियों का ध्यान झूले के सम्मुख समीप ही स्थित पूजा-वेदिका की ओर आकृष्ट होता है। इस वेदिका पर भगवती आद्या की अलौकिक छवि शोभायमान है। यहाँ भी अखण्ड ज्योति निरन्तर प्रकाश फैलाती रहती है। पूज्यश्री की उपासना के अन्यान्य उपकरण भी इस वेदिका के सोपानों पर सुचारु ढंग से स्थापित हैं, जिनमें से प्रत्येक का दर्शन एक अनिर्वचनीय आनन्द का उद्रेक करनेवाला है।

पूजा-वेदिका के बाद दर्शनार्थी की दृष्टि अपने आप ही उस दिव्य कमरे की दीवालों पर जम जाती है, जहाँ दश-महा-विद्याओं की सुन्दर छवियाँ तो शोभायमान हैं ही, साथ ही वृहदाकार चित्र-विचित्र अनेक यन्त्रों के रूप भी दृष्टिगत होते हैं। इन यन्त्रों को पूज्यश्री ने अपनी विशेष देख-रेख में तैयार करवाया था। प्रत्येक यन्त्र में जहाँ जैसा रंग चाहिये, वही भरा गया है। जहाँ जो वीज-मन्त्र होना चाहिये, वहाँ वही लिखा गया है। जहाँ जिस प्रतीक की आवश्यकता है, वहाँ वही अङ्कित हुआ है। इन भव्य यन्त्रों का पूरा वर्णन देना इस लेखक की शक्ति के बाहर है। प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा ही इनका परिचय प्राप्त किया जा सकता है और इनका वास्तविक तत्व तो मन्त्र-वेत्ता योगी-जन ही हृदयङ्गम कर सकते हैं। उक्त यन्त्रों के उद्धार, ध्यान आदि भी उनमें यथा-स्थान लिखे हुए हैं। उन्हें हम यहाँ क्रमशः उद्धृत करते हैं—

(१) श्री श्री अनन्त विश्व-व्यापिनी महा-चिच्छक्ति-यन्त्रम्

इस वृहत् यन्त्र का उद्धार इस प्रकार है—

विन्दुस्त्रिकोणं वस्वारं दशारं च दशारकं, मन्वारं तु नवारं च त्रि-वृत्तं दिग्-दलं परं ।।
केयूराश्च परा-तत्वं बहिरण्डादित्य-कोटिजं, एतत् ते कथितं यन्त्रमनन्ताकाश - विग्रहं ।।
पुरा विद्याऽखिले पूर्णा अनन्तश्च क्रिया-मयं, विन्दौ सच्चिदानन्दा मूल-स्पन्दा महा-गतिः ।।
त्रिकोणे चान्तरा शक्तिरिच्छा-ज्ञान-क्रियाऽभिधा, वस्वारे वाहिनो धारा चामोघारष्ट-शक्तयः ।।
गुण-त्रयात्मिकाश्चान्याः सूक्ष्मासूक्ष्म-परेन्द्रियाः,दशारे मानसी मायाः परा गुह्याति-सूक्ष्मजाः ।।
एताः बुद्धिरहङ्कारो षडाकाशा बृहन्मना, दशारे चान्ये दिग्-ज्ञानं पूर्ण - तत्वं परात्परं ।।
मन्वारे भावना-शून्ये दिव्य-देवाः परा कलाः, नव-शक्तिर्भवा सत्या नव-दुर्गा-स्वरूपिणी ।।
गुण-त्रय-क्रिया त्रीणि त्रि-देवारक्षर - त्रयं, त्रि-वृत्ते चिन्तयेन्मन्त्री सर्व-देव-मयं विभुं ।।
दिक्-पत्रे चापरा विद्याः महा-विद्याः महा-प्रभाः, केयूरे सा परा-विद्या महा-माया महेश्वरी ।।
त्रिपुरा सुन्दरी पूर्णा परा-योगा पराऽपरा, अन्तर्बहिर्परोक्षे च प्रत्यक्षे व्याप्य संस्थिता ।।
बहिरानन्द-पूर्णाब्धौ शाला दिव्या प्रदर्शिनी, तारको दिव्य-नाथश्च केयूराधि-पतिर्प्रभुः ।।
गृहे दिव्ये परे चाद्या परा-यन्त्रे सु-लक्षिते, गङ्गा-प्रपात-संयुक्तमाद्या-यन्त्रं लिखेत् सुधीः ।।
त्रि-शिष्य-सहितो दत्तो पुरुषो दिव्य-रूप-धृक्, खगोलं च महा-यन्त्रं केयूरस्य बहिर्लिखेत् ।।

महा-चिच्छक्ति-ध्यानम्

मूलाधार - धरा च शक्तिः परमा पारा परा कारणा ।
अण्वणवः पर-व्यापिका गति-परा सर्वकिया-नायिका ।।

विश्व-ज्ञान-प्रदा विराट् पर-तरा इच्छाऽप्यमोघाऽमला ।
ईश-प्राण-प्रदा च जीवन-प्रदा सर्व-प्रदा साक्षिणी ।।

आधाराधार-वन्द्या परम-पर-शिवा कृष्ण-कल्याण-कारा ।
सर्वानन्द-स्वरूपा हरि-हर-ब्रह्माद्यन्तदा चाभया सा ।।

एकानन्त-स्वरूपा पर-पथ-पथगा दिव्यात्म-धारा ।
आनन्दान्त-प्रदात्री सकल-भय-हरा कोटि-चन्द्रार्क-काशा ।।

महा-माया भ० आद्या ध्यानम्

मेघांगीं शशि-शेखरां त्रि-नयनां रक्ताम्बरं बिभ्रतीं ।
हस्तैर्पूर्ण - घटं रसामृत - युतं पात्रं च दानाऽभये ।।

श्रीश्री-गङ्गप्रपात-पन्नग-कला-सिद्धचर्थ - कामं शिव ।
नर्तन्तं तु निरीक्ष्य विकसित-मुखामाद्यां स्मरेत् कालिकां ।।

श्री भगवान् बटुक ध्यान

राजस :—उद्यद्-भास्कर - सन्निभं त्रिनयनं रक्तांगराग - स्त्रजं ।
स्मेरास्यं वरदं कपालमभयं शूलं दधानं करैः ।।
नील-ग्रीवमुदार-भूषण-युतं शीतांशु - खण्डोज्ज्वलं ।
बन्धूकारुणा-वाससं भय - हरं देवं सदा भावये ।।

तामस :—ध्यायेन्नीलाद्रिकांतं शशि-शकल-धरं मुण्ड-मालं महेशं ।
दिग्-वस्त्रं पिंग-केशं डमरुमथ सृणिं खड्ग-पाशाभयानि ।।
नागं घण्टां कपालं कर-सरसीरुहैर्बिभ्रतं भीम-दंष्ट्रं ।
दिव्याकल्पं त्रि-नेत्रं मणि-मय-बिलसत्-किंकिणी-नूपुराढ्यां ।।

सात्विक :—वन्दे बालं स्फटिक - सदृशं कुण्डलोद्भासितांगं ।
दिव्याकल्पैर्नव-मणि - मयैः किंकिणी - नूपुराढ्यैः ।।
दीप्ताकारं विशद - वदनं सु - प्रसन्नं त्रि - नेत्रं ।
हस्ताग्राभ्यां बटुक - सदृशं शूल - दण्डोपधानम् ।।

साधारण ध्यान

कर-कलित-कपालः कुण्डली-दण्ड-पाणिः । तरुण-तिमिर-नीलो व्याल-यज्ञोपवीती ।।
क्रतु-समय-सपर्या विघ्न-विच्छेद-हेतुर्जयति-बटुक-नाथो सिद्धिदः साधकानां ।।
आनील-कुन्तलमलक्तक-रक्त - वर्णं । मौनी - कृतं कृत - मनोज्ञ - मुखारविंदं ।।
कल्याण-कीर्ति कमनीय - कपाल-पाणिं । वन्दे महा-बटुक-नाथमभीष्ट-सिद्ध्यै ।।

विश्वाकर्षण श्रीभगवान् बटुक दश-भुज ध्यान

शान्तं पद्मासनस्थं शशि-मुकुट-धरं मुण्ड-मालं त्रि-नेत्रं ।
शूलं खड्गं च वज्र-परशु-मुशलके दक्षिणांगे वहन्तं ।।
नागं घण्टां कपालं नलिन-कर-युतं सांकुशं पाशमन्ये ।
नानालंकार - युक्तं स्फटिक - मणि-निभं नौमि बालं शिवाख्यं ।।

त्रैलोक्य-मोहन दश-भुज गणेश ध्यान

गदा-बीज-पूरे धनुः शूल-चक्रे सरोत्पले पाश-धान्याग्र-दन्तान् ।
करैः सन्दधानं स्व-शुण्डाग्र-राजन्मणी-कुम्भमङ्काधिरूढ-स्व-पत्न्या ।।

सरोजन्मवाभूषणानां भरेणोज्वलद्धस्तलल्या समालिङ्गिताङ्गम् ।
करींद्राननं चन्द्र-चूडं त्रिनेत्रं जगन्मोहनं रक्त-कान्ति भजेत् तम् ।।

महा-पुरुष भगवान् श्री दत्त गुरु ध्यान

दुर्गा कृष्णो शिवाख्यस्त्रि-शिर-वपु-धरं दिव्य-कायं त्रि-मूर्तिम् ।
अष्टाक्षं षड्-भुजाङ्गं द्विपदे च गदा - चक्र - शूले कपालम् ।।
हस्तैर्दानाभये चानल - रवि - काशः भर्ग - कोटि - वरेण्यम् ।
गवाश्वभिश्चावृतं तं सदय - स्मित - मुखं श्रीमहेशं नमामि ।।
दुर्गायै दत्तवान् देवो दानं चाभय - परम् ।
श्रीकृष्णाय गदा-चक्रे शूलं पात्रं शिवाय च ।।

भगवान् केयूराधीश ध्यान

आदित्यानन्त-काशः बहु-कर - शतशो दिव्य - रत्नाभराणि ।
दिव्याङ्गे रत्न-मणयो सुरम-शशि-कला किरीटं सुवर्णम् ।।
सत्वो पीताम्बराढ्यो त्रिगुण-पर-वपुः श्वेत-सूर्यं त्रिनेत्रम् ।
ध्यायेत् केयूर - नाथं परम - पर - गुरुं भर्ग - देवं वरेण्यः ।। १
विश्वेशो विश्व-नाथः त्रिगुण-पर-तरः वेद-हस्तो त्रिनेत्रो ।
दिव्याङ्गे दिव्य-कोटिर्दिवि-पर-गगनो ज्योति-जन्यो जनेशो ।।
दानाभीतिश्च पद्मं कमल - कर-धरो तारकस्याप्त-बन्धुः ।
वन्दे पादारविन्दं शरण-प्रद - प्रभोः श्रीपरेशस्य जिष्णोः ।। २
शान्तो विश्वाधि-रूपः शरण - जन-प्रदो तारको तेज-भानुः ।
श्रेयो श्रीशो सुरेशो स्व-पद - जन-मनः प्रेरको पारदश्च ।।
लक्ष्यालक्ष्याधि-देवः शरण - प्रद - विभुः लक्षणानन्त-रूपः ।
भर्गो सवितुर्वरेण्यो हरि - हर-नमितो श्रीशमीकोऽर्क-तेजः ।। ३

भगवती अजिता (भगवती सुन्दरी-स्थाने)

उद्यत्-कोटि-प्रभा - करोज्ज्वल-मुखां रत्नैः प्रभा - मण्डलै-
र्जाज्वल्यामजितां वराभय - करां शार्दूल - सिंहासनाम् ।
विद्यां चाष्ट-भुजां महाभय - करां चक्रं गदा चांकुशम् ।
पद्मं शङ्खं - धरां करे जप - वटीं ध्यायेन्महा-योगिनीम् ।।

भगवती महा-बला (भगवती तारिणी-स्थाने)

विश्वस्यान्ते महा-शून्ये रत्न-द्रुम-मनोहरे । दिव्य-मण्डप-मध्यस्थे वेदिकायां स्थितां स्मरेत् ।।

दिव्याम्बरामञ्जन-रत्न-रम्यां विश्वेश्वरीं विश्व-मयीं त्रिनेत्राम् ।
चतुर्भुजां खेट-वादे वराभये महा-बलां दिव्य - कलां स्मरामि ।।

भगवती रक्त-चामुण्डा (भगवती धूमा-स्थाने)

धूम्राभां रक्त - वर्णां ललज्जिह्वां महेश्वरीम् ।
चतुर्भुजां त्रिनेत्रां च पाश-मुद्गरौ बिभ्रतीम् ।। १
खेटकं पान - पात्रं च शत - पत्राम्बुजे स्थिताम् ।
मुक्त-केशीं महा - दिव्यां रत्न - माला - विभूषिताम् ।। २
रिक्षाधीश-किरीटां च मुण्ड - माला - धरां शिवाम् ।
स्व - भक्त - पालने रक्तां चामुण्डां चिन्तयेत् सदा ।। ३

भगवती विश्वाक्षी (भगवती कालिका-स्थाने)

महा-मायां महा-मेधां महा - कारण - कारणाम् ।
विश्वाक्षीं चिन्तयेद् धीरो मुण्ड-माला-धरां शिवाम् ।। १
रक्त-सिंहासने युक्तौ विपरीत - रति - संयुतौ !
रति - कामासनोपेतां रत्न - माला - विभूषिताम् ।। २
रक्ताभां नील - वर्णां युग्मासन - परां प्रभाम् ।
उद्यद् - भानु - सहस्राभां वराभय - करां शिवाम् ।। ३
पाशांकुश - धरां देवीं विश्वाक्षीं चिन्तयेत् सुधीः ।
बीजानि मीन-केतोश्च योनि - रूपां रजो-मयीम् ।
विश्वाक्षीं विश्व - रूपा तां नमामि परमेश्वरीम् ।।

भगवती भुवनेश्वरी

पीयूषे सागरे रम्ये चिन्ता - मणि - विनिर्मिते ।
सहस्रारे महा - पद्मे दिव्यासन-समन्विते ।।
देवैरिन्द्र - विरञ्च्याग्नि - हरि-हरेः संस्तुताम्बराम् ।
मणिभे द्वीप-मध्यस्थे मन्दिरे संस्थितां स्मरेत् ।।
उद्यद्-भास्वत्-समाभां विजित - नव - जपामिन्दु-खण्डावनद्धाम् ।।
द्योतन्मौलिस्त्रिनेत्रां विविध-मणि-लसत् - कुण्डलां पद्म-रागाम् ।।
हार-ग्रैवेय-काञ्चीं गुण - गण-शुचयैश्चारु-चित्रां वराढ्यामम्बाम् ।
पाशांकुशाढ्यैरभय - वर-करामम्बिकां तां नमामि ।।

भगवती भैरवी

उद्यद्-भानु-सहस्र - कान्तिमरुण - क्षौमाशिरो-मालिकाम् ।
रक्तालिप्त - पयोधरां जप-वटीं विद्यामभीतिं वरम् ।।
हस्ताब्जैर्दधतीं त्रिनेत्र-विलसद् - वक्त्रारविन्द - श्रियम् ।
देवीं बद्ध - हिमांशु - रत्न - मुकुटाम् ।।

भगवती भुवनेश्वरी

मायामादित्य-कोटयानन-द्युतिरपरां पूर्ण-शक्तिस्स्वराद्याम् ।
विश्वेशीं विश्व-रूपां विविध-कर-धरां शङ्करां शङ्कराद्याम् ।।
पाशं चाभयदां वराक्ष-वरदां हस्तैर्दधानां पराम् ।
सर्वां सर्व - प्रगां सदा-शिव-मयीं ध्यायामि भुवनेश्वरीम् ।।
हंसारूढां चतुर्हस्तामादित्य-सन्निभां पराम् । सर्व-विद्या-मयीं पूर्णां शारदां संस्मराम्यहम् ।।
वागीश्वरीं महा - विद्यां ज्ञान - दिव्य - कलेवराम् ।
आनन्दान्त - स्थितां देवीं वाग्भवां कामदां भजे ।।

भगवान् शिव

ह्रीं ॐ ह्रौं नगजा-पतिं हिम-गिरिं चन्द्रावतंसं प्रभुम् ।
श्री-वत्सं गिरिजा - गणेश - सहितं नन्दीश - ऋत्वाननौ ।।
सर्वेशं सर्वाधि-नाथमपरं श्रीनील - कण्ठं हरम् ।
रम्यं चर्म - धरं वराभय - करं पूर्णाभिधानं शिवम् ।।

[२] श्रीमहापुरुष कबन्ध यन्त्रम् (ॐ ह्स्क्रौं)

यन्त्रोद्धार

षट्क-पञ्च-दशावृतं त्रि - चरणं मध्ये प्रभा-मण्डलम् ।
वृत्तं चाष्ट-दलावृतं दल-कलाः योगिन्यनन्तं दलम् ।
त्रि-सुपर्णादि-विरञ्चि-खर्व-क्रकचाधीशैश्च पुरुषैर्धृतम्,
सप्तक - कोटि - सपाद - पादमनिशं वस्त्राङ्कितं भूपुरम् ।।

ध्यान—

आदित्यानन्त-भासं वरुण-शशि-कला-कोटि-कल्याण-कायम्,
ज्योतिर्कूटं वरेण्यं अरुण-घट-घट-छिन्न-मुण्डं अखण्डम् ।
दक्षे दुर्गार्क-जालं घघ हहर खं वाम-हस्ते कराला,
हाला मुण्डाक्ष-माला जयति जय कबन्धो महा-पौरुषोऽयम् ।।

[३] महा-पुरुष श्री भगवान् कबन्धोपासिता परमा महा-विद्या श्रीताराया: यन्त्रम्

यन्त्रोद्धार—

षट्-कोण-मध्ये वृत्ते सबिन्दु-बाह्येऽष्ट-पत्राण्यपि वृत्त-त्रिस्कम् ।
चतुरस्र-युग्मं कुरु भूपुर-द्वयं यन्त्रं कबन्धार्चितं तारिकाया: ।।

ध्यान—

विश्व-व्यापक-वारि-मध्य-विलसद् रक्ताम्बुजां मङ्गलाम्,
कर्त्रीं खड्ग - कपाल-शम्भु-जटिनीं विद्यां तथाप्येकगाम् ।
सर्वां सर्व - प्रगां सुकंकण - लसत् - केयूरमेकां जटा-
माप्तैर्नाग - वरैर्विभूषित - तनूमारक्त - नेत्रोज्ज्वलाम् ।।

[४] अग्न्यात्मकं श्रीमहा-मृत्युञ्जय ऊर्ध्व-मुख-यन्त्रम्

यन्त्रोद्धार—

त्रिकोणं वर्तुलं बाह्ये षट्-कोणं तदनन्तरम् । सप्ताष्ट - दल-पद्मानि भूपुर-द्वय-वेष्ठितम् ।।
महा-मृत्युञ्जयाख्यं च सर्वारिष्ट-हरं परम् । यन्त्रं पूज्यं सदा सेव्यं साधकैः परमाद्भुतम् ।।

ध्यान—

हस्ताम्भोज-युगस्थ-कुम्भ-युगलादुद्धृत्य तोयं शिरः ।
अक्षस्रङ् - मृग - हस्तमम्बुज - गतं मूर्द्धस्थ - चन्द्र स्रवत् ।।
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वाङ्के सु-कुम्भौ करौ ।
पीयूषोन्न - तनुं भजे स - गिरिजं मृत्युजयं त्र्यम्बकम् ।।

[५] अनन्त-कोटि-सप्तकाधीशा विश्व-सञ्चालिका
महा-माया भगवती श्रीकेयूर-वासिनी (ह्लीं ॐ ह्लौं)

इसका यन्त्रोद्धार इस प्रकार है—

केयूरं विन्दु-संयुक्तं त्रिकोणं नव-योनिना, समावेष्ट्य स-त्रै-बिम्बं दश-पत्र-समन्वितम् ।
केयूरैर्बहुभिर्युक्तं महा-यन्त्रं लिखेद् बुधः, मुक्त - गोलकमावृतं रत्न - संचयमाकरम् ।
तारकालयमालेख्यं शालां शालामुषा-मयीम् । नानास्त्र-संयुतं लेख्यं चक्रं मन्त्र-विभूषितम् ।
बहिराद्या महा - माया यन्त्ररण्डी - कृतं शुभम् ।।

ध्यान निम्नलिखित है—

श्रीमत्-कोटि - कला कलेन्दु - कलिनो भा भास्वरानन्त-भा,
भानुर्भास्करमानिलानल - निभा भामा प्रभा मा - प्रभा ।
सिंहाभा भणगाम्बरा भगणजा केयूर - कालानला-
नन्तानन्त - निवासिनी विजयते दुर्गा ममान्तः - प्रगा ।। १

 (शेष पृष्ठ १८३ पर)

पूज्य बाबाश्री की अर्बुद-यात्रा

श्री शङ्करराम नागर

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १६५४ : सं० ३)

सम्वत् १६७६ में जिस समय बाबाश्री काशी में कमच्छा पर एक बगीचे में रहते थे, कभी-कभी हमारे मकान पर भी आकर दो-चार दिन रहा करते थे। फाल्गुन का महीना था, बाबाश्री हमारे मकान पर थे, रात्रि का समय था। हम लोग बाबाश्री के पास बैठे थे। बाबाश्री ने कहा कि 'इस वर्ष वैशाख में आवश्यक कार्य होने से हमको एकान्त की बहुत आवश्यकता है। इसलिये हमारा विचार अर्बुद जाने का है।'

इस पर हम लोगों ने प्रार्थना की कि 'यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम लोग भी साथ चलें। अम्बा जी का दर्शन भी हो जायगा और अर्बुद भी देख लेंगे।' बाबाश्री ने हम लोगों की प्रार्थना स्वीकार कर ली और चैत्र शुक्ल १० को बाबाश्री के साथ उनकी माँजी, कन्या, दामाद, दामाद की दादी और मेरी माँजी, छोटी बहिन, चाचा, बड़े भाई व उनकी स्त्री और तीन बच्चे तथा मेरी स्त्री आदि ने उनके साथ प्रस्थान किया।

गुरुदेव सबको साथ लेकर पहले आगरा गये। वहाँ सबको ताज बीबी का रोजा आदि दिखाकर वहाँ से जयपुर गये और वहाँ एक दिन में सब देखकर आबूरोड स्टेशन पर हम लोग दो बजे पहुँचे। स्टेशन पर धर्मशाला में जाकर ठहरे और भोजनादि का प्रबन्ध कर सायं-काल शौचादि से निवृत्त होने के लिये हम लोगों को साथ लेकर जङ्गल में गये। वहाँ पर एक पहाड़ी झरना प्रवाहित हो रहा था। बाबाश्री ने कहा कि 'सब कोई निपट कर यहीं आ जाओ। स्नान कर वापस चलेंगे।'

हम लोग निपट कर वहाँ आ गये और बाबाश्री का आसरा देखने लगे। बैठे-बैठे हम लोगों को रात्रि के नौ बज गये परन्तु बाबाश्री वहाँ न आये। हम लोग बड़ी परेशानी में पड़े कि बाबाश्री कहाँ गये और अब हम लोग क्या करें। आखिर हम लोग 'बाबा-बाबा' चिल्लाते हुये जङ्गल में चारों ओर घूमने लगे। बहुत दूर तक घूमते-घूमते जब गये, तब एक ओर से आवाज आई—'तुहीं सच्चिदानन्द प्यारे, तुहीं सच्चिदानन्द।'

उस आवाज को सुनकर उसी ओर हम लोग चले। थोड़ी ही दूर जाने पर हम लोगों ने देखा कि बाबाश्री ताली पीट-पीट कर नृत्य कर रहे हैं। हम लोग वहाँ पहुँचकर श्रीचरणों पर गिर पड़े और कहा कि 'प्रभो! आप तो यहाँ नृत्य कर रहे हैं, ११ बजने का समय है; धर्मशाला में स्त्रियों का क्या हाल होगा?' तब श्री गुरुदेव हँसकर बोले कि 'बड़ी देर हो गई! चलो, जल्दी चलें।' वहाँ से धर्मशाला पहुँचे। माँजी वगैरह रसोई लेकर बैठी थीं और चिन्ता कर रही थीं कि ये लोग कहाँ गये। अब सबने भोजन किया और सो गये।

प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर बैलगाड़ी पर हम लोगों ने अम्बा जी के लिये प्रस्थान किया। दोपहर के समय हम लोग वहाँ पहुँचे और माई के मन्दिरवाली धर्मशाला में जा ठहरे। माई के भोग के लिये रसोई बनी और स्नानादि से निवृत्त होकर श्री गुरुदेव हम सबको साथ लेकर माई का पूजन

करने गये। मन्दिर में जाकर मन्दिर का द्वार भीतर से बन्द कर दिया गया और लगभग डेढ़ घण्टे तक माई का पूजन व आरती की गई। रात्रि में वहीं रहे।

दूसरे दिन फिर माई का पूजन कर लगभग दो बजे वहाँ से चले। पाँच गाड़ियाँ हम लोगों की थीं। सबसे आगे बाबाश्री की गाड़ी थी और सबसे पीछे की गाड़ी पर माँजी व मेरी माँ तथा पत्नी बैठी थीं। सायं-काल हो गया था कि एकाएक पीछेवाली गाड़ी के बैल का पैर फिसला और गाड़ी बगल की खाईं में चली। अनायास ही वहाँ पाँच-छः भील आ गये और उन लोगों ने गाड़ी को पकड़ लिया। यह सारी घटना इतनी जल्दी घटित हुई कि किसी को भी पता न लगा कि भील किधर से और कैसे आ गये। उन लोगों ने गाड़ी को सड़क पर सीधी खड़ी कर दी और फिर खाईं में उतर गये।

रात में आबू रोड स्टेशन पर पहुँचे और वहाँ धर्मशाला में विश्राम किया। दूसरे दिन सबेरे भोजनादि से निवृत्त होकर लारी पर बैठकर ऊपर पहाड़ पर पहुँचे, जहाँ पर बाजार था और बँगले आदि बने थे। वहाँ 'दूध बावली' नाम का एक बहुत बड़ा सरोवर है। उसी के किनारे दामोदरदास नाम के एक संन्यासी रहते थे। उन्होंने वहाँ पाँच-सात कमरे बनवा रखे थे, जिनमें वे स्वयं रहते थे और यात्रियों को भी टिकाते थे, जिससे उनको अच्छी आमदनी हो जाती थी।

बाबाश्री ने जब दामोदरदास नाम सुना, तब बोले कि 'पहले यह व्यक्ति मेरे साथ यहाँ घूमा है। चलो, अब देखें, पहचानता है या नहीं?' बाबाश्री वहाँ गये। पहले तो दामोदरदास ने नहीं पहचाना लेकिन जब बाबाश्री ने दो-चार पुरानी बातों का स्मरण कराया, तब उन्होंने बाबाश्री को पहचान लिया लेकिन उनके चेहरे का भाव ऐसा लगता था कि पुरानी बातों का करना इस समय उनको पसन्द नहीं क्योंकि इस समय वे एक मठाधीश हैं, जब कि पहले लँगोटीधारी फक्कड़ थे। उन्होंने बाबाश्री से कहा कि 'यह एक ही कमरा खाली है। इसमें इतने आदमी कैसे रहेंगे?'

बाबाश्री ने कहा कि 'हमको तो केवल आज की रात यहाँ व्यतीत करनी है। कल सबको लेकर हम ऊपर चले जायँगे।' इस पर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगे कि 'स्त्रियों और बच्चों को लेकर ऊपर अरण्य में कहाँ रहोगे?' बाबाश्री ने कहा कि 'इसका विचार प्रातःकाल करेंगे।'

दूसरे दिन सबेरे उठकर सब लोगों को वहीं छोड़कर मेरे बड़े भाई व चाचा को साथ लेकर बाबाश्री ऊपर को चले। वहाँ लगभग ६०० सीढ़ी ऊपर श्री अधर माता का मन्दिर है और उसी के पास महाराज सिरोही की एक धर्मशाला है। उतने ऊँचे अरण्य में उसमें कोई यात्री नहीं ठहरता; केवल राजवंश के लोग जब वहाँ दर्शन के लिये जाते हैं, तो थोड़ी देर वहाँ विश्राम करते हैं। बाबाश्री ने वहाँ जाकर अधर माता के पुजारी को बुलाकर उससे पूछा, तब उसने कहा कि 'यहाँ रात्रि में हिंसक पशुओं का भय रहता है। इसलिये रात्रि में यहाँ कोई नहीं रहता और हम भी रात को नीचे चले जाते हैं।' बाबाश्री ने कहा कि 'हमको हिंसक पशुओं का भय नहीं है।' इस पर पुजारी ने कहा कि 'आप महात्मा हैं, आप यहाँ आनन्द से रह सकते हैं।' फिर बाबाश्री ने वहाँ से एक आदमी को नीचे भेजा कि 'जाकर सबको यहाँ लिवा लाओ।' हम लोग सब सामान मजदूरों से उठवाकर ऊपर पहुँचे। वहाँ का दृश्य और स्थान देखकर सबको बड़ा आनन्द मिला।

बाबाश्री की आज्ञानुसार कमरे में सब सामान रखकर स्त्रियों के रहने का प्रबन्ध किया गया और बाहर दालान में हम लोगों का। उस धर्मशाला के ऊपर पर्वत पर एक गुहा थी, जिसमें बाबाश्री ने अपने रहने का निश्चय किया। स्नानादि से निवृत्त होने के बाद बाबाश्री सबको लेकर श्री अधर माता

का दर्शन करने गये, श्री माँ का दिव्य दर्शन करने के बाद वहाँ रसोई बनी और सबने भोजन किया। कई दिन की थकावट होने के कारण बाबाश्री ने आदेश किया कि अब आज सब लोग विश्राम करो।

श्री अधर माता का मन्दिर एक बड़ी गुहा में है जिसमें लगभग १०० आदमी बैठ सकते हैं। मन्दिर में जाने के लिये एक खिड़की है, जिसमें से झुककर भीतर जाना पड़ता है। माँ की काले पाषाण की भव्य मूर्ति है। माँ के दक्षिण हाथ में एक सुवर्ण का पात्र है, जिससे माँ को मधु पान कराया जाता है। वहाँ जो लोग दर्शन के लिये आते हैं, प्रायः हाथ में मधु-पात्र लेकर आते हैं और पुजारी माई के हाथवाले पात्र में छोड़कर माई को पान कराता है। तीन पात्र, पाँच पात्र, सात पात्र—जैसा यात्री कहे, माँ को पान कराया जाता है। माई के मुख में पात्र लगाने के बाद पात्र एकदम खाली हो जाता है। माँ की भव्य मूर्ति अधर में है। इसी से वह 'अधर माता' के नाम से विख्यात है। बाबाश्री के साथ वहाँ पूजन में जो आनन्द आता था, उसका वर्णन नहीं हो सकता।

गुहा के तीन ओर पर्वत हैं और बाहर एक कूप है। एक ओर थोड़ा-सा हटकर उक्त धर्मशाला बनी है। उसी कूप पर माँ जी वगैरह स्नान करती थीं। एक दिन माँ जी वहाँ स्नान के लिये गईं, तो उन्होंने देखा कि वहाँ से प्रायः दो-तीन मञ्जिल ऊँचे पर्वत पर एक शेर इसी तरफ मुँह किये बैठा है। माँ जी ने समझा कि ऊपर वहाँ कोई मन्दिर है और यह पाषाण का शेर बना है। दूसरे दिन फिर वहाँ स्नान करने गईं, तो साथ में मेरी स्त्री भी थीं। उस दिन वहाँ एक शेर के बजाय दो शेर बैठे थे। माँ जी ने मेरी स्त्री से कहा कि 'मालूम होता है, वहाँ ऊपर कोई मन्दिर है क्योंकि वहाँ पत्थर का शेर बना है।' मेरी स्त्री ने ऊपर देखा तो दोनों शेर खड़े होकर पीछे हट गये। वहाँ से आकर उन लोगों ने बाबाश्री से सब हाल कहा, तो बाबाश्री ने कहा कि 'उस ठिकाने पर एक जोड़ी व्याघ्र की रहती है परन्तु जब तक हम लोग यहाँ हैं, उस स्थान पर उनको नहीं रहना चाहिये।' उसके बाद जब तक हम लोग वहाँ रहे, उस स्थान पर व्याघ्र का दर्शन किसी को नहीं हुआ।

वहाँ पहुँचने के दो-तीन दिन बाद बाबाश्री ने हम लोगों को जङ्गल में घुमाने का विचार किया और बोले कि 'कल से सबेरे चला करो, थोड़ी पहाड़ की सैर करा दें।' दूसरे दिन सबेरे विजया की गोली तैयार हो गई और रास्ते में जल-पान के लिये भूना चना व गुड़ लेकर स्त्रियों को वहीं छोड़ हम लोग बाबाश्री के साथ चले। बाबाश्री का नियम घुमाव के रास्ते पर्वत पर चढ़ने का नहीं था। वे सबसे आगे पादुका पहने बड़ी तीव्रगति से झाड़ियों में से चलते थे और हिंसक पशुओं से भरे अरण्य में बड़े आनन्द से घूमकर हम लोगों को जङ्गली दृश्य दिखाते थे। जहाँ कहीं चट्टानों पर चढ़ने में हम लोगों को दिक्कत होती, स्वयं छलाँग मार कर ऊपर चढ़ जाते थे और हम लोगों का हाथ पकड़ कर ऊपर खींच लेते थे। किसी-किसी दिन हम लोग दिन भर बाबाश्री के साथ जङ्गल में घूमते रहते थे और जब हम लोग थक जाते थे, तब ऐसे-ऐसे उत्तम स्थान पर हम लोगों को ले जाकर बैठाते थे कि जहाँ से हटने का मन ही नहीं होता था। प्रकृति-द्वारा पर्वतों में बनी हुई दो-दो तीन-तीन मञ्जिल की गुहाओं में हम लोग बैठकर वहाँ से प्रकृति के अपूर्व सौन्दर्य को देखा करते थे।

एक दिन हम लोगों ने बाबाश्री से कहा कि 'अरण्य में अभी कहीं व्याघ्र नहीं दिखाई पड़ा।' बाबाश्री ने कहा कि 'किसी दिन दिखाई पड़ जायगा।' दो-तीन दिन बाद हम लोग बाबाश्री के साथ जा रहे थे कि बाबाश्री एकदम खड़े हो गये और बोले कि 'व्याघ्र की गन्ध आती है। मालूम होता है, कहीं पास ही में है।' इतना कहकर आगे की एक गुहा पर छलाँग मार कर वे चढ़ गये और ऊपर से देखा, तो उसमें एक बड़ा व्याघ्र सो रहा है। वहीं से उन्होंने बड़े जोर से आवाज दी कि 'सब कोई होशियार हो जाओ। देखो, शेर आता है।' उनकी आवाज सुनते ही हम लोग शेर को देखने के लिये आगे बढ़े। बाबाश्री

की आवाज से घबड़ा कर शेर बाहर निकला और वहाँ से छलांग मारकर हम लोगों से तीन-चार हाथ की दूरी पर गिरा और फिर वहाँ से उछल कर बगल की एक खाई में उतर गया। श्री गुरुदेव हम लोगों के साथ थे। इसलिये किसी को भय नहीं लगा बल्कि बड़े उत्साह के साथ हम लोगों ने व्याघ्र को देखा।

बाबाश्री अपनी गुहा में दो दिन से समाधिस्थ थे कि महाराज सिरोही का आदमी आया और कहने लगा कि 'कल महारानी यहाँ माई का दर्शन करने के लिये आयेंगी। इसीलिये आप लोग यहाँ दिन भर नहीं रह सकेंगे। आप लोंग अपना सामान यहाँ छोड़कर बगल में नीचे उतर जाइयेगा, सायंकाल जब महारानी चली जायँ, तब फिर आ जाइयेगा।' हम लोगों ने उससे कहा कि 'ऊपर गुहा में गुरुदेव दो दिन से समाधिस्थ हैं और जिस समय वे समाधि से उठेंगे, उस समय हम लोंगों में से एक आदमी का यहाँ रहना आवश्यक है। नहीं तो बड़ी खराबी हो जाने का डर है।'

इस पर उसने कहा कि 'अच्छा, एक आदमी यहाँ नीचे मैदान में रह जाय।' दूसरे दिन हम लोग खिचड़ी बनाने का सामान लेकर नीचे जङ्गल में उतर गये और राम जी वहाँ ठहर गये। रानी साहिबा के लिए वहाँ कनात लग गई और वह अपनी दो लड़कियों के साथ वहाँ आ गईं। हम लोग नीचे पहुँचकर खाने के प्रबन्ध में थे और ऊपर बाबाश्री ने समाधि से जागृत होकर 'हरिः ॐ' का उच्चारण किया।

राम जी ने महारानी के आदमी से कहा कि 'बाबाश्री समाधि से उठे हैं। इसलिए हम उनके पास जायँगे।' उसने राम जी के ऊपर जाने का प्रबन्ध किया और राम जी ने ऊपर जाकर बाबाश्री को दण्डवत् किया। बाबाश्री ने जब और किसी को न देखा, तब राम जी से पूछा कि 'और सब कहाँ हैं?' राम जी ने बाबाश्री से सब हाल कहा। सुनते ही बाबाश्री बिगड़ कर बोले कि 'यहाँ जङ्गल में भी रानी व राजा फक्कड़ों के कार्य में बाधा पहुँचाते हैं!'

महारानी को जब समाचार मिला कि बाबाश्री बहुत नाराज हैं, तब वह घबराई और उसने तुरन्त हम लोगों को बुलाने के लिए आदमियों को दौड़ाया। नीचे खाने के लिये खिचड़ी तैयार हो गई थी। इसलिये माँ जी ने कहा कि 'हम लोग भोजन करके ऊपर चलेंगे।' ऊपर महारानी घबराती थी कि कहीं देर होने से बाबाश्री ज्यादा नाराज न हो जायें। इसलिये उसने बारम्बार आदमियों को दौड़ाना शुरू किया परन्तु हम लोग करीब ५०० सीढ़ी उतर कर नीचे गए थे, इसलिए वहाँ तक आने-जाने में काफी समय और परिश्रम लगता था। हम लोग भी जल्दी भोजन कर ऊपर चले, परन्तु साथ में स्त्रियों और बच्चों के होने के कारण ऊपर पहुँचने में काफी समय लगा।

ऊपर पहुँचकर हम लोगों ने बाबाश्री को दण्डवत् किया। तब वे कहने लगे कि 'रानी के कारण सबको आज बड़ी तकलीफ मिली।' महारानी ने बाबाश्री का दर्शन करने के लिए ऊपर आने की इच्छा की परन्तु बाबाश्री ने उसको दर्शन देने से इन्कार किया। तब हम लोगों ने बाबाश्री से प्रार्थना की कि 'इसकी इच्छा है तो दया कर उसको दर्शन दे दीजिये।'

हम लोगों की प्रार्थना को स्वीकार कर श्री गुरुदेव ने कहा कि हम गुहा के बाहर खड़े होते हैं। उससे कहो, नीचे से दर्शन कर ले।' लँगोटी पहिने हुए बाबा गुहा के बाहर आकर खड़े हो गये और रानी ने नीचे खड़े होकर उनका दर्शन किया। बाबाश्री के दिव्य-तेजस्वी देह का दर्शन कर उसको बड़ी श्रद्धा हुई और उसने अपने कर्मचारी द्वारा बाबाश्री से प्रार्थना की कि 'उसके कारण आज बाबाश्री को जो तकलीफ हुई, उसको क्षमा करें।' बाबाश्री परम दयालु थे। उन्होंने कहा 'उससे कह दो, प्रभु उस पर दया करेंगे।'

वैशाख शुक्ल ११ से १५ तक पाँच दिन कार्य-वशात् बाबाश्री को समाधिस्थ रहना था और पूर्ण एकान्त की आवश्यकता थी। इसलिए अधर माता के मन्दिर से लगभग एक मील आगे भयङ्कर अरण्य में एक गुहा में रहने का बाबाश्री ने निश्चय किया। उस गुहा के एक ओर प्रकृति की बनाई हुई एक छोटी-सी दालान थी और दूसरी ओर पत्थर की एक बहुत बड़ी चट्टान थी, जिस पर लगभग १०० आदमी बैठ सकते थे। उसी के एक तरफ नीचे पानी का छोटा-सा एक कुण्ड था, जिसके चारों तरफ भयङ्कर जंगल था और जिसमें हिंसक पशुओं की भयंकर आवाज आया करती थी। उस गुहा तक पहुँचने का रास्ता इतना भयङ्कर और घुमावदार था कि बिना बताए कोई आदमी वहाँ पहुँच नहीं सकता था।

बाबाश्री ने हम लोगों से कहा कि 'तुम लोग भी ४ दिन इसी चट्टान पर रहना। रात्रि को धूनी जलाकर बैठना और सब कोई भजन करना। रात्रि में निद्रा कोई मत लेना। धर्मशाला में माँ जी वगैरह रहेंगी।' वैशाख शुक्ल ११ को बाबाश्री हम लोगों को साथ लेकर वहाँ गए और स्नानादि से निवृत्त होकर गुहा में जाकर समाधिस्थ हो गए। गुहा का द्वार पत्थर से बन्द कर दिया गया। गुहा के पासवाली दालान में रामजी, मुक्तादेवी और सावित्री बाई ने अपना आसन जमाया और दूसरी ओर चट्टान पर मेरे चाचा श्री गोपालराम जी, ज्येष्ठ भ्राता शम्भूराम जी व उनकी स्त्री चन्दरदेवी तथा मेरी स्त्री ललिता देवी ने अपना-अपना आसन लगाया। मेरे भाई के तीनों बच्चों के सोने का भी प्रबन्ध वहीं कर दिया गया।

जहाँ पर हम लोग बैठे थे, वहाँ से सामने नीचे करीब एक मील की दूरी पर बीकानेर-भरतपुर आदि रियासतों के बँगले बने थे। सायंकाल होते ही उनमें बन्दूकें छूटने लगीं, जिसमें उस ओर हिंसक पशु न जाएँ। हम लोगों ने रात को वहाँ धूनी जलाई और उसके चारों तरफ बैठकर स्तवन आरम्भ किया। श्री चन्द्रदेव का प्रकाश चारों ओर अरण्य में फैला हुआ था, जिसके कारण वहाँ का दृश्य अत्यन्त सुन्दर दिखाई पड़ता था। चारों तरफ भयङ्कर सन्नाटा था। बीच-बीच में हिंसक पशुओं की भयङ्कर आवाज सुनाई पड़ती थी और चाँदनी के प्रकाश में वे अरण्य में घूमते भी दिखाई पड़ते थे। जो आनन्द और शान्ति वहाँ श्री सद्गुरु की दया से हम लोगों को मिली, उसका वर्णन लेखिनी द्वारा नहीं हो सकता। उस सूनसान रात्रि में हम लोगों का स्तवन बहुत दूर तक सुनाई पड़ता था।

महाराज बीकानेर की कोठी में उस समय राजकुमार उपस्थित थे। उन लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसे भयंकर स्थान में क्या हो रहा है और ये लोग कौन हैं ? प्रातःकाल होते ही हम लोगों ने देखा कि महाराज बीकानेर की कोठी में से पाँच आदमी बन्दूक व भाला लिये हुए घोड़े पर सवार निकले और जिस चट्टान पर हम लोग बैठे थे, उसी तरफ आने लगे। प्रायः डेढ़ घण्टे में वे लोग चट्टान के नीचे आ पहुँचे परन्तु ऊपर आने का रास्ता न मिलने से नीचे ही से चिल्लाने लगे। तब हम लोगों ने ऊपर से उनको रास्ता बताया और वे लोग ऊपर आए। उन्होंने हम लोगों से पूछा कि 'आप लोग कौन हैं और यहाँ इस भयङ्कर स्थान में औरतों तथा बच्चों को लेकर क्यों ठहरे हैं ?'

हम लोगों ने उनसे सब हाल कहा, तब वे बोले कि 'इस तरफ रीछ व व्याघ्र बहुत हैं। इसलिये स्त्रियों-बच्चों के साथ यहाँ रहना ठीक नहीं है।' हम लोगों ने कहा कि 'गुरुदेव यहाँ समाधिस्थ हैं। इसलिये किसी प्रकार का भय नहीं है।' उन लोगों का परिचय पूछने पर मालूम हुआ कि बीकानेर के राजकुमार अपने आदमियों के साथ हैं। थोड़ी देर वे लोग बैठे रहे और बाबाश्री का हाल पूछकर साश्चर्य हम लोगों की तरफ देखकर चले गए।

पाँच दिन तक उसी स्थान पर हम लोग श्रीगुरु-दया से बड़े आनन्द से रहे। पूर्णिमा के दिन श्री गुरुदेव समाधि से उठे, तो रात्रि में हम लोगों को साथ लेकर जङ्गल में घुसे और हम लोगों को वहाँ अलग-अलग झाड़ियों में बैठाकर कहा कि थोड़ी देर यहाँ प्रभु का स्मरण करो। करीब एक घण्टे तक हम लोग वहाँ बैठे रहे और फिर बाबाश्री के साथ अपने स्थान पर आ गए।

एक दिन हम लोगों ने बाबाश्री से कहा कि 'गुरु-शिखर' पर चलना चाहिये। बाबाश्री ने कहा कि 'स्त्रियों के जाने लायक उधर का मार्ग नहीं है। इसलिये इन लोगों को यहीं छोड़कर तुम लोग चलो। एक दिन में वहाँ आना-जाना नहीं हो सकता। इसलिये आटा-दाल वगैरह साथ में ले चलना पड़ेगा।'

दूसरे दिन सब सामान साथ में लेकर बाबाश्री के साथ हम लोग चले। 'गुरु-शिखर' पर जाने का जो मार्ग बना है, उसको छोड़कर दूसरे मार्ग से भयङ्कर झाड़ियों में होकर गुरुदेव आगे-आगे चल रहे थे। मार्ग में सबसे भयङ्कर स्थान गणेश नाला है, जिसमें भयङ्कर हिंसक पशु रहते हैं और भील लोग भी यात्रियों को लूट लेते हैं। रास्ते में जहाँ-तहाँ हिंसक पशुओं द्वारा मारे गए जानवरों के अस्थि-पंजर पड़े थे, उसी में घूमते हुए हम लोग दो बजे के लगभग 'गुरु-शिखर' पर पहुँचे।

वहाँ सबसे ऊपर के शिखर पर भगवान् दत्त की पादुका है। वहाँ पहुँचकर सबने पादुका-दर्शन किया और थोड़ी देर वहाँ से चारों तरफ फैले भयंकर अरण्य की शोभा देखते रहे। वहाँ पवन का वेग इतना अधिक था कि देर तक खड़े रहना कठिन था। इसलिए बाबाश्री सबको साथ लेकर नीचे उतर आए। पादुका के स्थान से थोड़ा नीचें बड़ी-बड़ी कई गुहायें हैं, जिनमें कुछ साधु-संन्यासी रहते हैं। बाबाश्री वहाँ से थोड़ा और नीचे उतरे। एक साफ स्थान देखकर ठहर गये और बोले कि 'यह स्थान अच्छा है। यहीं पर भोजन वगैरह बनाना चाहिये।'

बाबाश्री के लिये आसन बिछाया गया और थोड़ी देर विश्राम करने के बाद भाँग बनी। शौचादि से निवृत्त होने के बाद भोजन के लिये दाल-बाटी बनी और बाबाश्री के साथ सबने आनन्दपूर्वक भोजन किया। वहाँ उस समय इतनी सर्दी थी, जैसी यहाँ पूस-माघ में होती है। रात अँधेरी थी और खूब ठण्डी हवा चल रही थी। हम लोग भोजन कर रहे थे कि इतने में बगल से किसी साधु की एक गाय को व्याघ्र पकड़ ले गया। हम लोग बाबाश्री के पास कम्बल ओढ़ कर बैठे थे कि ऊपर से वहाँ के महन्त ने बाबाश्री के पास आदमी भेजा और उसने कहा कि 'आप लोग ऊपर गुहा में चलकर रात्रि में विश्राम करें। यहाँ रहना उचित नहीं है।'

पहिले तो बाबाश्री ने ऊपर जाने से इन्कार किया परन्तु उसके बहुत आग्रह करने पर फिर ऊपर जाने को तैयार हो गये। भयङ्कर अन्धकार था, जिसमें छोटी-छोटी सीढ़ियों पर चढ़कर ऊपर जाना बहुत मुश्किल था। इसलिए हम लोगों ने सूखी लकड़ियों को जलाया और एक-एक हाथ में लेकर किसी तरह धीरे-धीरे ऊपर पहुँचे। वहाँ एक बड़ी गुहा में महन्त जी ने एक बड़ी दरी बिछवा दी थी। उसी पर हम लोगों ने विश्राम किया। दूसरे दिन सवेरे बाबाश्री हम लोगों को साथ लेकर वहाँ से चले और रास्ते में अनेक रमणीक स्थानों को दिखाते हुए 'अधर माता' के मन्दिर पर आ पहुँचे।

बाबाश्री के साथ हम लोग वहाँ लगभग तीन मास रहे। उस अवधि में बाबाश्री ने हम लोगों को ऐसे-ऐसे भयङ्कर व रमणीक स्थान दिखाये कि जहाँ हम लोगों के लिये पहुँचना असम्भव था। बाबाश्री का जो फक्कड़ी स्वरूप व दिव्य तेज वहाँ देखने को मिला, वह श्रीगुरु की पूर्ण दया बिना किसी को

प्राप्त नहीं हो सकता। श्री गुरुदेव की अमोघ दैवी शक्ति का परिचय हम लोगों को वहाँ प्रत्येक क्षण मिला करता था।

बाबाश्री जगत् में अपना परिचय किसी को देना नहीं चाहते थे। इसलिये उन्होंने ऐसा आवरण रक्खा था कि उनको कोई पहिचान न सके परन्तु जिस प्रकार बादल में रहने पर भी सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर आता ही है, उसी तरह उनके प्रकाश को थोड़े से व्यक्ति, जिन पर उनकी पूर्ण दया थी, देख सके। श्री मां के जिस कार्य के लिए उन्होंने मानवीय देह धारण की थी, उसको पूर्ण कर उन्होंने अपने अनित्य देह को छोड़ दिया। उन्होंने यहाँ जिसको जितना योग्य पाया, उसको उतना दिया। उनके पास जो कोई आत्म-कल्याण के लिये गया, उसको उसका उचित मार्ग बता दिया।

बाबाश्री अनन्त हैं, उनकी कथा अनन्त है। उनकी मानवीय देह अब इस जगत् में नहीं है। इसलिए संसार में हम लोगों को सूना मालूम होता है, परन्तु उनका दिव्य स्वरूप सदा हमारे साथ रहा और अब भी है। जिस दिन इस संसार में हमारा कर्तव्य पूरा होगा, उस दिन बाबाश्री जिस प्रकार अर्बुद में हाथ पकड़ कर ऊपर खींच लेते थे, उसी प्रकार इस असार संसार से हाथ पकड़कर ऊपर खींच लेंगे, इसमें कुछ भी संशय नहीं।

—※—

पूज्य श्री महाराज के चमत्कार

श्री प्रभुलाल ओझा

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

परम पूज्य महाराज श्री मेरे परम गुरु थे वे पूर्ण योगी पूर्ण आनन्दी, पूर्ण निःस्वार्थी तथा पूर्ण परोपकारी थे।

महाराज जी जब काशी में विराजते थे, हम लोग रात्रि में १२-१ बजे तक सब मिलकर गप लगाया करते थे। महाराजजी नीचे कमरे में सोते थे और हम लोग छत पर किन्तु जब सबेरे उठते, तब वे हम लोगों को बुलाकर वार्ता-रूप में रात्रि की हमारी गप सुना देते थे। हम लोग सुनकर अवाक् रह जाते थे तथा मन में समझ लेते थे कि कोई भी बात चाहे दिन में करो या रात में, महाराज जी से छिपी नहीं रहेगी।

सायंकाल समय जब गुरु जी समाधि से उठते थे, तब वे बड़े आनन्द से दरबार में बैठते थे। उस समय कोई भी प्रश्न हो, उसका उत्तर वे ठीक-ठीक बताते थे और वह बराबर सच निकलता था।

१९२६ में मैंने गीता पढ़नी शुरू की। रोज दिन में एक अध्याय पढ़ता था और रात में गुरु जी की आवाज सुनाई पड़ती तथा जो अध्याय दिन में पढ़ा था, उसे उस समय समझाया जाता। इसी प्रकार १८ दिन चलता रहा। उसके बाद मैंने अपने सारे कपड़े खोलकर फेंक दिये और जङ्गल को चल पड़ा। मेरे भाई ने मुझे रोका और गुरु जी मुझे काशी ले गये। वहाँ डेढ़ महीने अपने पास रखा, मुझे जड़ी-बूटी खिलाई और मन्त्र का उपदेश देकर अच्छा कर दिया। सभी सोचते थे कि मैं पागल हो गया हूँ और अब अच्छा नहीं हो सकूँगा। मगर गुरु जी की कृपा से अच्छा हो गया। गुरु जी कहते थे कि 'बहुत तेजी से कार्य होने से ऐसा हो जाता है। गुरु के समीप रहकर कार्य करने से ऐसा विघ्न नहीं पड़ता।'

इसी प्रकार के अनेक चमत्कार मुझे अपने गुरु बंसीलाल जी तथा मोतीलाल जी महाराज की कृपा से अनुभव करने को मिले। * * *

पूज्य बाबाश्री की कृपा

श्रीमती शारदा बहन

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

पूज्य बाबाश्री के प्रथम दर्शनों का सौभाग्य पहले पहल मुझे बम्बई आने पर प्राप्त हुआ था। प्रथम दर्शन में ही किसी अज्ञात प्रेरणा से ऐसा लगा कि उन श्रीचरणों में अपना सब कुछ चढ़ा दूँ और बार-बार यह इच्छा उठने लगी कि अपना कुछ अस्तित्व ही न रहे और बस उन चरणों में ही लय हो जाऊँ पर उनमें लय हो जाना क्या सरल है? 'उस महान् आत्मा में मिलना'– यह विचार मात्र ही हम जैसे अकिंचनों के लिये असम्भव है।

फिर भी पूज्य बाबाश्री ने अकिंचनों को भी अपनाया क्योंकि दया के तो वे खजाने थे। उनके दरबार में 'समता' को प्रथम स्थान था। प्रत्येक की सहायता करना, हर समय दुखियों के दुःख का निवारण करना ही उनका काम था। जैसे स्वयं थे, वैसी ही अपनी शिष्य-मण्डली को बनाना चाहते थे। एकता के वे पुजारी थे। उनका सदा यही कहना था कि एकता-प्रिय बनो और 'न शत्रु रहे विश्व मां कोई म्हारू"। कहाँ तक उनका गुणानुवाद करें, कितना दयालु हृदय था! कैसा भी कोई एक बार उनकी शरण में आया कि वह उनकी दया का पात्र बन जाता था। हां, जो लिखना था, वह तो भूली ही जा रही हूँ, और अपने हृदय के और ही कुछ उद्‌गार ले बैठी।

अपने अनुभव क्या लिखें, यह तो जीवन ही उनकी कृपा-छाँह में बीत रहा था। जो कुछ भी होता था, जो कुछ भी पाया है, वह सब उन्हीं की कृपा है। जो कुछ सुख व शान्ति इस जीवन में मिली है, वह उन्हीं की प्रदान की हुई है। प्रातःकाल से लेकर रात्रि तक सब कार्यों में ऐसा ही लगता था कि क्षण-क्षण पर बाबा की ही कृपा हो रही है। मेरा तो सबसे बड़ा अनुभव यही है कि मैं किसी भी योग्य न थी परन्तु सब प्रकार से सुखी, शान्त प्रभु-कृपा से बन गई, नहीं तो पता नहीं; कहाँ किस अन्धकार में पड़ी होती। इसलिये कुछ सोच ही नहीं पा रही कि क्या लिखूं, क्या न लिखूं। फिर भी कुछ अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार यहाँ लिख रही हूँ।

* * *

सन् ४६ में पूज्यश्री सदा की भाँति कुछ समय के लिये काशी गये हुए थे। तभी एक पुत्र का जन्म हुआ। जन्म से ही उसकी एक आँख दूसरी आँख की अपेक्षा कुछ छोटी दीखती थी तथा हर समय लाल, दुखती सी रहती थी। पानी आँख से निकला करता था। पहिले तो हम लोग दवा करते रहे, परन्तु जब वह किसी तरह ठीक न हुई, तब हम लोगों की चिन्ता बढ़ी और मन-ही-मन यह विचार किया कि अब तो पूज्य बाबा बम्बई आयँगे, तभी कुछ उपाय हो सकेगा। दवा डाक्टर की चलती रही, पर लाभ जरा भी दिखाई न पड़ता था। तभी पूज्यश्री के बम्बई वापिस आने का समाचार मिला। तब तक बालक तीन महीने का हो गया था।

बाबाश्री बम्बई आ गये, बच्चे को पूज्यश्री के चरण छुआने ले गये। बाबाश्री उसी दिन पधारे थे, थके हुए हैं—यह सोचकर हम लोगों ने आँख के विषय में कुछ कहना उचित न समझा। रात को घर

वापिस आकर बच्चा सो गया। दूसरे दिन जब बच्चा जगा, उसकी दोनों आँखें एक सी थीं। आँख में जरा भी यह न लगता था कि कल रात तक यह लाल थी व दुख रही थी। प्रभु के केवल दर्शन मात्र से ही इतना सब हो गया। फिर कुछ कहने की तो जरूरत ही न पड़ी। हम लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न था। क्या उनकी माया थी! आज तक उसकी आँख फिर कभी न दुखी।

एक दिन की बात है, दाल पकाने को रखकर कुछ देर को खुली रह गई। ढाँकना भूल गई थी। उतने ही समय में दाल में एक छोटी सी छिपकली ऊपर से आ पड़ी थी और पता नहीं कितनी देर से पड़ी हो परन्तु किसी को कुछ पता न था। घर के कुछ लोगों का खाना भी हो चुका था। स्वयं खाने बैठी, तब दाल में वह छिपकली निकली। उसे देखते ही खाना वगैरह तो छोड़ा और इस चिन्ता में पड़ गई कि जो लोग खा चुके हैं, उनकी हालत अब कैसी हो? बहुत ही घबराहट थी। सब ज्यों-का-त्यों छोड़कर बाबा के पास दौड़ी गई। वहाँ पहुँची, प्रणाम किया और बैठ गई। अपनी ही भारी भूल के कारण यह सब हुआ था। कुछ कहने के पहले ही बाबाश्री ने कहा—"आज दाल कैसे खुली रह गई? सब ठीक है न?"

बाबा के इतना कहते ही मुझे भी कुछ कहने का साहस हुआ और फिर मैंने सब हाल कह दिया। तब भी देखिये, अपने कार्य को कोई भी महत्व न देते हुए केवल इतना कह कर समझा दिया कि—"चिन्ता न करो, सब छिपकली जहरीली नहीं हुआ करतीं। पर हाँ, आगे इस बात का ध्यान रखना कि खाने की कोई भी वस्तु कभी खुली न रहे।"

धन्य है उन प्रभु की महिमा!

ऐसे ही एक बार फिर पूज्यश्री बम्बई के बाहर गये थे। लड़की व लड़के दोनों के खसरा निकली थी। खसरे के बाद डबल निमोनियाँ हो गया। इलाज जोरों से हो रहा था, पर हालत बिगड़ती ही जा रही थी। चिन्ता के मारे बुरा हाल था। डाक्टर ने कहा कि 'लड़की की तो दशा बहुत खराब हो रही है, कुछ आशा नहीं है परन्तु फिर भी एक्सरे करा लिया जाय, शायद कुछ उपाय निकल आये।' अतः बम्बई के बच्चों के विशेषज्ञ डाक्टर के पास तुरन्त ही बच्चों को ले जाया गया। प्रभु-कृपा से डाक्टर समय पर मिल भी गया और वह बहुत ही दयालु व ईश्वर-स्वरूप लगा। उसने बहुत ही अच्छी तरह बच्चों को देखा क्योंकि डाक्टर के यहाँ जाने के पहिले ही दुखी मन तन्त्री से निकला तार पूज्यश्री के पास भेजा जा चुका था। मैं बहुत ही घबड़ा रही थी। बच्चों के पिता से बार-बार अनुरोध कर रही थी कि 'बाबा को तार भेज दो पर उन्होंने यही कहा कि बाबा के पास तार पहुँच चुका है। जो कुछ अच्छा-बुरा करेंगे, वही अब रक्षक हैं।' उस समय उनका यही दृढ़ निश्चय व विश्वास था।

डाक्टर के यहाँ से आते ही बच्ची के जो इन्जेक्शन उसने बताये थे, वे आरम्भ किये। प्रभु-दया से कुछ घण्टों के अन्दर ही डाक्टर के कहने के अनुसार वह भय के बाहर थी और दोनों बच्चे स्वस्थ होने शुरू हो गये। पूज्यश्री के पास पुकार पहुँच चुकी थी, जहाँ कि असम्भव को सम्भव कर दिखाने की शक्ति थी, केवल दया-दृष्टि करने भर की देर थी।

आज भी हमारा यही मानना है कि वे बच्चे उन्हीं की देन हैं। बच्चे स्वयं भी आरम्भ से यही मानते आये हैं कि उनके विपत्ति-निवारक तथा जीवन में सहायक बाबा ही हैं और वे लोग बाबा के ही हैं। उनके ऐसे ही उपकारों का तो कुछ अन्त ही नहीं है। उनसे यही प्रार्थना है कि अपने जनों पर ऐसी ही कृपा करते रहें। उनकी कृपा बिना तो हम अनाथ हो जायँगे। भले ही वह देह हम लोगों से दूर हो गई, पर आत्मा तो उनकी सदा ही अपने इस परिवार के साथ है।

स्मरणीय अनुभव

श्री महेश शङ्कर

पूज्य बाबाश्री के चरण सन् १६४२ में पकड़े। यों तो अपने जीवन में हर पल में बाबाश्री की कृपा रही है और होती रहेगी पर नीचे दिये हुए अनुभव सदा याद रहेंगे।

सन् १६४२ में ही मुझे छोड़कर घर में सबको तेज ज्वर था। पत्नी, बहन और ६ महीने की कन्या सब तेज ज्वर में पड़े थे। डाक्टर के बताये अनुसार सबके सिर पर बर्फ रख रहा था। मन बहुत परेशान था। कुछ समझ में नहीं आ रहा था। डा० माताप्रसाद जी के आदेशानुसार पूज्य बाबाश्री को टेलीफोन किया। टेलीफोन करते ही अपने मन में शान्ति का अनुभव किया। यह याद नहीं कि कितनी रात तक बर्फ बदल कर बारी-बारी से तीनों रोगियों के सिर पर रखता रहा। बहुत रात बीतने पर नींद ने धर दबाया और मैं भी सो गया। सुबह जब आँख खुली, तो घबरा कर बीमारों को देखा। बाबाश्री की असीम कृपा से सबके सब स्वस्थ थे। डाक्टर, जिनका इलाज था, बड़े अचरज में पड़ गये।

घटना १६४६ की है। मेरा तबादला एक ऐसे विभाग में हो गया, जहाँ पर काम कम होता था और कुछ ऐसे बदमाश कामगार थे, जो मरने-मारने को तैयार रहते थे। मेरे पहिले और भी 'सुपरवाइज़र' लोग प्रयत्न कर चुके थे कि इन बदमाशों को काबू में करें। तबादले के पहिले यह हालत मुझे बतलाई गई थी और पूछा गया था कि मैं जाना चाहता हूँ या नहीं? मैंने यह मामला पूज्य बाबा के चरणों में रख दिया। उन्होने आज्ञा दी कि मैं वहाँ का तबादला करा लूँ और अपने कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन करूँ, किसी बदमाश से डरने की जरूरत नहीं।

जब वहाँ काम कर रहा था, एक पठान पीछे लग गया और इस घात में रहता था कि कब छुरी भोंकने का अवसर मिले। पूज्यश्री की कृपा से कारखाने के तीन-चार हिन्दू जिनसे मेरा कुछ भी परिचय नहीं था और न जिनसे मैंने कभी मदद माँगी थी, अपने आप एक दिन मेरे पास आये और कहने लगे कि वे लोग मेरी मदद करेंगे। उन्होंने कितने ही महीनों तक मेरा साथ दिया, बराबर कारखाने से घर और घर से कारखाने जाते समय साथ रहते थे। कुछ समय पश्चात् वह पठान हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े में पुलिस की गोली का शिकार बना और मेरा बाल भी बाँका न हुआ।

यह अनुभव सन् १६४३ का है। बाबाश्री हरकिशन भाई के यहाँ पधारे थे। मैं भी सपरिवार बाबा के दर्शनों को गया था। शारदा के सिर में अक्सर दर्द रहता था, चक्कर भी आ जाते थे। यह कुछ इनके सभी भाई-बहिनों को तकलीफ थी। उस दिन भी इनके सिर में दर्द जोर का था। बाबा के दरबार में भजन हो रहे थे। इन्हें भी बाबाश्री ने एक भजन गाने को कहा। किसी प्रकार एक भजन गा भी दिया, परन्तु उसके बाद पूज्यश्री एक के बाद एक कई राग में भजन गाने को कहते रहे। ये गाती रहीं। वैसे बीच में सिर दर्द की तकलीफ की याद आ जाती थी परन्तु बाबाश्री का 'कहा' टालने का साहस नहीं था। इसलिये गाती ही गईं। जब गाने की गति समाप्त हुई, तो न चक्कर थे, न सिर का दर्द था। इनके और भाई-बहिनों को यह दर्द अभी भी परेशान करता है, पर इनका सिर-दर्द प्रभु ने ऐसा भगाया कि फिर आज तक वैसा नहीं हुआ। पूज्यश्री के अनुभव तो इतने हैं कि उनका वर्णन कभी भी खतम न हो परन्तु समय कम है, इसलिये अब समाप्त करता हूँ।

बाबाश्री का उपदेश

श्री राजेन्द्रशङ्कर

ऐसी विपत्ति को भी लाख-लाख धन्यवाद, जो किसी भूले-भटके को सहारे से लगा दे! सच तो यह है कि वह विपत्ति के रूप में सौभाग्य है जिसके कारण प्रायः सभी आस्तिकता में दृढ़ विश्वास करने लगते हैं और छिपे हुए रत्न के समान जो महात्मा इस संसार में हैं, उनकी शरण में आ जाते हैं।

इसी प्रकार मैं भी बाबाश्री की शरण में आया। पूरा वृत्तान्त देने की आवश्यकता नहीं है किन्तु फिर भी सार यह है कि अपने शिक्षा-काल में मैने एक भी वर्ष व्यर्थ नहीं किया था। परन्तु ईश की इच्छानुसार बी० एस-सी० के बाद मुझे पूरा यत्न करने पर भी आगे पढ़ने के लिये कहीं किसी भी कालेज में स्थान नहीं मिला। वर्ष बर्बाद गया, जिससे मुझको और मेरे पिता जी को बड़ा धक्का पहुँचा।

बड़े भाई (रमेश भाई) की इच्छा के अनुसार मैंने पूज्य बाबा जी के चरणों में वसंतपञ्चमी (सन् १९४८) के दिन अपने को अर्पित कर दिया। उसी वर्ष मुझे एक स्थान पर नहीं, बल्कि मनचाहे और उच्च-कोटि के तीन (बम्बई, नागपुर और बनारस) विश्व-विद्यालयों में स्थान मिले। वैसे तो उन सभी सज्जनों को धन्यवाद, जिन्होंने मेरी सहायता की, परन्तु कृपा उन सर्व-शक्तिमान की ही थी, जिससे सहायता करनेवाले सहायता करने में समर्थ हुए।

बाबा जी के चरित का वर्णन सुनकर जी चाहता है, मैंने २५ वर्ष पहिले जन्म लिया होता! इसीलिये उन सबको, जो बाबा के साथ पहिले से हैं, मैं अति भाग्यशाली कहने के अतिरिक्त हार्दिक श्रद्धा भी भेंट करता हूँ। बाबा के चरणों में आने के बाद मेरे जीवन का यह ५॥ साल का समय अति शान्ति तथा सुखपूर्वक व्यतीत हुआ। यही नहीं, बाबा के वातावरण में एक बार लिप्त होकर मुझे वह आत्म-विश्वास मिला कि मैं शिष्टाचार तथा सन्तोष से जीवन व्यतीत करने पर पूरा विश्वास रखता हूँ।

बाबा के प्रिय वचनों तथा भजनों में सभी प्रकार के उल्लेख तथा उदाहरण शिक्षा-प्रद हैं। उनसे मनुष्य के चरित्र पर ऐसी छाप लगती है कि चित्त में सर्वदा शान्ति रहती है तथा उन्नति के पथ पर चलने में तनिक भी कठिनता नहीं मालूम पड़ती। हम सब लोगों के लिये जिनको संसार के थपेड़ों में रहकर भी सही रास्ते पर चलना है बाबा के दो आदेश मुझे बहुत उपयोगी लगते हैं। अनेक उपदेशों का संक्षिप्त किया एक उपदेश है—'न वे दिन रहे, न ये दिन रहेंगे।' प्रतीत होता है जैसे हमारे लिये कठिनाइयों से हारना जैसी कोई वस्तु ही नहीं। क्या इस उपदेश का पालन करके कभी भी आप दुखी हो सकते हैं? आशा का पूरा सागर है यह। एक बार सावधानी और चातुर्य से काम लेने के विषय में बाबा ने जङ्गल के टेढ़े-मेढ़े वृक्ष का उदाहरण देते हुए बताया था कि सीधे-सादे को हमेशा पहिले काट लिया जाता है।

ईश्वर और दैविक शक्ति में गहरा विश्वास अनजाने में दिला देना बाबा की ही शक्ति थी। आजकल के वैज्ञानिक चमत्कारों को दैविक शक्ति से सम्बन्धित करके बाबा केवल 'मशीन' और साइंस' के रूखे व्यक्तियों को उनसे भी क्या सबसे बड़ी "शक्ति" की याद दिलाकर भौचक्का कर देते थे। यही है बाबा का दूसरा उपदेश 'पूरे संसारी रहकर भी ईश्वर में सरलता से विश्वास रखना।'

श्री गुरु गणेश

श्री यशवन्त केशव प्रधान

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

सन् १९२७ से मुझे श्री बाबा जी के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उनके श्रीचरणों की शरण मिलने से मुझ कर्म-शील होने में तो सहायता मिली ही; साथ ही मन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी जिज्ञासा भी आकण्ठ तृप्त हुई। उस सबका विवेचन करने में मेरी कलम सर्वथा असमर्थ ही है। फिर भी स्मृति-रूप में यथा-सम्भव कुछ यहाँ अङ्कित करने का प्रयत्न करता हूँ।

जब मुझमें बुद्धि का कुछ विकास होने लगा और मेरा उपनयन हो गया, तब से हम बच्चों को सन्ध्या-पाठादि सिखलाने के लिये हमारे पूज्य पुरोहित बराबर आने लगे। हम सब उनके डर से अपने सब कार्य एक यन्त्र के समान कर लेते थे। बाद में जब हम शिक्षा प्राप्त करने के लिये शहर आये, तब अंग्रेजी ही हमारी सन्ध्या-वन्दनादि बन गई।

इस समय के हमारे एक शिक्षक थियासफिस्ट थे। उनकी कृपा से थियासफी की कितनी ही किताबें पढ़ने को मिलीं। उनकी कई बैठकों में भी हम उपस्थित हुए। ध्यान-धारणा, मास्टर का हिमालय में निवास, गुरुओं के आश्रम – इन सबका वर्णन हम सुनते थे। इनके चित्रों का भी दर्शन करते थे परन्तु ध्यान-धारणा कैसे की जाती है, यह न हम समझते ही थे और न किसी व्यक्ति ने उस सम्बन्ध में हमको कुछ बतलाया ही। सब वाक्-जाल ही मात्र था। वेदान्त, ब्रह्म और माया का विवरण ही बहुत सुनते थे परन्तु वह चीज है क्या, इस पर वास्तविक प्रकाश नहीं पड़ता था। जो लोग मुख से इतनी बड़ी-बड़ी बातें और लेक्चर देते थे, उनके आचरणादि हम देखते ही थे। उन्हें देखकर हम बड़े आश्चर्य में पड़ते।

हमारा मन तो बहुत चञ्चल और व्यग्र था। उसे वश में रखने से वह किसी एक विषय में मग्न व स्थिर हो जायगा, यह बात हमें बड़ी असम्भव-सी लगती थी। इसी प्रकार हमारा समय व्यतीत हो रहा था। उसी समय हममें मन्त्र-शास्त्र और ज्योतिर्विद्या की चाह उत्पन्न हुई। हमारा चित्त उस ओर कुछ स्थिर होने लगा। उस सम्बन्ध में कोई व्यक्ति कभी-न-कभी हमको मार्ग-दर्शन करनेवाला अवश्य मिलेगा, इसी आशा में हमारा समय कट रहा था। तभी हमने उस समय के एक ज्योतिष मासिक पत्र में एक पुस्तक की समालोचना पढ़ी, जिसके फल-स्वरूप हमारे मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि उक्त पुस्तक के लेखक से हमारी मानसिक इच्छा पूर्ण हो सकेगी। उनसे हमें विद्या का मार्ग-दर्शन जरूर मिलेगा।'

ऐसी भावना उत्पन्न होने पर हमने मुम्बा नगरी की ओर प्रस्थान किया और इस प्रकार ज्योतिर्विद्या के अपने गुरुदेव के पास पहुँचकर हमने सब शङ्काओं को उनके समक्ष रख दिया। हमारे गुरुजी (कै० जीवन त्रिम्बक चिटणीस) ने हमारी शङ्काओं का समाधान तो किया ही, साथ ही अनेक प्रश्न भी किए कि हमारा कुल कौन से सम्प्रदाय का है; हमारे प्रपितामह कौन थे; किसकी उपासना करते थे और हमें क्या करना है? हमने ये सब बातें यथा-क्रम बतला दीं। तब उन्होंने बतलाया कि मन्त्र-शास्त्र सत्य वस्तु है और भविष्य में हमारे हाथों क्या कार्य होनेवाला है, यह भी प्रकट किया।

हमने गुरुजी से प्रार्थना की कि हम सबको स्वयं ही मन्त्र-शास्त्र की भी शिक्षा देने की कृपा करें किन्तु उन्होंने तत्काल उत्तर देते हुए कहा कि 'अभी उसका समय आया नहीं है।' उन्होंने यह भी बताया कि वह विद्या और श्रेष्ठतम उपासना हमको उनके द्वारा न मिलेगी और न ही हम थियासफिस्ट होंगे। हमें

शुद्ध श्रेष्ठ आर्य सम्प्रदाय समय पर पूर्ण मिलेगा। कुछ समय बाद एक बार हमने अपनी नादान बुद्धि के अनुसार गुरु जी से यह कह डाला कि 'आप सबका मृत्यु-काल तो निकालकर बताते हैं किन्तु आपकी अपनी मृत्यु कब होनेवाली है, इस सम्बन्ध में आपने कुछ सोचा है? अभी काल आया नहीं – इसी धारणा में यदि अचानक ही आपने देह छोड़ी, तो मेरे लिये जो कुछ आपने कहा है, वह सब भी मोह-युक्त प्रतीत होगा और जगत् में आपकी हँसी होगी।'

मेरी बात सुनकर वे थोड़ी देर तक आँखें बन्दकर चुप बैठे रहे। उस समय रात्रि के लगभग बारह का समय हो रहा था। आँखें खोलकर उन्होंने मुझे आज्ञा दी कि 'तुम अभी अपने घर को जाओ, नहीं तो ट्रेन नहीं मिलेगी। शनिवार ता० १३ फरवरी १६०६ के दिन ठीक ३।। बजे हमसे मिलना। उस समय मैं तुम्हें कुछ बतलाऊँगा।'

मैं घर को चला आया और उसी दिन कोई १५ मिनट देर से उनके यहाँ पहुँच गया। वहाँ मुझे पता चला कि गुरुजी ने ३।। बजने के पहले ही अपनी पत्नी से पूछा था कि मैं आया हूँ या नहीं और नहीं आया, यह जान कर अपने को बिस्तरे से नीचे उतारकर जमीन पर लिटाने की आज्ञा दी क्योंकि उन्होंने बताया कि वे ठीक ३।।। बजे देह छोड़नेवाले हैं। पत्नी के अवाक् रह जाने पर उन्होंने यह कहकर सान्त्वना भी दी कि 'तुम चिन्ता मत करो, वह आ जायगा और सब व्यवस्था हो जायगी।'

गुरुजी का देहान्त होने से मेरा चित्त बहुत व्यग्र हो उठा। बम्बई छोड़कर मैं बड़ौदे में माता-पिता के पास जा पहुँचा। मेरे पिता जी बड़े शिव-भक्त थे। वे सायंकाल शिव का दर्शन किए बिना कभी भोजन नहीं करते थे किन्तु मुझमें बड़ी नास्तिकता थी। मैंने ज्योतिष का थोड़ा-बहुत अध्ययन किया था। उसके द्वारा कुछ प्रतिष्ठा मिली थी। उसी से मैं गर्व से फूल गया था। उन्हीं दिनों श्रीमान् दाजी नागेश आप्टे वकील के यहाँ, जो बड़ोदे में मेरे एक स्नेही मित्र थे, भाग्य-वशात् उनके गुरु श्री कै० रघुनाथ बल्लाक गोडबोले पधारे और उनसे मेरा परिचय हुआ।

गोडबोले जी भास्कर राय भारती के सम्प्रदाय के थे। उनकी कृपा से मुझे प्रणव और नवार्ण की दीक्षा मिली। श्रीमान् गोडबोले महाराज शाक्त-धर्म का पालन करनेवाले हैं और पञ्च-मकार पूजा में लेते हैं, यह सब न जानते हुए भी प्रथम दर्शन के अवसर पर उनकी कुण्डली देखकर मैंने उक्त सम्भावना का उल्लेख किया, जिसे सुनकर वे हँस पड़े। उनके पास जो दूसरे शिष्य बैठे थे, उनके प्रतिकूल रुख को देखकर 'इनको, जो कुछ इन्हें कहना है कहने दो' यह कहकर मुझे बहुत प्रेम से 'आते रहो' यह आज्ञा दी। कुछ समय बाद जब मैंने उनसे ज्योतिर्विद्या में पारङ्गत होने के लिये कुछ मन्त्र देने की प्रार्थना की क्योंकि विद्या की पूर्णता को ही मैं मोक्ष मानता था, तब ऊपर लिखे अनुसार मुझे उपासना-क्रम प्राप्त हुआ। फिर भी मेरा चित्त स्थिर नहीं होता था। उसमें बहुत शङ्का-कुशङ्का रहती थी।

इसी प्रकार सन् १६२४ तक समय बीतता गया। तभी मैंने एक दृश्य स्वप्न में देखा। उसको मैंने गोडबोले महाराज से बताया। उसे सुनकर उन्होंने मुझसे कहा कि अमुक दिन तुम आना, तुम्हें हम अन्तर उपासना देंगे। उस दिन जब मैं उनके पास पहुँचा, तो देखा कि उनको बहुत बुखार है। फलतः मुझे विमुख ही लौटना पड़ा। उन दिनों ज्योतिष-सम्बन्धी मेरा पत्र-व्यवहार कै० श्रीमान् केशव दीक्षित रोटी बागल कोटकर के साथ चल रहा था। वे मेरे यहाँ ज्योतिष शास्त्र की किसी पद्धति के सम्बन्ध में कुछ अधिक विवरण लेने के लिये सन् १६२५ के श्रावण मास में आये थे।

श्रीमान् केशव दीक्षित जी के पूर्णाभिषिक्त होने के बाद उनके गुरु श्री विट्ठल देवजी महाराज नारायण पेठ ने, जो भास्कर राय भारती के कन्या-कुल के थे और महाराज श्री गोडबोले के परमेष्ठी गुरु

के गुरु-बन्धु थे, मेरे यहाँ आने के लिये आज्ञा दी थी। हमारी भेंट होने पर श्रीमान् केशव दीक्षित से मुझको एक ही दिन में श्री गणपति, बाला और पञ्चदशी की दीक्षा मिली।

सन् १९२५ के एप्रिल से मेरा समय प्रतिकूल बीत रहा था। नौकरी छूट गई थी। छोटे बन्धु का स्वर्गवास हुआ और उनकी बीमारी में मेरी आर्थिक स्थिति भी डगमगा गई। बड़ी कठिनाई से मैं गुजर-बसर करता रहा। इसी प्रकार धीरे-धीरे सन् १९२७ का समय आया। मैं सब प्रकार से भयङ्कर सङ्कट में पड़ा हुआ था। इन्हीं दिनों श्री बाबा मोतीलाल जी महाराज के शिष्य कै० छोटालाल भाई कोठारी मेरे पास अपनी कुण्डली दिखाने ले आये।

कुण्डली हाथ में लेकर देखते ही मुझे मां मुक्ता बेन और श्री बाबा जी का दृष्टान्त अनुभव हुआ और मैंने छोटालाल भाई को उनके कौल गुरुजी का वर्णन सुनाया। साथ ही उनके चरणों में अपने को भी ले चलने की उनसे प्रार्थना की। मैंने श्री बाबा जी का ठिकाना आदि पूछ लिया और कहा कि मैं इस ठिकाने पर किसी दिन सायं-काल आऊँगा। तब श्री बाबाजी से मेरी भेंट करा देना। उन दिनों श्री बाबा जी भाई कन्हैयालाल दवे जी के घर में चौपाटी पर ठहरे थे। एक दिन मैं भी कार्यालय से दवे जी के घर गया। वहाँ कुछ पर्व-दिन था। मैं पूर्ण शुद्ध अवस्था में था परन्तु दवे जी के मकान में प्रवेश करते ही मैं इतनी बेहोश स्थिति में हो गया मानों मैंने कोई बहुत मादक वस्तु ग्रहण की हो।

दवे जी की द्वितीय पुत्री तरला देवी ने मेरा स्वागत कर मुझे बैठाया। छोटालाल भाई के आने पर मैंने उनसे श्री बाबा जी के चरणों में ले चलने की विनती की। छोटालाल भाई भीतर जाकर दस मिनट के बाद बाहर आए और मुझसे बोले कि 'भाई, बाबा जी तो समाधिस्थ हैं। आज आपको दर्शन नहीं मिलेगा। आप वापस जाइये। बाबा जी से निश्चय करके आपको सूचित करूँगा। उस दिन आपको बाबा जी के पास ले चलेंगे।'

छोटालाल भाई मुझे रास्ते तक पहुँचाने आए। उस समय मैंने छोटालाल भाई से कहा कि 'भाई, जब इधर आया, तब तो पूर्ण शुद्धावस्था में था परन्तु यहाँ आने के बाद मेरी स्थिति कुछ और ही हो गई है। ऐसी दशा में मुझे ग्राण्ट रोड स्टेशन तक पहुँचा दें, तो विशेष कृपा होगी। वहाँ से रेलगाड़ी में बैठकर मैं अपने मकान पहुँच जाऊँगा।'

इस प्रकार निराश होकर मैं घर आया। दूसरे दिन बाबा जी ने कन्हैयालाल जी से कहा कि 'उनको क्यों वापस भेजा? वे तो एक अच्छे साधक व्यक्ति हैं। हमारी इच्छा से इधर आये थे उन्हें बुलवाओ।' यह सन्देश मुझको छोटालाल भाई से मिला। मैं शीघ्र अगले ही दिन श्री बाबा जी के चरणों में जा पहुँचा। मैं तो मूढ़, ज्ञान-हीन, आपत्ति से व्यग्र-चित्त जैसी स्थिति में था। जब से मैं बाबा जी के चरणों में जा पड़ा, तब से मुझको मन की शान्ति मिली। अनेक उपदेशों द्वारा जो आश्वासन प्राप्त हुआ, उससे मुझमें दृढ़ता और धैर्य होने लगा। ज्योतिर्विद्या-गुरु ने मेरे लिये जैसा कहा था कि मुझे इस देह से क्या-क्या करना है, इसी प्रकार बाबाश्री ने भी बताया और यह भी समझाया कि मुझको अपने चरणों में क्यों खींच लाये हैं। इस सबका विवरण सुनकर मैं मुग्ध हो उठा।

मेरे प्रिय स्नेही कै० विष्णु रामचन्द्र देशपाण्डे ने भी, जो योग-मार्ग के अनुयायी होकर ध्यान-समाधि में मग्न रहा करते थे, मुझे श्री बाबा जी के पास ही स्थिर-चित्त से रहने की सम्मति दी। 'श्री बाबा जी का और मेरा पूर्व से ही सम्बन्ध होने से और उन्नत स्थिति श्री बाबा जी के द्वारा ही होगी' ऐसा कहकर वे श्री बाबा जी के पास जाकर शङ्का-समाधान करने के लिये मुझे प्रोत्साहन देते रहे।

श्री बाबा जी का निवास सदा एकान्त निर्जन भूमि में श्मशान-वर्ती प्रदेश में ही होता था। उस समय श्री बाबा जी खार के निकट ३-४ घण्टे मील दूर पर निर्जन दाडे में एक छोटे-से मकान में ठहरे थे। मैं रोज उनके पास जाकर ३-४ घण्टे ठहरता। फिर वापस दादर रात्रि के समय आता था। उक्त अवसर पर श्री बाबा जी से मैं अपनी विविध शङ्काओं का निवारण भी कर लेता था।

एक बार मैंने श्री बाबा जी से श्री सप्तशती के विषय में कुछ प्रश्न निवेदन किए क्योंकि श्री गोडबोले महाराज के मुख से ऐसा सुनने में आया था कि सप्तशती का अनुष्ठान बड़ा कठिन है। जरा-सी भूल -चूक होने पर अनुष्ठान-कर्ता को विघ्न और उपद्रव बहुत सहन करने पड़ते हैं और उसका विधान-पूर्वक अनुष्ठान करने से सभी मनोवांच्छायें पूर्ण होती हैं। उन्होंने मुझे इसके अनुष्ठान में पड़ने से रोका भी था। परन्तु मैं सांसारिक जीवन में हजारों ब्राह्मणों को उस ग्रन्थ का अनुष्ठान करते देखता रहा। कभी किसी को वांच्छित फल मिलता, तो कभी कुछ भी फल नहीं मिलता। फलतः मन में जिज्ञासा थी कि ऐसा होने के कारण क्या है? सप्तशती ग्रन्थ में है क्या?

यहाँ तक जिज्ञासा बढ़ी कि सप्तशती की पोथी लाकर धीरे-धीरे उसे पूरा पढ़ गया। इससे मेरे मन में और भी शङ्का उत्पन्न हुई कि वह तो एक पुराण-जैसा ग्रन्थ है। उसमें देवी की शक्ति और सामर्थ्य का वर्णन मात्र है। और कुछ तो देखने में आता नहीं। कितने ही श्लोक बहुत अच्छे अर्थ होने के कारण यदि उनका पाठ बराबर किया जाय, तो अर्थ की कुछ धारणा बढ़ेगी। इससे अधिक उसमें क्या है? ऐसी शङ्का होने से मैंने श्री बाबाजी से प्रश्न किया कि 'सप्तशती क्या एक पुराण ग्रन्थ है? उसमें यही सब तो लिखा है कि जब देवता लोग एकत्र होकर आपत्ति-निवारणार्थ प्रार्थना करने लगे, तब एक दिव्य तेज आविर्भूत हुआ। उसमें नारी-रूप दृग्-गोचर हुआ। देव-गणों ने उसे अपने-अपने शस्त्र, वस्त्राभूषण आदि प्रदान किये। शक्ति ने राक्षसों का संहार कर देवताओं को वरदान दिया और फिर अन्तर्धान हो गई। यह सब क्या एक कथा है या सत्य वस्तु है? ऐसा क्या कभी हो भी सकता है?'

इस पर मधुर ढँग से समझाते हुए श्री बाबा जी ने जबाब दिया कि 'सप्तशती एक पुराण भी है। इस भावना से पढ़ने से कोई अनर्थ-परम्परा उत्पन्न नहीं होती। इस सृष्टि का विकास कैसे हुआ, इसका बहुत ठीक-ठीक इतिहास इसमें दिया है। साथ ही यह मन्त्र-ग्रन्थ भी है। इसमें दश महा-विद्याओं का सम्पूर्ण संयोग हुआ है। इसलिये इस ग्रन्थ की उपासना और अनुष्ठान तान्त्रिक विधान से ही होना आवश्यक है। इस विधान से अनुष्ठान करनेवालों को कल्प-वृक्ष समान इच्छित फल देनेवाला यह ग्रन्थ है। आज इसके सत्य विधान को अधिकांश लोग जानते नहीं, केवल दम्भ और सबका गुरु होने की इच्छा से दूकानें खोल रखी हैं। उससे फल क्या मिलेगा?'

यह कहकर बाबा जी ने स्व-लिखित वह पुस्तक मुझे दिखाई, जिसमें प्रत्येक श्लोक का बीज, न्यास और ध्यान दिया था। उन्होंने बताया कि 'इस विधान से रावण ने अनुष्ठान किया था। सप्तशती में जो कुछ लिखा है वह सब, बाबा जी ने बताया कि सत्य वस्तु है। मा परम दयालु हैं। जो लड़के शुद्ध भावना से पाठ करेंगे, उन पर आपत्ति कभी नहीं आयेगी। दुखित भीरु वृत्ति से इसका पाठ नहीं करना। मां तो परम दयालु हैं और वे कुमाता कभी बनती नहीं।'

इस पर मैंने श्री बाबाजी से फिर प्रश्न किया कि 'सप्तशती के अनुसार प्रार्थना से तेज उत्पन्न हो सकता है, वह क्या आप मुझे दिखा सकते हैं?' बाबा जी ने फिर मेरे ज्योतिर्विद्या-गुरु के समान मुझे उत्तर दिया —'हे प्यारे प्रधान! समय आने पर मैं तुम्हें सब बतला दूँगा और यन्त्र में योगी-जन कैसे-कैसे वर्ण और रङ्ग देखते हैं, यह भी समझा दूँगा।' हमारा यह सम्वाद यहीं पर समाप्त हो गया।

श्री बाबा जी के सम्बन्ध में मेरी इतनी तो निष्ठा हो चुकी थी कि वे जो कुछ भी बोलते हैं और वाणी से उच्चार करते हैं, वह सब दृश्यवान सृष्टि में देखने को मिल जाता है। जब वे बोलना नहीं चाहते थे, तब उनके सामने बात करना – न करना एक ही चीज थी। उन्हें जब लिखने की इच्छा होती, तब वे किसी भी विशिष्ट विषय पर एकाग्र चित्त से लिख सकते थे और जब काव्य की रुचि होती, तब उनमें मूर्ति-मान काव्य प्रगट हो जाता था।

सन् १६३० में जिन दिनों सारे देश में महात्मा गांधी का आन्दोलन प्रारम्भ होकर उच्च स्थिति को प्राप्त कर रहा था, उन दिनों श्री बाबा जी महाराज सदा चिन्ता-ग्रस्त मालूम होते थे। भारतवर्ष की भावी स्थिति के सम्बन्ध में सदैव चिन्तित रहते थे। मेरे देखने में जो श्रेष्ठ उपासक पुरुष, साधु सन्त इत्यादि अब तक आये हैं, उनमें से अधिकांश अपनी स्वयं की उन्नति किस प्रकार हो सकती है, इसी विचार में मग्न रहनेवाले रहे हैं। भारत का पुनरुत्थान कैसे होगा और कैसे किया जाय, इस प्रकार का विचार करनेवाले केवल बाबा जी महाराज मिले। वे अपने शिष्य की उन्नतावस्था के लिये सदा सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते थे। श्री बाबा जी के समान राष्ट्र-सम्बन्ध में विचार करनेवाला सन्त मेरे देखने में और अध्ययन करने में श्री शिवा जी कालीन समर्थ रामदासजी को छोड़कर अन्य कोई नहीं हुआ।

एक बार देश-सम्बन्धी विचार-विमर्श होते समय मैंने उनसे पूछा कि 'आपको भारतवर्ष के उत्थान के सम्बन्ध में इतनी चिन्ता क्यों है?' तब उन्होंने मुझे उत्तर दिया कि 'मेरा पूर्व-जन्म इसी भारत देश में हुआ था और मैं इस देश का अधिपति था परन्तु कटु अनुभव होने पर सांसारिक जीवन से दुखी होकर मैं राज गृह का त्याग कर वन ग्रामी बन गया। वहीं पर सद्गुरु से मेरी भेंट हुई और मेरा मार्ग अलग हो गया। अतः पूर्व-संस्कार-युक्त देह होने के कारण मुझे भारतवर्ष का मोह छोड़ना कठिन जान पड़ता है। इसीलिये मैं इस देश की उन्नति चाहता हूँ।' इस पर मैंने फिर प्रश्न किया कि 'आप तो सर्व-सामर्थ्यवान् एवं शक्ति-सम्पन्न हैं। इस देश की उन्नति स्वयं क्यों नहीं करते?'

उन्होंने उत्तर दिया, कि 'यदि मैं अकेला ही इस कार्य को करने के लिये तैयार हो जाऊँ, तो आज तक के हजारों वर्ष के भारत-वासियों द्वारा किये गये कर्मों का सारा बोझ मुझ पर ही पड़ जायगा और वह शायद मेरी शक्ति से दूना होगा, जिसे मैं सँभाल न सकूँगा। इसलिये यदि भारत-वासी स्वयं ही इस प्रयत्न में लगेंगे, तो उनके सहयोग से यह कार्य कुशलता से पूर्ण हो सकता है।'

अन्त में पूज्य श्री बाबा जी ने भारत के उत्थान के लिये शत-चण्डी यज्ञ करने का निश्चय किया। इसके लिये बाबा जी ने बनारस के अपने सब शिष्यों को बुला लिया और बाबा के दांडा स्थित निवास-स्थान के समीप एक निर्जन अँबराई में पण्डाल डालकर इस यज्ञ का प्रारम्भ किया गया। इस अवसर पर बाला-गर्भित एक बहुत बड़े श्री-चक्र की स्थापना की गई थी। यह श्री-यन्त्र भूमि पर ही बनाया गया था। इसके प्रत्येक दल में भिन्न-भिन्न रङ्ग भरे हुए थे। प्रत्येक दल के देवताओं के नाम समझने की भी योजना की गई थी। बिन्दु के मध्य में भगवती बाला का यन्त्र था और उस बिन्दु में प्रथम तत्व से पूर्ण कुम्भ स्थापित था।

सब तैयारी हो जाने पर श्री महाराज जी ने मुझे बुलाने को कहा। मेरा निवास-स्थान दूर होने के कारण मैं बाबा जी के दर्शन नित्य नहीं कर पाता था, केवल कभी-कभी स्फूर्ति होने पर अवश्य मिल लेता था। परन्तु जब बाबा जी से कहा गया कि मेरा पता मालूम न होने से बुलाया नहीं जा सकता, तब उन्होंने कहा कि 'कोई बात नहीं, वे जरूर आयेंगे।'

चैत्र पूर्णिमा के दिन करीब ६।। बजे के बाद –

'मम देशस्य क्षेम-स्थैर्यायुरारोग्याभिवृद्धयर्थं श्रीजगदम्बा-योग-माया-भगवती-दुर्गा-प्रसाद-सिद्धयर्थं च नमो-युत-प्रणव-वाग्बीज-स्वबीज-लोम-विलोम-सम्पुटितोक्त शरणागत-सम्पुटित-श्रीसप्तशत्यन्तर्गत अमुक (श्लोक सं०) मन्त्र-जपे विनियोगः।''

इस प्रकार के सङ्कल्प के अनुसार अनुष्ठान प्रारम्भ किया गया। प्रायः पाँच दिन के बाद मुझे कुछ अस्वस्थता मालूम हुई और बाबाजी के दर्शनों की इच्छा हुई। फलतः मैं सायंकाल उनके निवास-स्थान दाँडा पहुँच गया। उस समय श्रीमहाराज स्नानादि दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर आसन पर विराजमान थे। मैं वन्दन करके खड़ा रहा। उन्होंने मुझे आया देखकर बैठने की आज्ञा की और कहा—'यह अनुष्ठान कैसा चल रहा है, ध्यानपूर्वक देखिये और जो यन्त्र बनाया है, वह भी देखो और उसमें प्रतिष्ठा कब की जाय, उसका समय बता दो।'

उन्होंने एक शिष्य को लालटेन लेकर मुझे यन्त्र व उसके दलों के रङ्ग इत्यादि दिखलाने की आज्ञा दी। यन्त्र देखने के पश्चात् मैंने पूज्यश्री से निवेदन किया कि—'शक्ति-यन्त्र में प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिए कृष्णाष्टमी सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। अतः वही ली जाय।' मेरा अनुमान था कि जिस प्रकार अन्य जगहों पर अनुष्ठान किये जाते हैं, उसी प्रकार यहाँ भी अनुष्ठान किया जायगा। सदा के समान दस ब्राह्मण पाठ करेंगे और पूर्ण होने पर एक पाठ का हवन करेंगे परन्तु वैसा देखने को मिला नहीं।

पहले बाबाश्री ने सप्तशती के श्लोक-पाठ दिखलाये। अर्थ बताने के साथ किन-किन कार्यों में इन श्लोकों का अनुष्ठान किया जाता है व किसने-किसने ऐसे अनुष्ठान किये हैं, इस सबका उन्होंने वर्णन किया। प्रत्येक श्लोक का ऋषि, कौन देवता है, मन्त्र-शक्ति कौन है, बीज क्या हैं, विद्या कौन सी है, कौन सा गुण, कौन सी इन्द्रिय, कौन सा रस, कौन सी कर्मेन्द्रिय, कौन सा स्वर, कौन से तत्त्व, कौन सी कला, कौन से बीज, कौन सी मुद्रा और क्या ध्यान है—इत्यादि समस्त बातें जब बाबाश्री ने हमें बता दीं, तब सब लोगों ने मन्त्र के द्वारा आहुति दी।

इस प्रकार दस आदमी— दस बार मन्त्र पढ़कर आहुति देते थे। नित्य लगभग दस श्लोक होते थे और अन्त में आरती आदि होने के पश्चात् प्रसाद बाँटा जाता था। फिर रात के एक बजे के बाद हमारा सारा समूह बाबा जी के साथ सागर के किनारे श्मशान-भूमि के पास बैठता था और प्रायः चार बजे हमें बाँदरा स्टेशन पर पहुँचा दिया जाता था। उस समय श्री हरकिशन भाई, श्रीमती अजब बेन और हम दादर-निवासी रेलगाड़ी-द्वारा दादर वापस आ जाते थे। प्रथम दिन के कार्य के पश्चात् जब मैं घर आने लगा, तब मुझे बराबर आने की आज्ञा हुई।

इस प्रकार तीन वर्ष पूर्व सप्तशती-सम्बन्धी जो जिज्ञासा मैंने की थी, वह अनुष्ठान सम्पूर्ण होने तक पूर्ण होती जान पड़ी। मुझे हर महत्त्व-पूर्ण बात लिख लेने की आदत थी परन्तु बाबाश्री के मन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी ज्ञान को देखकर मैं इतना मुग्ध हो गया कि मेरी लिखने की क्रिया शिथिल पड़ गई। उन्होंने जो हस्त-लिखित पुस्तक मुझे दिखाई थी, उसी के अनुसार अनुष्ठान का सारा कार्य चल रहा था।

इस अनुष्ठान की सम्पूर्ण प्रति (यह प्रति 'मन्त्रात्मक सप्तशती' के नाम से प्रकाशित हो चुकी है। मूल्य ६० रुपए) आज भी श्री कन्हैयालाल जी दवे के पास विद्यमान है। उक्त अनुष्ठान के पूर्ण होने में लगभग तीन महीने लग गये। अनुष्ठान के पूर्ण होने पर मेरे मन को कुछ ऐसा आभास हुआ कि इसी प्रकार के और भी महत्त्व के अनुष्ठानों का योग आयेगा। कुछ समय के बाद दूसरे अनुष्ठान का पूरा प्रबन्ध होने पर तैयारी की गई। यह अनुष्ठान श्रावण महीने में आरम्भ किया गया था।

इस बार किसी यन्त्र का निर्माण नहीं किया गया। चाँदी का एक विशाल कुम्भ, जो पहले के कुम्भ से अधिक बड़ा था, एक यन्त्र पर स्थापित किया गया था। इस अनुष्ठान का सङ्कल्प बड़ा तीव्र था। भगवती योग-माया दुर्गा देवी के प्रसाद से स्वदेश के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर देश की स्वतन्त्रता के लिए पूर्व-वत् बीज-सहित प्रत्येक श्लोक को "इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति। तदा तदा-वतीर्याऽहं करिष्याम्यरि-संक्षयम्"—इस मन्त्र से सम्पुटित कर अनुष्ठान किया गया।

इस प्रकार अनुष्ठान चल रहा था और जिधर कुछ विशिष्ट देवता आते थे, उन स्थानों में कहीं सहस्र कहीं दस सहस्र आहुतियाँ उस देवता के मन्त्र द्वारा दी जाती थीं, कुछ दिनों के बाद चतुरस्र कुण्ड पूर्णतया भर गया। अब द्वितीय कुण्ड कौन सा लिया जाय, इसका विचार हो रहा था। मेरे आने पर मुझसे भी पूछा गया। मैंने कहा कि—'योनि-कुण्ड की बहुत विशेषता बताई जाती है, उसी की योजना क्यों न की जाय।'

मेरे निवेदन से प्रसन्न होकर गुरु जी ने कुण्ड का तदनुसार निर्माण करा लिया। प्रथम अनुष्ठान में सप्तशती-सम्बन्धी सब बातें मुझे बताई ही जा चुकी थीं; अब इस दूसरे अनुष्ठान में मुझे वारुणी इत्यादि लेकर दसवें ब्राह्मण की जगह पर बैठना पड़ा। इस प्रकार बाबा जी के आज्ञानुसार मुझे क्षत्रिय-कर्म छोड़कर ब्राह्मण-कर्म ग्रहण करना पड़ा।

अनुष्ठान के मण्डप को वर्षा के कारण हानि न पहुँचे, इसलिये चबूतरा बनाया गया था। यज्ञ-कुण्ड भूमि में पाँच-छः फुट गहरा था और मण्डप की छत लगभग बीस फुट ऊँची थी। चारों ओर बाँस की चटाइयाँ लगाई गई थीं। छप्पर पर पानी न आवे, इसके लिये पूरी व्यवस्था की गई थी। मण्डप में पचास-साठ व्यक्तियों के बैठने की सुविधा की गई थी। मुख्य आचार्य सुमन्तराम ने योनि-कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित की और हवन प्रारम्भ किया। रात के समय लगभग ग्यारह बजे जब सर्वत्र शान्ति छाई थी, महाराज जी पूर्ण आनन्द-युक्त थे और उनका मुख-मण्डल पूर्ण प्रशान्त होकर उस पर एक प्रकार की दिव्य आभा भास-मान हो रही थी। हाथ में माला लिये हुए थे। मुझे उद्दिष्ट कर बोले—'प्रधान, सावधान चित्त से रहना। अभी नवार्ण महा-मन्त्र की आहुति देना चाहता हूँ। उसकी देवता कौन है और क्या तत्व है?'

मैंने उत्तर दिया—'महाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-स्वरूपिणी भगवती दुर्गा देवता; अग्नि वायु और सूर्य तत्व हैं।' इसके बाद बाबा जी के 'स्वाहा' कहने पर हम लोग एकाग्र चित्त से नवार्ण मन्त्र का मन-ही-मन उच्चारण करते हुए द्रव्य की आहुति देते थे। इस प्रकार कुछ काल बीतने पर कुण्ड की अग्नि धीरे-धीरे प्रज्वलित होने लगी और अन्त में कुण्ड से लेकर मण्डप के शिखर तक एक महा-ज्योति निर्मित हो उठी और इधर-उधर सर्वत्र प्रकाश भर गया।

महाराजश्री मेरी ओर देखकर हँस रहे थे। मेरे शरीर में एक अद्भुत अपूर्व भाव का संचार हो रहा था, जो अवर्णनीय है और आनन्द के समुद्र में मैं पूर्ण रूप से डूब-सा गया था। मेरे आस-पास के दूसरे शिष्य-गणों से, जो उस दिव्य अग्नि को बुझाने के लिये यत्न-शील थे, मैं अनजाने ही कह रहा था कि 'आप लोग यह क्या करते हैं! इस परम अलभ्य स्थिति का आनन्द लूटो।'

थोड़े ही समय के बाद बाबाश्री ने हवन पूर्ण कर आरती इत्यादि करने के लिये कहा। इस प्रकार तीन वर्ष पूर्व मेरे मन में आई शङ्का का व्यावहारिक रूप से निरसन हो गया। बाबाश्री ने सप्तशती के कुछ श्लोकों के लिये—

'कुनीतिनः ब्रिटेनस्य गृहीत्वा त्वमुपागता।
लोकेषुविनाशायख्याता देवि! भविष्यसि॥'

यह पाठ लेकर हवन किया था। इसी प्रकार शेष श्लोकों के लिये—

'त्रैलोक्यमिन्द्रो लाभवान् देवाः सन्तु हविर्भुजः।
यूयं गच्छतु इंग्लैण्डम् यदि व्यापारमिच्छथ॥'

यह पाठ लेकर हवन किया था। कुछ समय के बाद मैंने महाराज श्री से पूछा कि—'इस याग की फलद्रूपता कब होगी ?' उन्होंने बताया कि 'अभी और तम बाकी है। तीसरा अनुष्ठान हो जाय, तो जल्दी ही सिद्धि प्राप्त होगी। नहीं तो तम निरसन होने में नौ या ग्यारह वर्ष लगेंगे।' ऐसा ही हुआ। ग्यारह वर्षों के बाद ८ अगस्त १९४२ को 'क्विट इण्डिया' की घोषणा हुई और आगे के नौ वर्षों की अवधि के भीतर ही स्वराज्य मिल गया और २६ जनवरी १९५० को स्वतन्त्र भारत की घोषणा हो गई।

उक्त दोनों अनुष्ठानों में लगभग ७०-८० हजार रुपये खर्च हुआ। यह सारा खर्च महाराज श्री ने किया। पैसा कहाँ से आया और कैसे खर्च हुआ, यह मेरे जैसे पास रहनेवाले तक समझ नहीं पाये। आजकल अमुक अनुष्ठान के लिये धन एकत्र करने में जैसी गड़बड़ और झगड़ा मचाते हुए लोग देखे जाते हैं, उसे देखकर सखेद आश्चर्य होता है और शङ्का उठती है।

एक ऐसा ही प्रयत्न बम्बई में 'विश्व-शान्ति हेतु' लक्ष-चण्डी के लिये किया गया था। वह अनुष्ठान देखने की मुझे इच्छा हुई और मैं उसे देख भी आया। उस सम्बन्ध में महाराज श्री के पास जब चर्चा की, तो महाराज श्री बोले —'प्रधान, यह सब श्रेयत्व या श्रेष्ठता पाने के लिये हो रहा है। तुमको और जो लोग अनुष्ठान कर रहे हैं, उन्हें क्या इसका कुछ भान भी है कि यह विश्व क्या चीज है ? किसी को अभी तक स्वदेश ही का भान नहीं हुआ है, तो विश्व की कैसे सोचेगा ?'

उस अनुष्ठान की पूर्णाहुति हुई और उसी दिन बम्बई में हिन्दू-मुसलमान दंगे की लहर आई और कितनी ही लाशें गिर गईं !

श्री बाबा जी के सम्पर्क में अनेक वर्ष बीते। इस अवधि में उन्होंने मन्त्र-शक्ति कैसे उत्पन्न होती है और क्या कार्य करती है, इत्यादि सम्बन्ध में जो-जो बातें बतलाईं, उनके द्वारा अणु-शक्ति, कास्मिक रेज़ (अवकाश की दैवी किरणें) आदि के सम्बन्ध में मुझे १९३०-१९३५ के ही काल में ज्ञात हो गया था; जिन्हें आधुनिक विज्ञान अभी पिछले कुछ ही वर्षों में कुछ अंशों में खोज पाया है।

इस प्रकार पूज्य बाबाश्री ने मन्त्र-शास्त्र-सम्बन्धी मेरी तृष्णा शान्ति की और मुझे विश्वास हुआ कि आज के रसायन शास्त्र में जैसे सल्फ्यूरिक एसिड है, वैसे ही तत्वाणु-विस्फोट करने के मन्त्र-शक्ति के फार्मूले हैं। श्री बाबा जी की कृपा से मुझे जो अनुभव हुए, उनसे मैं कह सकता हूँ कि जगत् में चमत्कार जैसी कोई वस्तु नहीं। प्रकृति का ज्ञान हो तो यह मानवीय देह इच्छित कार्य सहज ही कर सकती है।

शाक्तों का सत्सङ्ग करने का मुझे बहुत अवसर मिला है, पर स्पष्ट कहें, तो आज के हमारे अधिकांश शाक्त-गण जिह्वा-लालित्य के लिये तत्त्व-भोगी होकर निन्दा-पात्र हुए या हो रहे हैं अवश्य, पर उनका उपयोग क्यों किया जाता है, सहायक-रूप कैसे होते हैं, इसका ज्ञान करानेवाले महात्माओं का इधर अभाव-सा रहा है। परन्तु बाबाश्री सदा कहा करते थे कि—

'पञ्चमे तु न मैथुनं, पञ्चमे तु शिव-चिन्तनम्।'

आज के हमारे कितने शाक्त-गुरु इस सिद्धान्त को आचरण में लाते हैं ! महाराज श्री के सम्पर्क में आने के बाद अनेक गोष्ठियों का अपूर्व अनुभव मिला और अनेक तथ्य प्रत्यक्ष देखने को मिले। उन सबका वर्णन करूँ, तो एक बड़ा ग्रन्थ तैयार हो जायगा। अस्तु, इतना ही लिखकर विदा लेता हूँ।

पूज्य पादाब्जों में

पण्डित काशीप्रसाद शुक्ल, शास्त्री

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

श्रीमत्-परम पूज्य १०८ बाबा मोतीलाल जी महाराज का सान्निध्य प्राप्त करने का सौभाग्य मुझे कई बार प्राप्त हुआ था। आपके समीप रहकर मनुष्य सांसारिक वासनाओं को भूल-सा जाता था और अपने अप्राप्य लक्ष्य को जैसे पाकर तन्निमग्न हो जाता था। आप जहाँ भी रहते थे, आपकी शिष्य-मण्डली अहर्निश आपके नित्य के सदभ्यस्त सङ्केतों के अनुसार समस्त भुवन-सञ्चालिनी महा - माया के गुणानुवादों को महाराज के स्व-रचित पद्यों में अथवा दुर्गा सप्तशती आदि आर्ष-ग्रन्थों के पद्य-रूपों में गाया करती थी। कोई भी क्षण ऐसा नहीं बीतता था कि जब बेकार की बातें होती हों। आपके समीपस्थ सभी नर-नारी आपके प्रभाव से प्रभावित अपने-अपने कार्यों में रत रहते तथा अपूर्व आनन्द की उमङ्गों में उल्लसित अनुपम शान्ति का अनुभव करते थे।

आपका स्वभाव भ्रमण-शील, तपस्वी, विनोदी, अत्यन्त उदार, सम-दृष्टि, अति दयालु और भेद-भाव-रहित था। आपके दरबार में सभी वर्ण के प्राणी एक परिवार के जैसे परस्पर व्यवहार करते थे। आपकी दिन-चर्या का नियम बना हुआ था। महाराज स्वयं अपने नित्य नियमों तथा समय पर विशेष ध्यान रखते थे। नित्य दिन को तीन बजते ही प्रभु अपने अमूल्य आभूषणों-वस्त्रों को त्यागकर एक कमरे में प्रविष्ट हो जाते और तीन घण्टे तक अपनी साधना में प्रवृत्त रहते। फिर स्नानादि से निवृत्त होकर अन्य वस्त्रों को धारण कर सात बजे प्रायः आसन पर आ विराजते थे। उसी समय आप दूध, फलों का रस आदि कुछ भोजन करते। तब आपका दरबार लगता था। उस समय सभी शिष्य-मण्डली एकत्रित होकर सु - स्वर रागों में भगवती का भजन करती थी, जिसे सुन महाराज परमानन्द-विभोर होते थे। उस समय कोई भी नवागन्तुक व्यक्ति महाराज से भेंट कर सकता था तथा प्रश्न आदि भी।

आपकी योग्यता, अनेकानेक शास्त्र-पारंगमिता, अखिल-निगमागमीय तत्वज्ञता का पता तो तब लगता था, जब आप साधारण प्रश्न को भी सुनकर परम प्रसन्न मुद्रा में परमोल्लासित उमङ्ग से मेघ-वत् गम्भीर स्वर में उनका उत्तर विस्तृत एवं विस्पष्ट भाषा में देने लगते थे। एक बार प्रयाग में आप सप्तशती के नवार्ण मन्त्र का अर्थ नौ दिनों तक प्रति-दिन रात्रि में तीन घण्टे वर्णन कर बताते रहे और फिर यह कहा था कि 'अभी तो इसके सात ही सोपान हुये हैं, अभी दो शेष हैं।'

आप अपनी शिष्य-मण्डली के सहित जिस किसी नगर में पधारते, तो नगर के बाहर पवित्र स्वच्छ रमणीय किसी एकान्त स्थान में ठहरते थे। आपका दैनिक खर्च सौ-डेढ़ सौ रुपयों से किसी प्रकार कम नहीं रहता था वरन् अधिक ही हो जाता था। आप न तो किसी से मिलने जाते थे और न किसी के मिलने की अपेक्षा ही रखते थे।

अनेक धनी-मानी आपसे प्रभावित होकर यदि आपकी कुछ सेवा करना चाहते भी थे, तो आप पुष्प-फलादि के अतिरिक्त अन्य कुछ भी स्वीकार नहीं करते थे क्योंकि आप लोक-संग्रह से बहुत दूर ही रहना श्रेयस्कर मानते थे, परन्तु मैंने आपको एक बार बनारस में सच्ची निष्कपट हार्दिक श्रद्धा अ र प्रेम-प्रवाह में प्रवाहित होते भी देखा।

प्रातः सात बजे शरत्कालीन वायु मन्द गति से बह रहा था। हम सब स्नानादि से निवृत्त हो महाराज के दर्शनों के लिए उत्कण्ठित हो रहे थे कि उनके पट्ट - शिष्य श्रीमान् झावेरी जी ने कपाट उघाड़ कर कहा—चलिये।

इसी समय बनारस की रहनेवाली एक पूर्व-परिचित गायिका ने प्रवेश किया। उसके साथ उसकी नवयुवती पुत्री भी थी, जिसे असह्य कष्ट रहा करता था, जो औषधियों से दूर न होता था। उसने महाराज का सङ्केत पाकर पुष्पादि हार आदि उपचारों से महाराज की पूजा की और स्तुति-रूप में 'मो सम कौन अधम खल कामी' यह गीत भैरवी के स्वरों में गाया। साथ ही प्रभु के समक्ष उसका समस्त कलुष अश्रु-धारा के रूप में बह चला।

फिर क्या था, आप उसके आँसुओं को न देख सके और इतने गद्गद् हो गये कि उस समय का दृश्य अवर्णनीय था। देखते ही बनता था। महाराज की कृपा-दृष्टि से ही उसका कष्ट दूर हो गया। इतना ही नहीं, चलने के पूर्व उसने प्रार्थना की कि 'प्रभो, एक दिन का सब लोगों का भोजन मेरे खर्च से स्वीकार किया जाय।' कह कर उसने रुपये चरणों के समीप रख दिए और स्वीकृति मिल गई।

यह चरित्र देख सारी शिष्य - मण्डली दङ्ग रह गई और एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराने लगी। इस उदाहरण से महाराज की उदारता तथा सच्ची श्रद्धा, निष्कपट प्रेम-भावना की उत्कृष्ट ग्राहकता एवं दयालुता का पूर्ण परिचय मिलता है।

पूज्य बाबा जी के विषय में जो कुछ भी लिखा जाय, थोड़ा ही है क्योंकि वे बहुत ही रहस्य-मय थे। उन्हें उनके शिष्यों ने शायद पहचाना हो, जो अहर्निश उनकी देवता-वत् पूजा किया करते थे तथा उनके नेत्रों की ओर अपनी दृष्टि रखकर उनके संकेतों का पूर्ण पालन करने का भरसक प्रयत्न करते थे। उनके शिष्यों की यह दृढ़ भावना थी कि बाबा जी भारत के विधाता, प्रेमावतार यशोदा के प्यारे, देवकी-दुलारे, भगवान् श्रीकृष्ण के गुप्त अवतार हैं और इसी निष्ठा से उनकी पूजा करते हुये मैंने उनके शिष्यों को देखा भी है।

साधारण तथा विशिष्ट योग्य—कैसा भी साधक हो, उसे देख महाराज अत्यन्त प्रसन्न हो जाते थे और उसके साथ निज परिवार का जैसा व्यवहार भी करते तथा प्रार्थना सुनकर उसकी समुचित सहायता करते थे। अपने जीवन-काल में उन्होंने अनेक साधकों का सब प्रकार से कल्याण किया है, जो उनके जीवन-चरित को पढ़ने से साधकों को पता चलेगा।

वे क्या थे, इस जगत् में वे किसलिये कितने समय के लिये क्या उद्देश्य लेकर आये थे तथा क्या करके चले गये, यह अभी तक किसी ने नहीं जाना। उनकी ही अनुकम्पा से उनके सम्पर्क में रहकर मुझे तो यही विश्वास है कि वे इस देश की सङ्कटापन्न अवस्था का अवलोकन कर तथा ऋषि-सन्तति की करुणा-मय आर्त पुकार से द्रवित होकर साधारण ब्राह्मण परिवार में प्रकट हो विलुप्त-प्राय सन्मार्ग को प्रोत्साहित कर, समयानुकूल प्रच्छन्न रूप से मन्त्र-परम्परा को पुनः जागृत करके स्वकीय अदम्य अथक-अनवरत परिश्रम से समस्त भारत-भूमि का निरीक्षण कर, इतस्ततः गुप्त महानुभावी महात्माओं के पास केन्द्रित शक्तियों के अपार समूहों को अपने में एक जगह सञ्चित कर देश को निर्बलता, दासता एवं दरिद्रता-रूप कालिमा को अपने परम प्रकाश से मिटा कर अपना ध्येय पूर्ण कर गये।

इतना ही नहीं, मान्त्रिक समुदाय को यह दिव्य सन्देश दे गये कि उनका आत्म-कल्याण ही नहीं वरन् लोक-कल्याण भी परम कर्तव्य है और उनके उद्देश्य को उनकी जीवन-यात्रा समाप्त होने पर भी कोई न जान सका।

ईश्वर-स्वरूप बाबाश्री

डा० माताप्रसाद

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०–सन् १९५४ : सं० ३)

भारत विश्व के उन श्रेष्ठ-तम देशों में से एक है, जिन पर ईश्वर की विशेष कृपा रही है। इस पृथ्वी की सृष्टि होने के समय से लेकर अब तक अधिकांश अवतार भारत में ही अवतरित हुए हैं, शायद उसकी भौगोलिक स्थिति इस उद्देश्य के लिये सबसे अधिक उपयुक्त है। इन अवतारों में कुछ ने तो अपना वह स्वरूप प्रकट किया, जब कि अन्य ने एक अज्ञात जीवन ही बिताया और फिर भी जिस उद्देश्य के लिये अवतार अवतरित होते हैं, उसकी पूर्ति की। मेरी समझ से बाबाश्री दूसरे प्रकार के अवतार थे और मैंने उन्हें सदैव अपनी इस पृथ्वी पर रहनेवाले ईश्वर के रूप में ही देखा।

पहले-पहल मैं १९३६ में अपने एक पुराने मित्र डा० दशरथलाल श्रीवास्तव की कृपा से पूज्य-श्री से घोडबन्दर रोड, बम्बई में हो थोड़े समय के लिये मिला था, जब कि वे अपने शिष्यों के साथ सागर-तट-वर्ती किसी स्थान से लौट रहे थे। उनका वास्तविक सम्पर्क मैं १९३८ ही में पा सका, जब कि उन्हें अपने घर निमन्त्रित करने और अपने कनिष्ठ पुत्र बच्चू (धीरेन्द्रप्रसाद) का मुण्डन-संस्कार सम्पादित करवाने की प्रार्थना करने के लिये मैं पुनः डा० श्रीवास्तव के साथ उनके निवास-स्थान पर गया।

इस अवसर पर जो दया-मय दैवी प्रकाश उन्होंने मुझे प्रदान किया, उससे मैं उनके निकट जभी सम्भव हो, तभी जाने और अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिये उनके चरणों में बैठने तथा अपने वैज्ञानिक शोध में कुछ उल्लेखनीय कार्य करने के लिये प्रेरणा पाने की उत्कट इच्छा से भर गया।

प्रारम्भिक दिनों में हम (मैं और मेरी पत्नी) प्रायः आरती, हवन, भजन या अन्य वैसे पूजन-उत्सवों के अवसरों पर ही जाया करते थे। इनके सम्बन्ध में पूज्यश्री के आदेशानुसार हम लोगों को कृपा-पूर्वक सूचित कर दिया जाता था। बाद में हम जब-तब, विशेष कर सायं-काल में, दर्शनार्थ पहुँचने लगे। यहाँ तक कि जब कभी पूज्यश्री बम्बई के बाहर चले जाते, तब हमारी समझ में न आता कि सायं-काल बिताया कैसे जाय! कभी-कभी हमें पूरा दिन उनके सम्पर्क में बिताने का सौभाग्य मिला। इससे हमारी श्रद्धा बढ़ी और अपने हित तथा ज्ञान-प्राप्ति के लिये उनका सान्निध्य प्राप्त करने में शीघ्रता हुई।

पूज्यश्री प्रत्येक व्यक्ति के प्रति दयालु, स्नेहशील और उदार हैं (क्योंकि मैं नहीं मानता कि वे मृत हैं)। दैनिक बैठकों तक में मैंने अनुभव किया कि उन्होंने हर बार एक ऐसी स्नेह-मयी मुसकान के साथ मेरा स्वागत किया कि उससे मैं अनेक सांसारिक चिन्ताओं और उलझनों से ऊपर आ गया।

पूज्यश्री एक यथार्थवादी थे। वे सदा इस बात पर जोर दिया करते थे कि प्रकृति के नियम सार्वभौमिक सत्य हैं और सभी जीवों पर समान रूप से लागू होते हैं। सभी समस्याओं के समाधान में उनका दृष्टि-कोण सदैव वैज्ञानिक (तर्क-सम्मत) रहता था और सही ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित होता था; फलतः उनके शिष्य रहस्य-पूर्ण कभी नहीं रहे।

पूज्यश्री मानवरूप में अब हम लोगों के बीच नहीं हैं। तथापि मुझे विश्वास है कि वे प्रति क्षण मेरे साथ हैं और उसी प्रकार मेरा मार्ग-दर्शन कर रहे हैं, जिस प्रकार कि वे अपना भौतिक शरीर छोड़ने के पहले किया करते थे। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरे जीवन भर यहाँ या अन्यत्र मेरे साथ बने रहें।

अमर-कण्टक की यात्रा

श्री छगनलाल

('चण्डी' वर्ष १३ : सम्वत् २०११ वि०—सन् १९५४ : सं० ३)

लगभग १९१४-१५ की ग्रीष्म ऋतु की बात है। रायपुर (मध्य-प्रदेश) के सदर बाजार में मेरी एक चूड़ी की दूकान है, जिसके पड़ोस में सेठ बालकृष्णजी नाथाणी नाम के एक परम वैष्णव धनवान गृहस्थ की दूकान है। सेठजी ने मुझे खबर दी कि—'दो-एक वर्ष हुये, एक महान् पुरुष का सत्सङ्ग मुझे प्राप्त हुआ था। आजकल यहाँ पधार कर जूनी बस्ती में ठहरे हैं, चलकर उनके दर्शन किये जायँ।' फलतः उसी दिन दो - तीन बजे हम दोनों उस बस्ती में खोज करते - करते श्रीवृजलाल पण्डित के यहाँ पहुँचे।

वहाँ पूछने से पता लगा कि महाराज श्री ऊपर के खण्ड में विराजमान हैं। हम दोनों ऊपर गए। देखा कि एक छोटे-से दीवान-खाने में सफेद गद्दी-तकिये पर एक दिव्य स्वरूप, आयु कोई २५-२६ वर्ष, युवा गौर-वर्ण, मुख-कमल में सुगन्धित पान, चमकती कान्ति, सिर में काले भौंरे जैसे सुगन्धित चमकते हुए गुच्छेदार केश, दोनों कानों में रत्न-जटित सुवर्ण लवङ्ग, गले में सुवर्ण-युक्त रुद्राक्ष की माला, रेशमी श्वेत वस्त्र धारण किये हुये मन्द-हास्य वदन से शोभायमान महा-व्यक्ति बैठे हैं। मैं आश्चर्य-चकित हुआ। साष्टाङ्ग प्रणाम कर हम दोनों सामने बैठ गए।

उस समय महाराज श्री के समीप बारह-पन्द्रह व्यक्ति वार्तालाप में मग्न थे। वे सब विद्वान् थे और उनमें से कई एक ग्रेजुएट भी थे। सारी बातचीत अंग्रेजी ही में हो रही थी। उत्तर में महा-राजश्री की अंग्रेजी वाणी अद्भुत थी। हम लोगों ने गुजराती भाषा में बातचीत की। वे स्वयं ग्रेजु-एट होने के सिवा १५-१६ भाषाओं के ज्ञाता और संस्कृत तथा अंग्रेजी के प्रखर विद्वान् दिखे। मात्र वेद, उपनिषद्, ज्ञान, भक्ति—यही श्री जी के मुख्य विषय थे। थोड़े समय तक सत्सङ्ग कर हम चले आए। इसके बाद हम लोग प्रायः नित्य दर्शन को जाते रहे। पैर में चोट आ जाने के कारण दवा कराकर काशी की ओर चले गए। एकाध वर्ष बाद फिर पधारे और अपने दूसरे भक्त बंशीलाल जी के यहाँ ठहरे। इस प्रकार आते-जाते रहे। अन्त में एक बार मेरी दूकान के सामने सेठ गोपीकिशनजी नाथाणी के यहाँ, जो सेठ बालकिशन के बड़े भाई थे, आकर ठहरे। इससे हम लोगों को सत्सङ्ग की अधिक सुविधा हो गई।

महाराज श्री की आनन्द - मूर्ति भोजन में मात्र एक बार थोड़े दूध के सिवा और कुछ नहीं लेती थी। उतारे में जगह का अच्छा प्रबन्ध और एकान्त होने से अपनी असल योग-साधना में निमग्न रह हठ-योग की साधना करते थे। मयूरासन वृषासन से छः-छः घण्टे लगातार समाधि में हम लोगों ने उनकी तपस्या के दर्शन भी किये। अन्न बिना शरीर कृश जरूर हुआ था परन्तु मुख-मुद्रा जैसी की तैसी तेजस्वी रहती थी।

ऐसे प्रसङ्ग में सेठ लोगों का विचार यहाँ से पास ही १२५ मील दूर अमरकण्टक को, जहाँ नर्मदा का उद्गम है, जाने का हुआ। ज्येष्ठ महीने की कड़ी गर्मी का यह समय था। महाराज श्री मेरी दूकान में सन्ध्या समय विराजमान थे। उनसे हमारे यहाँ के दो लड़कों ने, जो क्रमशः बारह और इक्कीस

वर्ष के थे, हँसी में पूछा कि—'महाराज, सुनने में आता है कि अमरकण्टक एक पहाड़ के शिखर पर है। शिखर पर आठ से दस मील तक पत्थर और झाड़ियों के चढ़ाव-उतार तो हैं ही, उसके ऊपर अन्त में तीन-चार मील की ऐसी कठिन चढ़ाई है कि मजबूत छातीवाला ही चढ़ सकता है। ऐसी बेढङ्गी जगह में अन्न-रहित आपका जीर्ण और पैर के मात्र खड़ाऊँ से चलनेवाला यह शरीर किस प्रकार चढ़ सकेगा ?' इस पर वे खूब हँसे और अपने दोनों हाथ चौड़े कर एक-एक भुजा पर एक-एक को खड़ाकर खूब हिलाया और नाचने लगे। उनकी वह शक्ति देखकर सबके सब अवाक् रह गये।

दूसरे ही दिन हम लोग छः-सात व्यक्तियों ने प्रयाण किया। जो चार मील की विकट चढ़ाई-वाली पहाड़ी थी, वहाँ पहुँचकर घोड़े लोगों की व्यवस्था में सब रुक गए। बस, इतने में तो महाराज श्री गायब ही हो गए। शोध करने से सघन वन में पता लगने की आशा व्यर्थ हुई। अन्त में घोड़ों के ऊपर सामान बँधाकर हाथ में लकड़ी ले टेकते-टेकते तीन घण्टे तक मात्र एक ही पग-डण्डी पर चढ़ते हुए सब लोग थक गए परन्तु जैसे ही ऊपर चढ़कर पहुँचे, तो भूमि पर पग-डण्डी किनारे एक बड़े हरड़ के वृक्ष के मूल पर सिर टिकाकर सोते हुये योगिराजजी के दर्शन हुये। हम-लोग खिलखिला कर हँस पड़े।

नर्मदा उद्गम के पास राम जी की एक पर्ण-कुटी है, जो दिन-रात बाघ-भालू इत्यादि जङ्गली जानवरों के भय के कारण काफी मजबूत बनवाई गई थी। उसी में हम लोग उतरे। दूसरे दिन स्नान-ध्यान से छुट्टी पाकर प्रातः सूर्योदय के समय श्री जी की आज्ञा हुई कि—'यह पहाड़ तो मेरा रमणीय घर है। इसकी लीला देखना हो, तो मेरे पीछे चले आओ।' सब साथ हो लिए। रास्ते का नाम - निशान नहीं, घनघोर वृक्षों से आच्छादित, चारों तरफ ऊँची घास और पत्थर के सिवा और कुछ दीखता न था। चलने के लिए मात्र डेढ़-फुट चौड़ी टेढ़ी-मेढ़ी एक पगडण्डी थी। उस पर वे स्वयं आगे और हम लोग एक लम्बी लाइन में पीछे-पीछे थे। घोर वन में जरा भी पत्ते की खड़खड़ाहट हो, तो छक्के छूट जाते थे। हिंसक पशुओं का भयङ्कर डर था। पूज्यश्री पश्चिम दिशा में जा रहे थे। जब मैंने पूछा कि 'अपने लोग कहाँ जाते हैं ?' तब जवाब में चुपचाप इशारे से बताया कि-'चले आओ।'

एकाध मील चलने के बाद पगडण्डी छोड़ वृक्ष और लताओं से भरी ऊँची जगह पर चढ़े। अहा, प्रभु की कैसी अलौकिक विभूति ! जहाँ प्रति-पल काल-रूपी जानवर फिरते हों, वहाँ एक वृक्ष के नीचे एक छोटी पर्ण-कुटी में एक तपस्वी ऋषि का स्थान था। अन्दर मात्र अग्नि-कुण्ड, दो-चार पुस्तकें, शयन-वल्कलासन। बस, शरीर-निर्वाह का साधन देख प्रणाम कर पूछने पर मालूम हुआ कि आस-पास चार-छः मील तक मनुष्य की बस्ती नहीं है। 'तो शरीर - निर्वाह तीनों भयङ्कर ऋतुओं में कैसे होता है ? और फिर जहाँ कोई मनुष्य आकर भोजन दे जाय, ऐसी स्थिति भी नहीं। धन्य विभु !' जवाब में खूब आनन्द से बतलाया कि—'यही तो प्रभु की रचना है। कभी बिना आहार के नहीं रहता।' विचित्र विभूति के दर्शन कराकर आगे चले।

एक दूसरे पहाड़ पर चढ़े। उसके नीचे के भाग में दूसरी पगडण्डी से उतरे। वहाँ तो जैसे पचास-साठ फुट का कटा हुआ पहाड़ था और नीचे सपाट भूमि में बड़े-बड़े पत्थरों की आड़ में बड़े-बड़े घर जैसी माँदें, जो बाघ के खास निवास-स्थान थे। हम लोगों को वहाँ ले जाकर खड़ा कर दिया और स्वयं एक माँद में प्रवेश कर खूब जोर से 'नर्मदे-हर' की ध्वनि करने लगे। हमारे तो राम ही रम गये। 'प्रभु, कोई सोया हुआ राजा आ जायगा, तो हम सब उसके ग्रास बन जायँगे। यह आप क्या कर रहे हैं !' इस पर हँस-मुख चेहरे से बाहर आकर मेरे मस्तक पर हाथ रखा। कुरु-क्षेत्र में भगवान् ने अर्जुन

को जो उपदेश दिया था, वह देकर सबको शान्त किया और बोले—'तुम लोगों को बतलाना था कि बाघ के आने पर बाघ बाघ रहता है या बकरी।' इत्यादि।

फिर ऊपर चढ़ना हुआ। बेल-बेलियाँ रौंदते, पैर में चोट खाते हुए, वे आगे बढ़ते ही जाते थे। अन्त में पश्चिम में एक बड़ा वृक्ष मिला। इसकी जड़ के चारों तरफ पत्थरों की ऊँची-नीची जमीन चिपकी हुई थी और मात्र पाँच बूँदें पाँच फुट नीचे टपकती थीं। उन्हीं से दो - तीन फुट घेरे का एक गड्ढा होकर भरा था और उसके ऊपर मधु-मक्षिकाओं के झुण्ड घूम-घूमकर रस ले आते-जाते थे।

'प्रभु, यह क्या?' जवाब मिला 'वही लीला जगदम्बा की। सोन-भद्र नाम का जो विशाल नद बहता है, उसका यह उद्गम स्थान है।' अहा, कैसी विचित्रता! नर्मदा तो गाढ़े पानी के समूह से प्रारम्भ हो पूर्व को बहती है और यह सोन-नद सूखे पहाड़ के एक-मात्र पत्थर में से टपकता है! यहाँ पर सबने प्रभु के चरणों की पूजा कर चरणोदक लिया। प्रवाह जरा-जरा बिल भर भूमि में बढ़ता जाता था। उसके साथ-साथ आधा मील चलने पर वह स्वाभाविक प्रवाह १-२-३-४-५ फुट चौड़ा होता गया और एक खाँई में जाकर पन्द्रह-बीस फुट नीचे गिर जल-धारा रूप में शुरू हुआ। वहाँ से धुवाँधार होकर वह पश्चिम को बह निकला। हम लोग ऊपर से देख ही रहे थे कि नीचे २०-३० फुट आगे को झाड़ो में से महाराज श्री को जैसे कोई बुलाता हो, ऐसा भास हुआ। हमारा विचार अब मध्याह्न समय और थके होने के कारण जल-पान कर विश्राम लेने का था। इतने में तो अरे बाप रे बाप! वे स्वयं बन्दर की तरह खाई में उतरने लगे। नीचे उतरने का मार्ग था, जहाँ नीचे थीं वृक्ष की शाखायें, जिन पर भयङ्कर सर्प लिपटे हुये थे और अन्य वन्य पशु रहते थे। देखते ही देखते ८-१२ फुट नीचे उतर पड़े। सभी चिन्ता में पड़े और मैंने तो खतरे की कसम खाकर प्रार्थना की कि 'भैया, बस करो! अधिक लीला देखने की शक्ति हममें नहीं है।' बस, तुरन्त धड़ाधड़ शाखाओं को पकड़ ऊपर चढ़ आये। चाय-पानी कर थोड़ा विश्राम किया और शाम को साढ़े ४-५ बजे उतारे पर आये। बाटी-दाल तैयार होने पर प्रसाद लिया। रामजी की कुटी में सोते हुये सब लोगों को निश्चय हो गया कि जरूर इस महा-पुरुष का पूर्व-कालीन स्थान इस विन्ध्याद्रि में अमरकण्टक में ही रहा होगा।

दूसरे दिन हम सब ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर श्री नर्मदा कुण्ड में स्नान-पूजन कर योगि-राज के साथ पूर्व दिशा में चल पड़े। नर्मदा कुण्ड में पूर्व की ओर एक गौ-मुखी बनाकर प्रवाह चालू करने के लिए एक डेढ़ फुट चौड़ी लीक बनाई गई है, जो चूना सीमेंट पत्थर से बहुत दूर तक सीधी और मजबूत है। उसी रास्ते से सब चले। यह मार्ग पिछले दिन की तरह का विकट नहीं था। साफ और मात्र हरियाली से ढँका हुआ था। चलते-चलते जहाँ कृत्रिम नाली पूरी हुई, वहाँ जल का फैलाव बढ़ा हुआ दिखा। पानी बहुत गहरा दीखने से मैं लीक पर बैठ गया और बगल में एक बीस-पचीस फुट लम्बा बाँस था, उसे दो-चार जनों के साथ बड़ी मुश्किल से प्रवाह में दबाया परन्तु तल का पता नहीं लगा। महाराज श्री से पूछने से मालूम हुआ कि—'माता जी के प्रवाह से पाताल तक गहरी खाँई हो गई है।'

वहाँ से फिर आगे बढ़े। लगभग तीन मील आये होंगे कि सामने घुमाव पर एक विकराल जानवर बैठा हुआ देखकर सबके छक्के छूट गए परन्तु योगिराज तो आनन्द में आकर दौड़ने लगे। 'अरे भाई, खड़े तो रहो।' पर सुने कौन? पैर में खड़ाऊँ रहते हुये भी, वहाँ क्षण भर में पहुँच गए। हम लोगों को इशारा किया कि—'चले आओ।' वहाँ पहुँचे तो क्या देखा कि बाघ का किया हुआ एक बड़े बैल का शिकार वहाँ पड़ा था।

आगे बढ़ने पर कपिल-धारा के पास प्रवाह दस [से पन्द्रह फुट चौड़ा और पहाड़ फोड़कर दस-से बारह फुट नीचे पड़ता था। हमें तो किनारे ही किनारे चलना था। इसीलिए खाँई में उतर कर आगे चले। दो मील चलकर कुल पाँच-छः मील जब आ गए, तब तीस - चालीस फुट चौड़ा और पचीस-तीस फुट नीचे गिरता हुआ प्रपात था। दस-ग्यारह का समय था। हम सब घोर वन में उतरे। जल-प्रपात में सबने स्नान किया। चारों तरफ ऊँचे पहाड़ थे। दक्षिण दिशा का पहाड़ अति ऊँचा था। प्रवाह के किनारे पर नीचे दस फुट लम्बी-चौड़ी एक गुफा थी। उसके खाली होने से हम लोगों ने उसे साफ किया। योगी महाराज की आज्ञा से हम सभी ने वहाँ आसन जमाया।

मुझे उत्तर-मुख बैठने की आज्ञा की। मेरे पीछे दो फुट पर एक छोटी गुहा थी। उसमें से एक छोटा जानवर आ-जा सकता था। महाराज श्री ने आज्ञा की कि 'यह दूध-धारा स्थल है। प्रभु-भजन करने से सहस्र-गुना फल होता है।'

हम छः आदमी थे और सातवें गुरु महाराज। वे बाहर की तरफ आसन लगा ध्यान से बैठे। सबको आज्ञा हुई--'ध्यान लगा प्रभु का स्मरण करो।' परन्तु ऊपर से गिरती हुई जल-धारा की रेल के सौ इञ्जनों जितनी आवाज छाती को हिला कान फोड़ रही थी, दूसरे मेरे पीछे बड़े छिद्र से जानवर का भय था। खैर, मुझे आज्ञा हुई--'पद्मासन लगा सीधे तनकर बैठो। नाभि में से प्राण प्रारम्भ होता है। उसमें प्रणव मिलाकर चालू करो। दृष्टि दोनों नेत्रों के ऊपर भृकुटि के मध्य में रखो।'

बस, दो-तीन मिनट में तो पैर में जैसे झनझनाहट शुरू हुई। शरीर स्तब्ध बनकर बाहर की आवाज बन्द हो गई। प्राण में शेष चार ज्ञानेन्द्रियाँ लय हो गईं। मात्र द्रष्टा की तरह चैतन्यात्मा आनन्द-स्वरूप से रम रहा था। सब कुछ शान्त था, धमाधम की आवाज सुने बिना मन का आनन्द पर-मानन्द-स्वरूप से भर उठा था। वह अनुभव जन्म-जन्मान्तर तक याद रहेगा।

पूरे एक घण्टे के बाद गुरु जी की समाधि टूटी और 'नर्मदे हर! हर हर हर !!' की ध्वनि ने इस शरीर में इन्द्रियों की प्रगति की। पाँच-दस मिनट में शरीर भान में आया। 'जाते तहँ गुरु अङ्क में नहिं रहें ये कंटक स्नेह के'--यह गुरु-वाक्य स्मरण होते ही गद्गद् हो गया और मैं उन दिव्य विभूति का आलिङ्गन कर खिलखिला कर हँस पड़ा। मेरा शरीर पैंतीस वर्ष का, प्रभु का २५-२६ वर्ष का--दोनों ने खूब मग्न होकर आनन्द किया।

वहाँ से लौटकर चार बजे उतार पर आये, गर्मी कड़ी थी। लड्डू-पूड़ी की रसोई तैयार हो रही थी। दूसरी तरफ भाँग घुटकर गोली तैयार थी। वह उन्होंने ली और सबको प्रसाद दिया। इस शरीर को जरा अधिक दिया। उसको गुटकते ही शरीर तो शिव-स्वरूप आसन-युक्त हो परमानन्द में विभोर होने लगा। भाँग खूब चढ़ी। दूसरों को आदत रही होगी। इस शरीर के तो शिर पर घी मलवाया, जल-धारा शुरू कराई परन्तु ध्यान न टूटा। सबने भोजन किया और यह शरीर उसी स्थिति में निद्रा-वश रहा। इस प्रकार आठ दिन अनेक स्थान देखकर रायपुर वापस आये।

यहाँ आकर मैंने ज्येष्ठ पुत्र लालशङ्कर को सब हाल बतलाया। दो-तीन बाद उसने जाकर महा-राज श्री के चरण पकड़ कर प्रार्थना की 'प्रभु, मुझे भी पिता जी जैसा आनन्द अनुभव कराइये।'

बस, उसी रात को सेठ श्री गोपीकिशन जी के तीस फुट लम्बे, पन्द्रह फुट चौड़े बड़े दीवानखाने में उनका सर्व-कुटुम्ब जाकर बैठा। लाल जी को बीच में शतरञ्जी पर चित सुलाकर मुझे दिये हुये प्रणव-

भाव को बतला स्वयं सामने समाधि लगाकर बैठे। फिर क्या था, पाँच मिनट में तो दोनों की सूक्ष्म आत्मायें गगन-विहार करती हुई गङ्गोत्री हिमालय जा पहुँचीं। गङ्गा किनारे दोनों मग्न होते हुये बैठे। इतने में ऊपर बहती धार के सामने लाल जी को धूनी दिखी। प्रभु से प्रार्थना की कि 'वहाँ कोई तपस्वी होगा, दर्शन कर आऊँ।'

उत्तर मिला 'जल्दी हो आओ।' वहाँ पहुँचते ही स्थिति बदल गई। उठकर नमन किसको हो? मन का तो नाश हो गया था। आधी-पौन कला तक बैठा रहा। यहाँ महाराज श्री का ध्यान किया। समय नजदीक आने लगा। लाल जी परमानन्द में मुग्ध थे। गङ्गा-धार जोर से बह रही थी। इशारा करके थक गए। आखिर जरा क्रोध किया। यहाँ हम लोग, जो गुरु के वदन के सामने ताकते बैठे थे, समझ गये। फिर दस मिनट में दोनों शरीर चैतन्यावस्था में आये। लाल जी ने गुरु महाराज को साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सब हाल हम लोगों को बताया। सबको आनन्द हुआ।

इसके बाद एक-दो मास हम लोगों को प्रेमानन्द का लाभ देकर वे स्वयं बनारस की ओर प्रयाण कर गए और उसके बाद मेरे ऊपर पूर्ण दया बरसाकर दो-चार वर्षों तक ज्ञान-योग, उपनिषद् और वेदान्त की भावना-मय कविता में सने हुये ४० पत्रों से सत्सङ्ग प्रदान किया।

लगभग १९-२०-२२ में पधारे। तब शहर के बाहर जैन देरासर की धर्मशाला में बँगले में उतरे क्योंकि उस समय प्रभु की वृत्ति एकान्त-वास की थी। हम लोग रोज वचनामृत सुनने जाते थे। श्रावण का महीना था। मेरी इच्छा थी कि आज मैं अमरकण्टक दूध-धारा में मिले हुये योगानन्द को प्राप्त करने के लिये रात्रि को चरण-सेवा में रहूँ। रात को 'ठीक दस बजे का समय हुआ' ऐसा वे स्वयं बोले। तुरन्त ही बारह घण्टे बोले। मुझे आज्ञा हुई 'तुम अपने घर जाओ।'

कारण यह था कि मुझे किसी ने शङ्का में डाला था कि महाराज श्री ने प्रत्यक्ष में बैठकर जो समाधि कराई, वह मेस्मेरिज्म था। शायद इस शङ्का के निवारणार्थ उन्होंने घर जाने की आज्ञा की हो। 'घर जा तुरन्त हाथ-पैर धो क्रिया में बैठ जाना। ठीक साढ़े दस बजे मैं वायु-वेषण में जाऊँगा, तो तुमको साथ लेता चलूँगा, सिर्फ एक घण्टे के लिये।'

हम लोग घर आये। साढ़े दस बजे थे। मैं तुरन्त बैठ गया। तुरन्त ही पैर से झनझनाहट शुरू हुई। सब लुप्त हो गया। 'नाहं न त्वं, न इह लोकं, आनन्दं आनन्दं'—अमरकण्टक जैसा ही अनुभव होने लगा। ठीक साढ़े ग्यारह बजे जरा होश आने की शुरुआत हुई। पानी बरसता था। पैर अकड़ गए थे। मालिश करने से जरा गर्मी आकर स्वस्थ हुआ। नीचे दूकान में घड़ी थी। मुझे ऐसा लगता था कि दो-तीन बजे होंगे परन्तु नीचे जाकर देखा, तो ग्यारह बजकर पच्चीस मिनट। क्या आनन्द था, कैसे वर्णन करूँ।

फिर प्रयाण कर गये। रायपुर को छोड़ दिया। पन्द्रह-बीस वर्ष बाद २००९ के मार्गशीर्ष मास में बड़ी कठिनाई से हमारी प्रार्थना को स्वीकार कर पधारे थे। एक मास रहकर प्रयाण कर गये। इस समय शरीर लगभग ६५ वर्ष का होते हुये भी और किसी प्रकार के आहार बिना भी वही तेजोमय सुन्दर-मूर्ति, छः घण्टे प्राणायाम में रह, रात के बारह बजे तक उपदेशामृत चखाती थी।

ओ जगदम्ब! इस तेरे दिव्य स्वरूप प्रिय-मूर्ति के सुन्दर चरणों में मेरा मन सदा नमन कर शान्ति को प्राप्त करे और प्राण-प्रयाण समय इस शरीर के मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार सब प्राण में लय हों तथा यह प्राण उस दिव्य महा-प्राण-ज्योति में विसर्जित होकर तेरी माया-लीला में मैं न फँसूं, यही वरदान देना। मां ॐ शान्तिः। ॐ ॐ ॐ ॐ।

लीला-मय बाबाश्री की लीलायें

श्री वच्छराज नत्थाणी

('चण्डी' वर्ष १३ : संम्वत् २०११—सन् १९५४ : सं० ३)

सम्वत् १९६८ की बात है। रायपुर में प्लेग होने के कारण हम लोगों का निवास-स्थान जङ्गल में था। हमारे साथ श्री बन्शीलाल जी भी थे, जिन्हें 'आनन्द-मूर्ति' भी कहते हैं। उस समय मेरी अवस्था १४ साल की थी। मैं बचपन से ही शिव की उपासना में प्रसन्नता अनुभव करता था।

एक दिन श्री आनन्द-मूर्ति मुझे पुकार कर क्या कहते हैं कि 'तुम्हारे स्तवन को सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम्हें मैं कुछ और आगे बताना चाहता हूँ किन्तु उसके पहिले मैं यह निर्णय कर लूँ कि क्या मैं ही तुम्हारा गुरु हूँ। आज रात्रि में १२ बजे मेरे पास आना।'

यह सुनकर मुझे एक अनोखी ही प्रसन्नता हुई। मैं बारह बजे रात्रि में ठीक समय पर पहुँच गया। उन्होंने आज्ञा दी कि 'आँख मूँदकर आसन लगाकर बैठ जाओ और बताओ, तुम्हें क्या दिखाई दे रहा है?'

मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मैं एक ऐसे पुरुष को देख रहा हूँ, जिसे मैंने कभी नहीं देखा था। श्वेत वर्ण, सुन्दर आकृति, घुँघराले बाल, कानों में लौंग, सुन्दर वस्त्र-भूषित—यही मैंने उनसे बताया। उसी समय श्री आनन्द-मूर्ति ने कहा कि 'बस, तुम अपने गुरु का दर्शन स्वयं पा रहे हो। वे ही तुम्हारे गुरु हैं और बड़ी प्रसन्नता इस बात की है कि जो गुरु तुम्हें दर्शन दे रहे हैं, वे ही मेरे भी गुरु हैं।'

मैंने प्रश्न किया कि—'अब उनका दर्शन फिर कब होगा?' इस पर मुझे उत्तर मिला कि 'यह तो गुरु की कृपा पर ही निर्भर है। जब चाहें, दर्शन दे सकते हैं।'

इस उत्तर से मुझे सन्तोष नहीं हुआ। मैंने दुबारा प्रश्न किया कि 'क्या ८-१० दिन में या इससे निकट के समय में मुझे गुरु-दर्शन प्राप्त हो सकेगा।'

श्री आनन्द-मूर्ति बोले कि 'उनका क्या ठिकाना! फक्कड़ बाबा ठहरे, चाहे अभी आ जायँ या खोजते ही रहो। उनकी महिमा निराली है।'

श्री आनन्द-मूर्ति के इस उत्तर से मुझे बड़ी चिन्ता हुई और मैंने कहा कि 'मुझे कोई ऐसा मन्त्र या उपाय बताइये, जिससे मैं शीघ्र गुरु का दर्शन प्राप्त कर सकूँ।'

इस पर उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ कहा कि 'तुम्हारी श्रद्धा देखकर मुझे बड़ी खुशी है और मैं तुम्हें वही चीज बता रहा हूँ, जो मुझे गुरुदेव से प्राप्त हुई है और उसका जप, जब चाहे, तभी कर सकते हो। माला आदि किसी भी आडम्बर की आवश्यकता नहीं होगी।'

बड़े आश्चर्य की बात हुई कि दूसरे ही दिन प्रातःकाल बिना किसी पूर्व-सूचना के एक किराये के इक्के में बैठे हुये श्री बालकिशन नत्थाणी का कैम्प पूछते हुये मेरे सामने श्री गुरुदेव पहुँच गए। उस समय श्री आनन्दमूर्ति भोजन कर चुके थे और कचहरी जाने ही वाले थे। उसी समय बाबा जी आ पहुँचे और इक्के से उतरने के पहिले ही उन्होंने कहा कि 'मेरे पेट में अत्यधिक पीड़ा है। इसका उपचार शीघ्र हीकरो।'

डाक्टर बुलाये गए, भरसक प्रयत्न किया गया किन्तु तीन दिन तक उन्हें तनिक भी लाभ न हो सका। चौथे दिन आश्चर्य के साथ उनके मुँह से यह सुना गया कि 'अब रायपुर का प्लेग बिलकुल ठीक हो गया। सब लोग अपने घर चलो।'

बाबा श्री मेरे बड़े भाई श्री गोकुलदास नत्थाणी के घर ठहरे। पेट की व्यथा उनकी वैसी ही थी। इतने में गोकुलदास की वृद्धा माता आयीं, जो उन्हें पुत्र-वत् चाहती थीं और बाबाश्री भी उन्हें माता की तरह मानते थे। माता जी ने बाबाश्री से कहा कि 'मैं तुम्हारा बहुत खेल देख चुकी। अब शान्ति-पूर्वक प्राणायाम करो।'

माता जी ने बलपूर्वक उन्हें आसन-बद्ध कराया और प्राणायाम शुरू करने को कहा। दस मिनट भी प्राणायाम किये न हुए होंगे कि बाबाश्री ने कहा कि 'मैं अब बिलकुल अच्छा हो गया हूँ। इस उपचार को मैं भूल बैठा था।'

इस पर माता जी को बड़ा आनन्द हुआ और ममता से भरकर बाबाश्री से कहा कि 'कई दिन से आप पीड़ा के कारण उपवास कर रहे हैं। अब पीड़ा शान्त हो गई है, कुछ भोजन कर लीजिए।'

उनकी आज्ञा से बाबाश्री ने भोजन-गृह में जाकर जितना माता जी ने स्नेहपूर्वक परोसा, वह सब खाया-पिया। इसके बाद उन्होंने मुझे साथ लिया और आनन्द-मूर्ति के घर की तरफ चले।

फिर वे बराबर प्रसन्न बने रहे। प्रतिदिन जिज्ञासुओं को योग-मार्ग, उपनिषद्, वेदान्त आदि का प्रवचन-द्वारा लाभ देते रहे। विशेष बात यह थी कि रात्रि में वे सोते नहीं थे। जिस समय बाबाश्री का पेट-दर्द अच्छा हुआ और इसके पहिले जब बाबाश्री ने यह कहा कि 'रायपुर का प्लेग अब अच्छा हो गया, अपने-अपने घर चलो', तब यह बात जानकर माता जी से न रहा गया, उनके मुँह से ये शब्द निकल ही पड़े कि 'वाह रे पुत्र, तूने, शहर के सारे कष्ट योग-विद्या से स्वयं भुगत लिए और रायपुर को महा-मारी की व्याधि से बचा लिया !'

जब हम सब लोगों ने यह प्रसङ्ग जाना और जिस-जिसने सुना, सभी ने बड़ा आश्चर्य किया। बाबाश्री के दर्शनों को जनता उमड़ पड़ी। यह उनके सम्बन्ध का मेरा पहला चमत्कारी अनुभव हुआ।

वैशाख का महीना था। नित्य-प्रति सत्सङ्ग के लिए मैं श्री आनन्द-मूर्ति के घर जाया करता था। एक दिन आनन्द-मूर्ति मुझसे कहने लगे कि 'अब मेरे जीवन के पन्द्रह दिन और शेष हैं।'

मैंने आश्चर्य-चकित होकर कहा कि 'आपका स्वास्थ्य आदि तो सब ठीक है, आप कैसी बात कर रहे हैं ?'

इस पर उन्होंने बड़ी आर्द्रता से कहा कि 'नहीं वत्स, मैं बिलकुल ठीक कह रहा हूँ।'

यह सुनकर मेरे हृदय को बड़ी चोट पहुँची। मैं चुपचाप अपने घर रात्रि में आया। श्रीआनन्द-मूर्ति बाबाश्री के प्रथम शिष्य थे। उनके ऊपर बाबाश्री की अत्यन्त कृपा थी। उन्हें बाबाश्री ने अनेक योगदान दिये थे। स्वयं श्री आनन्दमूर्ति के भी कार्य आश्चर्य-जनक होते थे। इस कारण मुझे उनके वचनों को मानना पड़ा।

रात्रि में लगभग ४ बजे मैं नौकर द्वारा जगाया गया। उसने बड़ी घबराहट से कहा कि 'बाबा जी दरवाजे पर इक्के में बैठे हैं, उतरते नहीं हैं। आपको बुला रहे हैं।' मैं झटपट उठ बैठा और दरवाजे सड़क पर पहुँचा। बाबाश्री ताँगे पर बैठे थे। उन्होंने मुझे देखते ही इशारे से पीने को पानी माँगा। मैंने शीघ्र ही जल का ग्लास उन्हें समर्पित किया। दो घूँट जल पीने के बाद बोले कि 'मैं इलाहाबाद के पास एक सघन वन में पहाड़ी की कन्दरा में पन्द्रह दिन से बिना अन्न-जल के पड़ा हुआ था। वहीं मुझे आभास हुआ कि आनन्द-मूर्ति का जीवन सङ्कट में है। मैं तत्काल यहाँ के लिए प्रस्थान कर आ पहुँचा हूँ।'

यह सुनकर मैंने बाबाश्री से कहा कि 'रात्रि में १० बजे मैं उनसे मिलकर आया हूँ। वे सब प्रकार से ठीक हैं किन्तु वे ऐसा कहते थे कि मेरी मृत्यु अब बहुत ही नजदीक है।'

इस पर बाबाश्री ने कहा कि 'जब तुम रात्रि में दस बजे उनसे मिलकर अपने घर आए, उसके बाद उनके सर्वाङ्ग में लकवा (पक्षाघात) हो गया है। चलो, मेरे साथ ताँगे में बैठो।'

बाबाश्री के साथ मैं उनके घर पहुँचा। देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि जिनसे मिलकर मैं रात में गया था और उन्हें ठीक समझ रहा था, वे ही भूमि पर निर्जीव समान पड़े हैं, हाथ-पैर हिला भी नहीं सकते। याने जैसा पूज्यश्री ने योग-माया से जानकर मुझे बताया था, वही आँखों देखकर आश्चर्य हुआ। उनकी पत्नी उनके समीप बैठी थीं। उनके कमरे में पहुँचते ही श्री आनन्दमूर्ति की पत्नी श्रीमती गङ्गाबाई पूज्यश्री के चरणों में लिपट गईं और सिर धुन-धुनकर विलाप करने लगीं। पूज्यश्री ने ढाढ़स बँधाया और कहा, 'अरे, मैं आ गया हूँ, क्यों रोती है? एक ग्लास जल ले आ। ये प्यासे हैं।'

श्री आनन्दमूर्ति ने बड़ा प्रयत्न किया कि मैं पूज्यश्री को हाथ जोड़ कर प्रणाम करूँ किन्तु वे असमर्थ ही रहे; सिर्फ पलकों ही द्वारा नमन कर सके। पूज्यश्री के हाथ में जल का गिलास आने पर उनकी पत्नी से कहा कि 'ले, उन्हें ३-४ चम्मच जल पिला और मैं अब जा रहा हूँ। सुबह डाक्टर को बुलाकर उपचार चालू करा देना। दस-पन्द्रह दिन में ये बिलकुल ठीक होकर अपना काम-धाम करने लगेंगे और और मैं जाता हूँ, गोपीकिशन नत्थाणी के यहाँ ठहरूँगा। तुम्हारे घर रोज आता रहूँगा।'

यह सब बातें कर पूज्यश्री उसी टाँगे में बैठकर मुझे साथ ले गोपीकिशन जी के घर की ओर चले। रास्ते में पूज्यश्री ने मुझसे कहा कि 'आनन्द-मूर्ति को अभी जीना चाहिए। इससे संसार का भला होगा। मेरा शरीर अभी थका है, बिना अन्न-जल का है। इसलिए यह बड़ा पुण्य कार्य है, इस कष्ट को बच्छराज स्वयं तुम थोड़ा सा भोग लो।'

मैंने तत्काल स्वीकार कर लिया। पूज्यश्री गोपीकिशन जी के घर उतरे और बाद में मैं अपने घर चला आया। घर आने पर मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मुझे ज्वर चढ़ रहा है। देखते ही देखते ज्वर काफी बढ़ गया। उस ज्वर की हालत में भी मैं पूज्यश्री के प्रवचन-दर्शनार्थ दरबार में जाया करता था। इसी प्रकार दो दिन बीत गए। तीसरे दिन मुझे यह जान पड़ने लगा कि मेरे शरीर का अब अन्त हो जायगा। ज्वर १०५––गर्दन में काफी दर्द था। पूज्यश्री के वचनों का बल मेरी आत्मा में था। इस कारण पूज्यश्री के समक्ष अपनी निर्बलता व कष्ट को मैंने प्रकट नहीं होने दिया किन्तु जब मेरी सहन-शक्ति के बाहर कष्ट होने लगा, तब रात्रि में लगभग २ बजे मैंने अपनी माता जी को बुलाकर कहा कि 'अभी पूज्यश्री आनन्दमूर्ति के घर से वापस लौटेंगे। उनकी खड़ाऊँ की आवाज का ध्यान रखना। जैसे ही अपने घर के सामने आवें, उनके चरण पकड़कर प्रार्थना कर उन्हें घर ले आना।'

माँ प्रयत्नशील रहीं और पूज्यश्री को मेरे कमरे में ले आईं। आते ही साथ उन्होंने कहा कि 'क्या है रे बच्छराज?' मैंने कहा कि 'बाबा, मेरी गर्दन टूटी जा रही है और कोई कष्ट नहीं।'

इतना सुनते ही उन्होंने मेरी गर्दन पर अपना हाथ रखा। आश्चर्य है कि उनके हाथ रखते ही मुझे जो असह्य पीड़ा गरदन में हो रही थी, एकदम ठीक हो गई। उसके बाद पूज्यश्री ने जल से हाथ धोया और मुझसे कहा कि 'सबेरे मेरे पास आना।'

ऐसा कहकर वे चले गए। उसके बाद मुझे शौच की शङ्का हुई, पेट मेरा बिलकुल स्वच्छ हो गया। ज्वर भी १०५ से घटकर ९९ हो गया।

सबेरे ७ बजे मैं पूज्यश्री के दर्शन को पहुँचा। अपने जीवन भर में मैंने पहिली बार उनकी आँखों में जल भरा हुआ देखा। मैंने उत्तेजित होकर व घबड़ाकर कहा कि—'अरे बाबा, अरे बाबा, यह आपको क्या हो गया!' उसी वक्त उन्होंने कहा कि 'चलो, बन्शीलाल के घर।' मैं पूरे कपड़े भी नहीं पहिने था। ज्वर के कारण बिलकुल अशक्त हो गया था। पैदल ही पूज्यश्री ने बन्शीलाल जी के घर जाना निश्चय किया। उनके घर पहुँचे। वहाँ देखता हूँ कि बन्शीलाल जी अपने नित्य-कर्मों व पूजा-पाठ से निवृत्त हो आनन्द से बैठे हैं। आते ही उन्होंने पूज्यश्री को प्रणाम किया और पूज्यश्री को आसन पर बैठाया। तब पूज्यश्री ने पञ्च-पात्र में जल लाने को कहा। जल आया। अपने सामने ही बन्शीलाल को बैठाकर अपने हाथ में जल लेकर बन्शीलाल से कहा कि—'लो, इसे ग्रहण करो।' बन्शीलाल ने वीर भाव से पूछा कि—'आप यह क्या दे रहे हैं?' पूज्यश्री ने कहा कि—'ले लो। हमारी इच्छा के विरुद्ध तुम कुछ भी नहीं कर सकते।' पूज्यश्री की आज्ञा को मानना ही पड़ा और बन्शीलाल जी ने रोते हुए उसे ग्रहण किया।

इसके बाद पूज्यश्री मुझे साथ लेकर भगवान् दत्तात्रेय के मन्दिर गये और वहाँ मुझसे कहा कि 'बालकिशन नत्थाणी व गोपीकिशन नत्थाणी से जाकर कह दो, आज मेरे खाने-पीने की व्यवस्था न करें। मैं दिन भर इसी मन्दिर में समाधिस्थ रहूँगा।' मुझे वापस जाने की आज्ञा मिली और मुझसे पूज्यश्री ने यह कहा कि—'जिस रास्ते से मेरे साथ आये हो, उसी रास्ते से बन्शीलाल जी के घर न जाना। दूसरे रास्ते से जाना।' यह बात जानकर मुझे शङ्का हुई और मैं दूसरे रास्ते होकर बन्शीलाल जी के घर पहुँचा और जो-जो बातें हुई थीं, सब उनसे कहा और उनसे पूछा कि—'आपको पूज्यश्री ने क्या दिया, जिसे आप लेने में आना-कानी कर रहे थे?' तब बन्शीलाल जी ने मुझे बताया कि 'पूज्यश्री ने मुझे आयुष्य-दान दिया है।'

बन्शीलाल जी को यह जान कर चिन्ता हुई कि पूज्यश्री ने दत्तात्रेय के मन्दिर में क्यों समाधि लगाई है या उसी रास्ते से जाने के लिये बच्छराज को क्यों रोका? इसमें कोई रहस्य है। यह सोचकर बन्शीलाल जी ने एक पत्र श्री बालकिशन जी व श्री गोपीकिशन जी को लिखा कि—'इस समय साहस करो और दत्तात्रेय के मन्दिर शीघ्र ही जाओ और पूज्यश्री को जैसे भी बने, घर ले आओ, समाधिस्थ न होने दो।' सब लोग वहाँ पहुँचे और उन्हें समाधिस्थ देखा। इन लोगों ने आव देखा न ताव, पूज्यश्री को वैसे ही दोनों जनों ने उठा लिया और टांगे में बैठाने ले चले। पूज्यश्री की बड़ी क्रोध-मुद्रा हुई किन्तु गोपीकिशन को देख कर वे हँस पड़े। उन्होंने कहा, 'बन्शीलाल ने निरर्थक सन्देह किया कि मैं देहत्याग कर दूंगा। खैर चलो, घर ही चलें।'

पूज्यश्री घर आ गए और पूर्व-वत् वचन, प्रवचन, दर्शन आदि देते रहे तथा दीन-दुखियों, रोगियों की आश्चर्य-जनक सहायता करते रहे। कुछ दिनों के बाद वापस चले गये।

पूज्यश्री का चैत्र में नवरात्र के अनुष्ठान का निश्चय तथा प्रतिपदा के दिन ही रात्रि में मकान से नीचे सड़क पर पत्थर की चट्टान पर आकर गिर जाना, हाथ और जाँघ की हड्डी टूट जाना, अस्पताल में भरती होना, सिविल-सर्जन मेजर कर्नल ग्रीसउड के आग्रह पर अस्पताल में ही बिस्तर पर प्राणायाम का चमत्कार दिखाना, पन्द्रह मिनट तक हृदय की गति बन्द रखना, तमाम डाक्टरों का परीक्षण, यह सब देखकर कर्नल व सारे अस्पताल का चकित होना। उन पर डाक्टर की इतनी श्रद्धा व

भक्ति हुई कि रात-दिन उनकी सेवा में संलग्न रहने लगे तथा अच्छे होने पर अपने घर का कई दिन मेहमान बनाया।

असिस्टेण्ट सर्जन पं० रामप्रसाद पाण्डेय भी बहुत ही आकृष्ट हुये और उनके आग्रह पर पूज्य-श्री कई दिन उनके मेहमान रहे। इन डाक्टर रामप्रसाद पाण्डेय के दो पत्नियाँ थीं किन्तु बाल-बच्चे किसी को भी न थे। उमर लगभग ४४-४५ की थी। दोनों पत्नियों ने पूज्यश्री से कहा कि 'हमें संतान नहीं है, जिससे हम लोग बड़े दुखी हैं।' पूज्य श्री ने कहा कि—'देखो।' ऐसा कह उनके बँगले से चुप-चाप चले आये। पूज्यश्री यहाँ से फिर नासिक चले गये और वहाँ कर्नल राणा के मेहमान रहे। इसके कुछ दिन यथा-समय बाद दोनों स्त्रियाँ गर्भ-वती हुईं और पुत्र-वती हुईं। दोनों के लड़के ही हुए, जिनके लड़के-लड़कियाँ आज भी मौजूद हैं।

बालकिशन नत्थाणी के ज्येष्ठ पुत्र की प्रथम पत्नी ने एक दिन पूज्यश्री से यह प्रश्न किया कि 'पूज्यश्री मैं कब मरूँगी?' उन्होंने योग-माया से जानकर तत्काल उत्तर दिया कि 'आज से ठीक ६ मास बाद तुम्हारा प्राणांत होगा।' यह बात अक्षरशः सत्य निकली। इसके बाद यह हाल हुआ कि दुबारा पूज्यश्री जब रायपुर आये, तो जनता को भीड़ यही पूछना चाहती थी कि 'पूज्यश्री, मेरी भी मृत्यु का दिन बताइये।' जब यह स्थिति उत्पन्न हो गई, तब पूज्यश्री ने यह बताना ही बन्द कर दिया।

गोविन्दलाल जी की दूसरी शादी हुई। उनकी यह पत्नी श्वेत कुष्ट से पीड़ित थी। वह अपना इलाज व कब अच्छी होऊँगी, पूछने गई। उसे उत्तर मिला कि 'रोग अच्छा होने के पहिले तुम्हीं चली जाओगी। रोग की चिंता न करो।' यह भी घटना अक्षरशः सत्य उतरी।

ऐसी ही घटनाएँ नित्य-प्रति हुआ करती थीं, जिनमें से दो-एक ऊपर लिखी हैं। पूज्यश्री की लीलाओं का वर्णन मेरी लेखनी-शक्ति के बाहर की बात है। वे तो लीलामय थे। उनकी बातें यदि मैं केवल रायपुर की ही लिखूँ, तो भी नहीं लिख सकता। फिर तो वे विश्व के पूज्य थे। मैं अपने सम्बन्ध की एक गुप्त घटना भी यहाँ लिखता हूँ। यद्यपि इसे मुझे लिखना नहीं चाहिये, फिर भी अपने को रोक नहीं पाता हूँ। गुरुदेव की पुण्य स्मृति में उसे यहाँ प्रकाश में ला रहा हूँ।

मेरी जब उम्र २० साल की थी, मेरे एक कन्या हुई। मैंने पूज्यश्री से कहा कि 'महाराज जी, कन्या-रत्न प्राप्त हुआ है।' पूज्यश्री ने सुनकर कहा कि 'यह तुम्हारी भौजाई ही है (अर्थात् गोविन्द-लाल जी की प्रथम स्त्री)। मृत्यु के समय यह अधिक शोकातुर रही। इस कारण वह तुम्हारे ही कुल में कन्या होकर उत्पन्न हुयी।' इसके साथ ही उसी समय उन्होंने यह भी कहा कि—'तुम्हारा एक जो गुज-राती मित्र था, वह अब संसार में नहीं है, वही तुम्हें पुत्र-रूप में यथा-समय प्राप्त होगा।' इसके दो साल बाद मुझे पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ।

तीन साल बाद बाबा फिर आए और उन्होंने बिना पूछे ही यह कहा कि—'अरे बच्छराज, तेरे यहाँ तो अब कोई राजा का लड़का आ रहा है।' इसके बाद दूसरा लड़का पैदा हुआ। इसके बादजब कि यह दूसरा बच्चा ५ मास का था, पूज्यश्री फिर आए और उन्होंने अपने आप जैसे कोई आदमी दीवाल से बातें करे, उसी मुद्रा में उन्होंने कहा कि—'हमें लम्बी गिरस्ती नहीं चाहिए। यह सब जन्जाल है। आत्मा की उन्नति इस प्रकार नहीं हो सकती। जाओ, मशीन बिगड़ जाये।'

पूज्यश्री चले गए। उस समय हम यह रहस्य न समझ पाए किन्तु बाद में बात सामने आई कि मेरी पत्नी का गर्भाशय गर्भ-धारण के योग्य न रह गया। बड़े-बड़े उपचार हुए पर वह बिगड़ता ही गया

और प्राणों पर आ बनी। ईश्वर तथा गुरु की महान् दया से उसके जीवन की रक्षा हुई। मां के स्वास्थ्य की खराबी के कारण मेरे दूसरे बच्चे की भी हालत चिन्ता-जनक हो गई। गुरु की महान् कृपा से ये दोनों प्राणी बिलकुल अच्छे हो गए। तब हमें इसका ज्ञान हुआ कि पूज्यश्री ने किस मशीन को बिगड़ने को कहा था। उसके बाद वैद्य-डाक्टरों ने जवाब दे दिया कि अब इसके यावज्जीवन गर्भ-धारण न हो सकेगा। किन्तु आश्चर्य! मेरी जो प्रथम कन्या थी, वह प्रसव-काल में ही शान्त हो गई थी। मुझसे एक बार पूज्यश्री ने यह कहा था कि—'हमारे जितने भी शिष्य हैं, उन्हें एक कन्या-दान अवश्य करना चाहिए।' इस कन्या का दान मेरे पूज्य पिता जी ने किया था। मुझे अब यह चिन्ता हुई कि मेरे और कन्या होती, तो मैं भी कन्या-दान कर लेता। यह इच्छा लेकर मैंने मन ही मन गुरु-देव से प्रार्थना की।

पूज्यश्री का मुझे उसी रात्रि में दर्शन हुआ और पूज्यश्री ने कहा कि 'एवमस्तु! कन्या-रत्न तुम्हें प्राप्त होगा।' जब स्त्री गर्भ-वती हुई, तब उसने मुझसे कहा कि—'यह कैसे हो गया! आपने अवश्य ही गुरु-देव की कृपा का लाभ उठाया है किन्तु इसमें मुझे मृत्यु-समान कष्ट हो सकता है। इससे मुझे बचा लेने की भी प्रार्थना पूज्यश्री से करके वह उपाय जान लो।' पूज्यश्री से मैंने मन ही मन प्रार्थना की और वह स्वीकार होकर साकार हो गई। बड़े आनन्द से प्रसव हुआ और दिन प्रति-दिन हमारे यहाँ धन-जन की वृद्धि होती रही और हो रही है। यह सब गुरुदेव के ही प्रताप से है।

इसके बाद रायपुर में एक और घटना हुई। मैं उस समय बम्बई में था। चलते समय पूज्यश्री के समीप प्रणाम के हेतु उपस्थित हुआ। उस समय पूज्यश्री ने हवा से बातें करना शुरू किया—'बड़ा चञ्चल है। एक यन्त्र बनाकर देना था। अच्छा जाओ।' मैं प्रणाम कर रायपुर आ गया किन्तु माथे में पूज्यश्री के शब्द चक्कर काटते ही रहे। कुछ दिनों के बाद यह घटना हुई कि बालकिशन जी के नए मकान की प्रतिष्ठा होनेवाली थी। उस समय मेरा द्वितीय पुत्र दो वर्ष का था। वह अकेले ही बीच सड़क में चला गया। उसी समय अचानक बालकिशनजी के घरके सामने उसके ऊपर से एक मोटर निकल गई। मोटर रोक ली गई। मोटर बड़े प्रख्यात पुरुष की थी। उन्हें भी बड़ा दुःख हुआ। उस मरणासन्न बच्चे को मोटर में रखकर अस्पताल में ले चले। इस समय लगभग दो बजा था। मुझे यह समाचार मिला कि—'तुम्हारा बच्चा कुचल गया, जीने की आशा प्रभु के हाथ है।'

मैंने इसे ईश्वरेच्छा जाना और धैर्य रखा। इतने ही में अस्पताल से मेरा भाई आया उसने कहा कि—'बच्चे को कोई घातक चोट नहीं लगी है। सिर्फ मोटर के नीचे आ जाने से आतङ्क के कारण बेहोश हो गया। उसे कोई चोट भी नहीं है।' यह सुनकर ईश्वर को मैंने धन्यवाद दिया और पूज्यश्री के ही आशीर्वाद के कारण मेरा बच्चा मौत के मुँह से जीता-जागता हँसता-खेलता घर आ गया। यह सब पूज्यश्री की ही कृपा थी। तब मुझे यह ज्ञान हुआ कि जब मैं पूज्यश्री से विदा होते समय प्रणाम के हेतु पहुँचा था, तब पूज्यश्री ने जो बातें हवा में कही थीं, वे सारी सत्य थीं। उन्हीं के प्रताप से मेरी व मेरे बच्चे की रक्षा हुई तथा अब भी उनका आशीर्वाद मुझे सदैव प्राप्त है। मेरी जगदीश्वर से प्रार्थना कि मुझमें सदैव ऐसी शक्ति तथा विचार बनाये रहें कि मैं पूज्यश्री के चरणों की भक्ति में निरन्तर रत रहूँ। यही मेरी प्रार्थना है।

नर से नारायण

पण्डित मधुसूदन मिश्र

यूं तो दुनिया के समुन्दर में कमी होती नहीं,
लाखों मोती हैं मगर इस आब का मोती नहीं ।

पूज्य बाबा जी, आप विश्व-कल्याण हेतु इतना महान् त्याग कर डालियेगा, मुझे स्वप्न में भी विश्वास न था ! हम लोगों के पथ-प्रदर्शन के लिए आपकी परम आवश्यकता थी, परन्तु विश्व के पुजारी आप वासुदेव होकर ही विश्व-कल्याण की ठान चुके थे। क्या इसीलिये ग्राप तत्व तत्व को समर्पित कर नर से नारायण हो गये ?

प्रथम दर्शन

श्रीमान् अम्बाराम जी की कृपा से सन् ४७ में प्रथम दर्शन मात्र से ही आपने ग्रपना लिया था। उस समय तो ग्रापकी केवल ग्रमृत-वर्षा ही का आनन्द मिला था। इसके बाद सन् ५१ में एक दिन चर्चा-ही-चर्चा में बाबा जी के श्रीचरण-दर्शन का विवरण सरस्वती-पुत्र महा-मान्य परम पूज्य स्व-नाम-धन्य पं० देवीदत्त जी शुक्ल से कहा। वे हठात् बोल उठे—श्रीमान् जी, तुम पारस तक पहुँच कर लोहा ही रहे !

हमने कहा—दर्शन मात्र प्राप्त हुआ श्रीमान् ग्रम्बाराम जी नागर की विशेष कृपा से परन्तु उपदेश न पा सका।

शुक्ल जी ने चट आदेश दिया—अबकी बम्बई हमसे मिलकर जाना।

हमने कहा—आपकी कृपा से ही उपदेश मिल सकेगा।

हमको इससे पहले तक यह न मालूम था कि बाबा जी और बप्पा जी इतने निकट हैं।

सन् ५२ के अक्टूबर में जब हम बम्बई जा रहे थे, तब बप्पा जी के दर्शनार्थ तथा आज्ञा-पालन हेतु प्रयाग उतरा ग्रौर दर्शन किये। स्वतः ही प्रेम से मधुर वाणी द्वारा अमृत-वर्षा करते हुये बोले—बम्बई जा रहे हो ?

हमने कहा—हाँ !

चट रमादत्त जी को कागज - कलम दावत-सहित ग्राने की ग्राज्ञा दी। रमादत्त जी हाजिरी नोट कराकर आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। आवाज हुई—आये ?

'हाँ।'

फिर क्या था। तत्क्षण ही आपने श्री कन्हैया-लाल जी के नाम पत्र लिखाकर हमको दिया और बोले—ग्रबकी आप बाबा जी का प्रसाद पा सकेंगे।

मैंने कहा—आपकी कृपा।

पत्र लेकर हम बम्बई चल दिये। बम्बई पहुँच-कर हमने पत्र पं० अम्बाराम जी नागर को दिया ग्रौर कहा—अब ग्राप व्यवस्था कीजिये।

ग्रम्बाराम जी हमें अधिक प्रेम करते हैं। बोले—ग्रब आपको दर्शन और आशीर्वाद दोनों ही मिलेंगे।

हम फूले न समाते थे, ऐसा जब भक्त लोग कहने लगे। 'राम ते ग्रधिक राम कर दासू' वाली कहावत याद करके हम तो वगैर दर्शन ही के मस्त हो गये ग्रौर ग्रब बप्पा जी का भी प्रेम बाबा जी के प्रति झलकने लगा मेरे हृदय पर। अबकी हम पं०

अम्बाराम जी के यहाँ ही ठहरे थे। २० अक्टूबर ५२ को हम बैठे थे। प्रातः १० बजकर ३० मिनट पर अम्बाराम आकर बोले—चलें बाबा जी के दर्शनों के लिये।

चल दिये वरदान-सिद्धि-हेतु। करीब ११ बजे दोनों दादर से कैडलरोड बँगले पर पहुँचे। अम्बाराम जी ने पत्र कन्हैयालाल जी को दिया। कन्हैयालाल जी कुत्ते की किलोनी साफ कर रहे थे। कुत्ता इनके सामने मस्ती से इस प्रकार पड़ा था, जैसे पाप धुलवा रहा हो। खैर, पत्र देखकर बाबा जी की आज्ञा लेकर तरला बहन हम दोनों को बाबा जी के कमरे तक छोड़ चली गईं। बाबा जी, मालूम होता था, हम लोगों के स्वागत के लिए ही ग्रानन्द-पूर्वक बैठे हों। हम लोग जाकर श्री चरण-वन्दना के बाद बैठ गये। बाबा जी हम लोगों के बैठने के बाद ॐ नाद करके बाहर चल दिये ग्रौर हम लोग उस नाद में ग्रपने को डुबा बैठे। पता ही नहीं, कहाँ हैं। इसी बीच वापस ग्राकर बाबा जी आसन पर विराजे और अम्बा-राम जी ने जब हमारी रान पर हाथ रखा. तब हमको होश आया कि हम संसार में हैं और नाद से शरीर के सारे ताप-पाप धुलकर शरीर निर्मल हो गया। ऐसा नाद हमने पहले कभी न सुना था और ग्रब आगे आशा भी नहीं उस आनन्द की। बाबा जी शान्ति भंग करते हुये बोले—शुक्ल जी तथा रमा-दत्त अच्छे हैं ?

हमने कहा—जी।

हम करीब डेढ़ घण्टे तक बाबा जी के उपदेशों का अमृत-पान करते रहे। उसमें सभी था। इसके बाद ही बाबा जी की मुखाकृति कुछ गम्भीर हुई। हमने विचार किया, 'क्या बात है, सदा सौम्य-कमल गम्भीर क्यों हुआ !' मन के विचार हमारे बदलने लगे। इसी बीच बाबा जी ने पूछा—प्रयाग कब पहुँचोगे ?

हमने कहा—जल्दी ही।

'तो शुक्ल जी से हमारा सन्देश कह देना जाकर।'

हमने कहा—ग्रवश्य। यदि ज्यादा **ग्रावश्यक** हो, तो पत्र लिख दूँ।

कहने लगे—नहीं, स्वतः ही कहना जाकर।

हमने कहा—जी।

बोले—शुक्ल जी से कहना कि १५ जुलाई ५३ को प्रातः ४ बजे शुक्र में रोहिणी का प्रवेश होगा, तो इसकी शान्ति के लिये 'विश्व-कल्याण यज्ञ' होगा और इसका आप इन्तजाम कीजिये। हमारा हर प्रकार सहयोग रहेगा और देंगे।

हमने पूछा—बाबा जी, इसका क्या प्रभाव होगा ?

उन्होंने कहा—इसका प्रभाव अनिष्ट-कारी होगा ग्रौर प्रभाव-क्षेत्र अमेरिका से लगाकर रूस तथा पाकिस्तान, काश्मीर और भारत का रहेगा।

हमने पूछा—बाबा जी, अनिष्ट क्या करेगा ?

'हजार वर्ष पूर्व ये ग्रह भारत में पड़ चुके हैं ग्रौर प्रभाव-क्षेत्र गुजरात बम्बई से मारवाड़ तक रहा है। महा-मारी, युद्ध और विग्रह, गृह-कलह —हर प्रकार मनुष्य-हानि तथा अनिष्ट करता है।'

हमने फिर पूछा—और अब की ?

'अब की भी ऐसा ही है और इसीलिए तो शुक्ल जी को कष्ट दे रहा हूँ।'

हमको बहुत चिन्ता हुई सुनकर। हमें चिन्ता में देखकर बाबाजी बोले—यदि अभी से इस पर कुछ शान्ति के लिए किया जाय, तो शान्ति हो सकती है, नहीं तो होनी अमिट है।

फिर बाबा जी गम्भीर हो गये। हमने शान्ति भङ्ग कर पुनः पूछा—बाबा जी, इसका प्रभाव कब तक रहेगा ?

'एक वर्ष, ४ माह ग्रधिक रहेगा।' इसके बाद हम ग्रादेश लेकर चले।

वापस जब प्रयाग आया, तो शुक्ल जी से बाबा जी का आदेश सुनाया। शान्ति-पूर्वक सुनकर शुक्ल जी बोले–हम तो चक्षु-हीन हैं। फिर भी अक्षोभ्यानन्द जी से राय लेकर बाबा जी के पास भेजूँगा।

थोड़ी देर गम्भीर शान्त रहने के बाद शुक्ल जी बोले––बाबा जी का वाक्य वृथा नहीं होगा और इसके लिये यथा-शीघ्र कार्य-रत होना पड़ेगा।

इतना सब जानकर बप्पा जी से आशीर्वाद लेकर वापस कलकत्ते आ गया।

यहाँ वापस आकर चिन्ता भी रही और कोई खास विश्वास भी उस समय न हो रहा था क्योंकि विदेशी राजनीति को देखते हुये ऐसा कहा नहीं जा सकता था। फिर भी पाकिस्तान पर विश्वास का न होना और अमेरिका तथा रूस का द्वन्द्व वाक्-युद्ध तो कभी-कभी शङ्का को सत्य की तरफ जोर देता ही रहा परन्तु आज बाबा जी के वाक्यों पर पूर्ण विश्वास किया जा सकता है।

हाँ, तो अब हम फिर व्यापार-वश बम्बई की तैयारी में थे कि आवश्यक कार्य-वश जल्द ही निकलना पड़ गया, आशा से पहले। बीच में प्रयाग उतर कर शुक्ल जी का आशीर्वाद लिया और बाबा जी के लिये लिया भौतिक सन्देश। हमने बम्बई पहुँचकर अम्बाराम जी नागर से कहा कि–बाबा जी के दर्शनों की व्यवस्था करो।

अम्बाराम जी बोले––अभी बाबा जी अस्वस्थ हैं। फिर भी दर्शन तो होंगे ही

प्रात: अम्बा जी जल्द ही गद्दी आकर बाबा जी के दर्शनार्थ दादर, कैडल रोड ले चले। मैं भी पूर्ण आनन्द से चल दिया। बँगले पर पहुँचकर बाबा जी का आदेश पाकर अन्दर गये दोनों। वहाँ पहुँच कर श्रीचरण-वन्दना करके हम दोनों बैठ गये।

इस समय बाबा जी शरीर से काफी निर्बल और अस्वस्थ थे। फिर भी उत्सुकता से हम लोगों का स्वागत किया।

बाबा जी ने पूछा––अच्छे हो?

हमने कहा––हाँ।

फिर बाबा जी ने पूछा–शुक्ल जी तथा रमा अच्छे हैं?

हमने कहा––जी।

बाबा जी की शारीरिक शक्ति क्षीण होते हुये भी वे बैठे थे। रोग तो १२ आने विदाई पर था परन्तु फिर भी चार आने बाकी था तथा साथ ही अपने डाँड़ कमजोरी को पूरा मेहमान की तरह छोड़े था। हमको मालूम होता था कि इन सबसे थोड़ी देर को बाबा जी ने मानो मोहलत ले ली थी, हम लोगों के लिये। खैर, सब होकर बाबा जी फिर वासुदेव होकर विश्व-चर्चा में आये और पूछा—शुक्ल जी से मिलकर आये?

हमने कहा–हाँ।

फिर कहने लगे––यज्ञ में क्या प्रगति की?

हमने कहा, जैसा कि शुक्ल जी ने कहा था—कोई खास प्रगति नहीं, केवल उत्साह मात्र।

उत्सुकता से पूछा––वह कैसा?

हमने कहा—इसमें ५ लाख रुपये से ११ लाख तक का खर्च है और आज मन्दी के जमाने में इतना होना मुश्किल है और फिर इसमें तो अभी तक कुछ भी नहीं हो पाया है। कारण एक तो इतने ऊँचे धनाढ्यों तक पहुँच नहीं और यदि है भी, तो आज मनुष्य इतना संकुचित हो गया है कि अपना कल्याण तो कर नहीं सकता, विश्व का विचार ही कहाँ से उठे? आज का पैसा करोड़ों के खून का है और वही खून दूसरों के पास रहते हुये रखनेवालों का खून चूस रहा है अपनी हिफाजित के लिए। उस पर रक्षक उसकी रक्षा नहीं कर पा रहा है। मनुष्य को खुद के कल्याण तथा विश्व के कल्याण पर विचार के लिये समय ही नहीं। जब कि दया-मया-हया तीनों को अपने डेरे की नींव में दबाकर धनवान केवल धन की रक्षा में भटक रहा है, इस पर भी रक्षा पर विश्वास

नहीं। इस बीच आपसे स्वामी अक्षोभ्यानन्द जी इसी पक्ष हेतु मिले और काफी भ्रमण कर तथा उत्साह से सब जगह दर-दर ठोकरें खाईं और कष्ट सहन किया। फिर भी गाड़ी टस से मस न हुई और पक्ष का कार्य विचारों तक ही सीमित है।

इतना सुनते ही बाबा जी मानों किंकर्तव्य-विमूढ़-भाव होकर कर्तव्य की चिन्ता में ग्रस गये। हमको भी शब्द कहकर दुःख हुआ। थोड़ी देर में बाबा जी ने 'हाँ' कहकर शान्ति भंग की और फिर वही तेजस्वी आत्मा! जैसे किसी सङ्कल्प की सिद्धि में निर्णय कर चुकने पर शान्ति छा जाती है, छा गई।

हमने कहा—इतना ही शुक्ल जी ने कहा है।

बोले—ठीक है।

फिर बाबा जी बातों का विषय बदलते हुये बोले कि—आप प्रयाग खूब घूमते होंगे और वहाँ कौन सी जगह आनन्दवाली पसन्द की?

सुनकर हम जवाब की तलाश कर रहे थे कि खुद बाबा जी ने ही कहा कि—हम तो जब भी प्रयाग गये, घर से त्रिवेणी-सङ्गम और सङ्गम से डेरा और कहीं अच्छा ही न लगता था।

बाबा जी को बैठने से कष्ट हो रहा था। हम इसको समझ रहे थे और अम्बाराम जी भी। फिर दोनों ने आज्ञा लेकर द्वार का रास्ता पकड़ा।

दरवाजे पर पहुँच कर एक मर्तबा मुड़कर दर्शन हेतु देखा तो बाबा जी निराश से शैया की शरण ले रहे थे। बँगले से बाहर निकल कर झावेरी बाजार आये और फिर वहाँ मृग-तृष्णा में अभी तक पड़े हैं, बाबाजी से सदा के लिए विदाई लेकर इसके बाद १७ नवम्बर को प्रातः अम्बाराम जी का पत्र आया और पढ़ा तो मालूम हुआ कि विश्व का पुजारी विश्व की वेदी में शरीर की आहुति देकर देव हो गया १४ नवम्बर सन् १९५३ मध्याह्न १ बजकर ५ मिनट पर विश्व-शान्ति, विश्व-कल्याण हेतु।

महान् योगी,

आगरा से हमारे मित्र आये हुये थे, कल सुबह यानी २० मार्च को प्रातः काली जी का दर्शन करने चलना है, प्रोग्राम बन गया। हम अस्वस्थ थे। शरीर बेजान था, फिर भी आग्रह न टाल सके। दूसरे दिन प्रातः १० बजे उतरे, तो शरीर ज्यादा निर्बल मालूम पड़ा और इच्छा न थी। फिर भी चले जा रहे थे। मित्र महोदय कुछ सहम रहे थे मगर कहा कुछ नहीं, हम भी चले जा रहे थे। टैक्सी स्टैण्ड पर आते-आते सर में चक्कर आने लगा और हमको लगा कि अब वहीं विसर्जन होगा क्या?

खैर, गिरने की आशङ्का से हम भटक ही रहे थे और टैक्सी भी कोई स्टैण्ड पर थी नहीं, विचित्र दशा थी मेरी। इतने ही में स्वतः निगाह ऊपर गई। देखा, बाबा जी अपने वरद हस्त से हमारी रक्षा के लिये आसन से उड़ रहे हैं। थोड़ी देर के लिये हम विमूढ़-भाव से स्तब्ध रहे। इतने ही में वन्दना का ध्यान आया और बाबाश्री का श्रीचरण मेरे मस्तक पर आया। वन्दना करते ही अन्तर्धान। अब हमारा शरीर शक्तिवान हो गया और अपूर्व आनन्द से हम टैक्सी का इन्तजार करने लगे। 'इतने ही में टैक्सी भी आ गई। हमने मन में कहा, जब बाबा जी ही इतनी चिन्ता हमारे लिये कर रहे हैं, तो फिर क्या है। टैक्सी पर बैठकर दर्शनों के लिये चल पड़े। रास्ते में मित्र महाशय ने कहा, 'इतनी ही देर में आपकी दो अवस्थायें देखने को मिलीं। क्या इस बाबत कुछ बतलाओगे?'

हमने उनसे कहा—अभी नहीं, लेकिन आपका विचार ठीक है।

चिन्ता फिर भी बाबा जी पर अब लगी और अच्छा न लगा कुछ। वापस आकर हमने अम्बारामजी को पत्र बम्बई लिखा और ऊपर लिखी घटना का खुलासा मँगाया। अम्बाराम जी का पत्र जब तक न आया, तब तक बहुत चिन्ता में समय गुजरा। अम्बाराम जी वैसे तो पत्र देने में सुस्त हैं

परन्तु आवश्यक पत्र का जवाब तुरन्त देते हैं। जवाब में अम्बाराम जी ने लिखा कि 'बाबा जी जिस पर विशेष प्रेम करते हैं, उसी पर इतनी दया भी करते हैं और ख्याल रखते हैं। चिंता की बात नहीं। ऐसा बहुतों के साथ हो चुका है।' अब हमको शान्ति मिली।

दूसरी घटना—

१५ नवम्बर ५३ को प्रातः ५ बजे के करीब हम अर्ध-निद्रा में थे कि हमने देखा कि एक पूर्ण ज्योति हमारी तरफ आ रही है और हमारे पास तक आकर विलीन हो गई। अब की इस घटना से हमारो मानसिक स्थिति तथा शारीरिक दोनों बड़ी विचित्र हो गईं और कहीं किसी कार्य में मन न लगता। इसी परिस्थिति में हमारा १७ तारीख तक समय कटा। दोपहर १७ तारीख को अम्बाराम जी के पत्र ने खुलासा कर दिया। बाबा जी नर से नारायण हो गये। धन्य है!

पूर्ण पुरुष पूज्य बाबाश्री

श्री मुक्तानन्द

प० पू० बाबाश्री द्वारा रचित 'उपदेश मुक्तावली' के ध्यान-पूर्वक पढ़ने और उसमें निहित उपदेशानुसार चलने से मुक्तानन्द होना सम्भव है। कारण, प्रभु-कृपा से सुन्दर शब्द-लालित्य और स्वानुभूत गूढ़ साधना-रहस्य ही उपदेश मुक्तावली में हैं। कर्म, भक्ति और ज्ञान की अमृत-मय त्रिविध मन्दाकिनी बहानेवाले उपदेश का सारांश है। भक्त-जन के लिए तो वांच्छा-कल्पतरु है।

परम पूज्य बाबाश्री परम पुरुष और पूर्ण पुरुष होते हुये भी साधारण-जन के समान व्यवहारी जगत् में अपना पौरुषी कार्य समाप्त कर ईश्वरत्व का भाव रखते हुये अपने पूर्ण पुरुष में विलीन हुये। मन्त्र, तन्त्र और सर्व-शास्त्र में पारङ्गत थे और दया का भाव हमेशा रखकर अपने उपदेश-ज्ञानामृत से भक्तों को कृपा-प्रसाद से जीवन-मुक्त करने में तत्पर थे। प० पू० योगेन्द्र बाबाश्री के सम्बन्ध में और लिखने का मुझमें साहस नहीं। मैं उन्हें पूर्ण पुरुष मानता हूँ और मानता रहूँगा।

(पृष्ठ १४४ का शेषांश)

बालार्कानन्त-ज्योतिरपर-पर-पगा कृष्ण-कल्याण - ज्योति-

र्मूलार्का धूम-ज्योतिरगण-कर-पदा कृष्ण - रक्ताभ - वस्त्रा ।

भूतिर्सम्भूत्य भूतिर्कनक किल महा तारकानन्त - माता,

केयूरा काम-चारा तरणि - तर कबन्धार्क - ज्योतिर्नमस्ते ।। २

[६] अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायिका महा-माया भगवती श्रीआद्या यन्त्रम् ।।ॐ।।

माया - गर्भं त्रिकोणं च तद् - बाह्ये वृत्त - युग्मकम्,

तयोर्मध्ये युग्म युग्म क्रमात् षोडश - केसरान् ।

तद् बाह्येऽष्ट - दलं पद्मं तद् - बहिर्भूपुरं लिखेत्,

चतुर्द्वारं समायुक्तं सुरेखं सु - मनोहरम् ।।

ध्यान—मेघाङ्गीं शशि-शेखरां त्रि - नयनां रक्ताम्बरं बिभ्रतीम् ।

पाणिभ्यामभयं वरं च विलसद् रक्तारविन्द - स्थिताम् ।।

पात्रं प्राप्य करेण मोद - सहितं पादौ नमन्तं महा-कालम् ।

वीक्ष्य विकासितानन - वरामाद्यां भजे कालिकाम् ।।

[७] मृत-संजीवनी यन्त्रम्

यन्त्रोद्धार—

त्रिकोणं पंच-कोणं च वृत्तं अष्ट - दलावृतम् । दले दलेऽष्ट-पत्राणि भूपुरं तदनन्तरम् ।।

ध्यान—चन्द्रार्काग्नि-विलोचनं स्मित - मुखं पद्म-द्वयान्त-स्थितम् ।

मुद्रा-पाश-मृणाल-सूत्र - विलसत्-पाणिं हिमांशु - प्रभम् ।।

कोटीन्दु-प्रगलत्-सुधा - प्लुत - तनुं हारादि-भूषोज्ज्वलम् ।

कान्तं विश्व - विमोहनं पशु - पतिं मृत्युंजयं भावयेत् ।।

[८] रसाम्र की ललित डाल

द्वा सुवर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।

तयोरन्यराम्रं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि - चाकशीति ।।

आम की मध्य-वर्ती गुठली में 'क्लीं ऐं ह्रीं' है। उसके बाहर भरे हुए रस में स्थायी, सञ्चारी, विभाव, अनुभाव, दशा, नव-रस आदि दिखाए गए हैं, जिनका रसास्वादन जीव-रूप एक पक्षी कर रहा है। ऊपर डाल पर बैठा दूसरा पक्षी द्रष्टा है। डाल में से निकली शाखाएँ नायक, नायिका की द्योतक हैं।

इस यन्त्र को देखने से उक्त विषय का पूरा विस्तार हृदयङ्गम होता है।

[९] दि वर्किंग फोर्सेज आफ दि आलमाइटी नेचर ऐज टेन नायिकाज आफ संस्कृत लिटरेचर।

यह दश महा-विद्या का यन्त्र है। इसमें यह दिखाया गया है कि प्रकृति की दस शक्तियों की क्या-क्या क्रियाएँ हैं। इसमें दशों महा-विद्याओं के यन्त्र, मन्त्र और ध्यान दिये हैं। प्रत्येक महा-विद्या की क्रिया का भाव रेखा-चित्र द्वारा स्पष्ट रूप से समझाया गया है।

दशों महा-विद्याओं का समन्वय संस्कृत साहित्य की दश नायिकाओं से इस प्रकार किया गया है।

१अजिता = वासक सज्जा रक्त मूलाग्नि ज्वलिताग्नि। २ भैरवी = प्रोषित-पतिका मधु-वर्ण रक्त-पीत। ३ भुवनेश्वरी = आगत-पतिका सुवर्ण-वर्ण भ्वाग्नि। ४ कमला = अभिसारिका क्वचित् पीत-श्वेत। ५ बगला = प्रवस्त्पतिका—पीत भू। ६ भ० विश्वाक्षी स्वाधीन-पतिका—मूलाग्नि कृष्ण-वर्ण। ७ भ० महा-बला = विप्रलुब्धा—प्रवाह नील-वर्ण। ८ भ० छिन्ना = खण्डिता—रक्त सौराग्नि-गुलाबी। ९ भ० मातङ्गी = उत्कण्ठती—हरित श्याम-वर्ण, वायु + अग्नि। १० भ० रक्त-चामुण्डा = कलहान्तरिता कृष्ण-रक्त-तम धूम-सह अग्नि-वर्ण।

उपर्युक्त मन्त्रादि के अतिरिक्त पूज्यश्री के कमरे में जो आलमारी, मेज और बकस हैं, उनमें भी महत्व-पूर्ण सामग्री है। इस सामग्री में से पूज्यश्री द्वारा लिखित डायरियों और ग्रन्थों के सम्बन्ध में यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है। पूज्यश्री नियमित रूप से डायरी लिखा करते थे और इस प्रकार कर-कमलों से लिखी हुई बीसों डायरियाँ सुरक्षित रखी हुई हैं। इन डायरियों में पूज्यश्री ने कहीं भजन लिखे हैं, तो कहीं किसी जिज्ञासु के पत्र का उत्तर लिखा है। कहीं-कहीं अंग्रेजी में अपने विचार या किसी घटना के संस्मरण भी लिखे हैं। इन डायरियों को देखकर ज्ञात होता है कि पूज्यश्री व्यवस्थित रूप से कार्य करने का केवल उपदेश ही नहीं देते थे किन्तु स्वयं वैसा करके सबको मार्ग दिखाते थे। डायरी में वे छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी—सभी प्रकार की बातें वे लिख लेते थे। उदाहरण के लिए दो-एक बातों को यहाँ उद्धृत करना उचित ही होगा। एक बार बम्बई से जाते हुये पूज्यश्री को कालका स्टेशन पर रुकना पड़ा। उस अवसर की एक टिप्पणी यह है—

'ऐट कान्का व्हेन रीच्ड फ्राम बाम्बे आन फोर्टीन्थ मे १९४७, योरोपियन रेलवे आफिसर्स आर एलाउड टु दि फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम टु टेक लंच एण्ड स्टे ऑर टेक रेस्ट बट आई वाज नाट एलाउड एण्ड टोल्ड टु लीव ऐट मिड डे १२.३० पी० एम०, दो आई वाज इल एण्ड वाज आलसो ए फर्स्ट क्लास पैसेंजर। स्टेशनमास्टर्स नेम इज एच० ई० बीटी।'

एक दूसरे स्थान पर 'माई ओन एक्सपीरियंस' शीर्षक के अन्तर्गत २४ फरवरी १९४३ को निम्न टिप्पणी लिखी है—

'सटल नेचर (महा-माया) इज नाट मूव्ड बाई दि ब्रेथ आफ प्रेज टु डू मोर दैन शी (आर ही) हैज आलरेडी डन नार कैन दि इनफिनिट डू लेस दैन विस्टो आल व्हाट शी डिजायर्स टु, सिंस शी इज अनचेंजिंग विज्डम, ट्रुथ एण्ड लव।

टू डिजायर फार पार्डन इज प्रेयर। प्रेयर कैननाट चेंज दि साइंस आफ बीइंग बट इट टेण्ड्स टु ब्रिंग अस इण्टू हार्मनी विद इट। इट (प्रेयर) रिफार्म्स दि सिनर एण्ड हील्स दि इनर मेंटल वूण्ड्स।

वी शुड प्रे दि डिवाइन प्रिंसपल आफ आल गुडनेस टु डू, हिज़ ओन वर्क व्हिच इज़ श्योर टू वी डन। दिस ब्रिंग्स आउट, आवर ओन सैल्वेशन।

व्हाट वी नीड इज़ दि प्रेयर आफ फर्वेण्ट डिज़ायर विद पेशेंस, लव एण्ड गुड (हार्मलेस) डीड्स।'

[१४] षडङ्ग-न्यास

यह न्यास हृदय, शिर, शिखा, दोनों पार्श्व (कवच), नेत्र-त्रय और कर-तल–इन छः अङ्गों में किया जाता है। पहले पाँच अङ्गों में एक-एक दीर्घ वीज-मन्त्र से अन्न-मय, प्राण-मय, मनो-मय, विज्ञान-मय और आनन्द-मय इन पाँच शरीरों की शुद्धि होती है और अन्तिम 'कर-तल' से अविद्या का बोध है, जिसे 'अस्त्राय फट्' के उच्चारण से दूर हटाकर आनन्द-मय स्थिति का दृढ़ीकरण किया जाता है।

[१५] व्यापक-न्यास

यह न्यास मूल-मन्त्र से ३, ५ या ७ बार शिर से पैर तक और पुनः पैर से शिर तक किया जाता है। इसके द्वारा यह भावना की जाती है कि सारा शरीर मन्त्र-मय अर्थात् देवता-मय है। इस भावना से साधक का देवता के साथ तादात्म्य स्थापित होता है।

[१६] भूत-शुद्धि

नाम और रूप-द्वारा प्रपञ्चात्मक जगत् की जो धारणा जिस भाव से होती है, वह 'भूत' नाम से ज्ञात है। कोई जीव मात्र को ही 'भूत' कहते हैं। जीव तो वास्तव में ब्रह्म का ही अंश शिव-रूप है। जैसे घटाकाश, मठाकाश आदि वास्तव में चिदाकाश ही हैं, वैसे ही जीव भी शिव ही है। जैसे घट या मठ से ढँके आकाश अपने नाम और रूप (घट या मठ) के हट जाने पर चिदाकाश में बदल जाते हैं, वैसे ही अविद्या से ढँका जीव अविद्या के हट जाने पर अपने मूल शिव-स्वरूप को जान जाता है। इदन्ता-भाव अर्थात् 'इदं तव' या 'इदं मम' का भाव हटना ही 'भूत-शुद्धि' है। आत्मा और परमात्मा की ऐक्य-भावना से 'भूत-शुद्धि' सम्पन्न नहीं होती। वह तभी सम्पन्न होती है, जब अपने को क्या, सारे प्रपञ्चात्मक जगत् को इसी भाव से देखा जाय।

'भूत-शुद्धि' की प्रक्रिया का रहस्य इस प्रकार है—जीवात्मा मूलाधार में अज्ञान या अविद्या से ढँककर रहता है। हठ-योग में जीव को सुषुम्णा के पथ से षट्-चक्र का भेदन करते हुए और ज्ञान-योग में छः भूमिकाओं को पार करते हुए ऊपर को उठाते हैं और सहस्रार या ब्रह्म-रन्ध्र अर्थात् ज्ञान की चरम सप्तम भूमिका में ले जाकर पर-शिव से मिलाया जाता है।

'भूत-शुद्धि' की क्रिया में 'यं' या वायु-बीज से मल-शोषण कर 'रं' या वह्नि-वीज से दहन करते हैं। 'लं' या पृथ्वी-वीज से शाम्भव शरीर का निर्माण कर 'वं' अमृत-वीज से सहस्रार-स्थित अमृत से उसे सींचकर दृढ़ बनाते हैं।

[१७] प्राण-प्रतिष्ठा

[प्राण-प्रतिष्ठा अत्यन्त कल्पनाशील, भावना-परक क्रिया है। इसके द्वारा पूजा करनेवाला अपने प्राण, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और अन्तःकरण (१ मन, २ बुद्धि, ३ चित्त, ४ अहङ्कार) को अपनी इच्छा-शक्ति से देवता के प्राण इत्यादि से संयुक्त करता है, जिससे प्रतिष्ठित देवता में और पूजा करनेवाले में कोई भेद नहीं रहता।—सं०]

जब जीवात्मा की अविद्या-रूपी उपाधि हट जाती है, तब प्रत्यगात्मा या कूटस्थ आत्मा का साक्षात्कार होता है। इसी का दृढ़ीकरण है 'प्राण-प्रतिष्ठा' की क्रिया। इस क्रिया में हृदय पर लेलिहाना मुद्रा से हाथ रख "आं सोऽहं" इत्यादि मन्त्र का तीन बार जप कर प्राणादि की प्रतिष्ठा की जाती है।

लेलिहाना-मुद्रा प्रमाता, प्रमाण और प्रमेय या ज्ञातृ, ज्ञान और ज्ञय इत्यादि के एकीकरण की द्योतक है। अर्थात् चित्त-वृत्ति को अखण्डाकार में ले आने का संकेत है। 'मुद्रा' शब्द के कई अर्थ हैं, परन्तु इससे मौन-भाव के प्रदर्शन से मतलब है।

'ग्रां' ब्रह्म की विमर्श-शक्ति का द्योतक वीज है। इसी के मनन से जीव अपने स्थूल, सूक्ष्म और कारण-शरीरों से परे शाम्भव शरीर का दृढ़ीकरण करता है। अर्थात् जीव और शिव में पृथक्ता नहीं रह जाती। प्राण ही आत्मा या 'पर-शिव' है। आत्म-प्राण-प्रतिष्ठा से इसी ज्ञान का दृढ़ीकरण होता है।

[१८] न्यास-जाल

भूत-शुद्धि और आत्म-प्राण-प्रतिष्ठा कर लेने पर अर्थात् 'देवता और मैं एक हूँ'—इस प्रकार की भावना दृढ़ हो जाने पर साधक अपनी शाम्भव देह को न्यास-जाल अर्थात् अनेक प्रकारों के न्यासों से खूब दृढ़ करे। 'न्यास' का विशेषण है, 'वज्र-कवच'। 'कवच' का अर्थ है शरीर-रक्षिका शक्ति। जैसे सैनिक युद्ध में जाने से पूर्व लौह कवच से अपने शरीर को सुरक्षित कर लेता है, वैसे ही जीव विद्या और अविद्या के द्वन्द्व-युद्ध में अपने सद्योजात शाम्भव शरीर को, जो अभी तक पूर्णतया दृढ़ नहीं हुआ है, न्यास-रूप वज्र-कवचों से सुरक्षित करता है, जिससे उसकी परम शत्रु अविद्या उसके नवीन कोमल शरीर को कहीं पर फोड़ न दे।

दूसरा तात्पर्य न्यास-जाल से यह है कि 'साऽहं' या 'सोऽहं' भाव आने पर 'सा' या 'सः' के त्रि-रूप—स्थूल, सूक्ष्म और कारण का भी ज्ञान आवश्यक हो जाता है। स्थूल रूप में अपरा-पूजा मुख्यतया कर्मेन्द्रियों से होती है, जो प्रारम्भिक साधकों के निमित्त है। कारण और पर-भाव चैतन्यता के विषय होने से उत्तराधिकारी अर्थात् कौलों के लिये ही हैं। सूक्ष्म भाव से पराऽपरा-पूजा का अनुसन्धान वीर-साधना में करना होता है क्योंकि इसी से परा-पूजा का रहस्योद्घाटन होकर ज्ञान प्राप्त होता है।

पर-देवता का सूक्ष्म रूप वर्णात्मक या मन्त्रात्मक है। इष्ट-देवता के जो एकाक्षर (वीज मात्र, यथा—'क्रीं श्रीं ह्रीं' आदि), द्वचक्षर, त्र्यक्षर, सप्ताक्षर, षोडशाक्षर, द्वाविंशाक्षर से लेकर अयुताक्षर महा-मन्त्र हैं, वे सभी सूक्ष्म-रूप से देवता के शब्द-रूप हैं। अर्थात् 'अ' से 'क्ष' तक सब उसी के रूप हैं। यह तो सर्व-सम्मत सिद्धान्त है कि मातृका से मन्त्र बनते हैं। देवता का कल्पित स्थूल-शरीर, जो साधक अपने सुभीते के लिए अपनी रुचि के अनुसार कल्पना करता है, उसके अवयव अर्थात् शिर से लेकर पैर तक के अङ्ग इन्हीं मातृकाओं से बने हैं। यही सूक्ष्म रूप से चित्-शक्ति के कल्पित शरीर का तात्पर्य है। इन अक्षरों के श्रुति के अनुसार निम्न लक्षण हैं, जो ब्रह्म के गुणों को लक्षित करते हैं—

१ अं—मृत्युञ्जय, सर्व-व्यापक। २ आं—आकर्षणात्मक, सर्ग-गत। ३ इं—पुष्टि-दाता, अक्षोभ-कर। ४ ईं—वाक्-प्रसाद-कर, निर्मल। ५ उं—सर्व-बल-प्रद, सार-तर। ६ ऊं—उच्चाटन-कर, दुःसह। ७ ऋं—संक्षोभ-कर, चञ्चल। ८ ॠं—सम्मोहन-कर, उज्ज्वल। ९ ऌं—विद्वेषण-कर, मोहक। १० ॡं—केवल मोहक। ११ एं—सर्व-वश्य-कर, शुद्ध-सत्व। १२ ऐं—शुद्ध सात्विक, पुरुष-वश्य-कर। १३ ओं—अखिल वाङ्-मय, नित्य-शुद्ध। १४ औं—सर्व-वाङ्-मय, वश्य-कर। १५ अं—गजादि-वश्य-कर, मोहन। १६ अः—मृत्यु-नाश-कर, रौद्र। १७ कं—सर्व-विष-हर, कल्याण-प्रद। १८ खं—सर्व-क्षोभ-कर, व्यापक। १९ गं—सर्व-विघ्न-शमन, महत्तर। २० घं—सौभाग्य-प्रद, स्तम्भन-कर। २१ ङं—सर्व-विष-नाश-कर, उग्र। २२ च—

अभिचारघ्न, क्रूर। २३ छं–भूत-नाश-कर, भीषण। २४ जं–कृत्याधि-नाश-कर, दुर्धर्ष। २५ झं–भूत-नाश-कर। २६ ञं–मृत्यु-प्रमथन। २७ टं–सर्व-व्याधि-हर, सुभग। २८ ठं–चन्द्र-रूप। २९ डं–गरुडात्मक विषघ्न, शोभन। ३० ढं–सर्व-सम्पत्-प्रद, सुभग। ३१ णं–सर्व-सिद्धि-प्रद, मोह-कर। ३२ तं–धन-धान्यादि–सम्पत्-प्रद, प्रसन्न। ३३ थं–धर्म-प्राप्ति-कर, निर्मल। ३४ दं–पुष्टि-वृद्धि-कर, प्रिय-दर्शन। ३५ धं–विष-ज्वरघ्न, विपुल। ३६ नं–भुक्ति-मुक्ति-प्रद, शान्त। ३७ पं–विष-विघ्न-नाशन, भव्य। ३८ फं–अणिमादि-सिद्धि-प्रद, ज्योति-रूप। ३९ बं–सर्व-दोष-हर, शोभन। ४० भं–भूत-प्रशान्त-कर, भयानक। ४१ मं–विद्वेष-मोहन-कर। ४२ यं–सर्व-व्यापक, पावन। ४३ रं–दाह-कर, विकृत। ४४ लं–विश्वम्भर, भासुर। ४५ वं–सर्वाप्यायनकर, निर्मल। ४६ शं–सर्व-फल-प्रद, पवित्र। ४७ षं–धर्मार्थ-कामद, धवल। ४८ सं–सर्व-कारण, सार्व-वर्णिक। ४९ हं–सर्व-वाङ्-मय, निर्मल। ५० ळं–सर्व-शक्ति-प्रद, प्रधान। ५१ क्षं–परापर-तत्व-ज्ञापक, परं-ज्योति-रूप।

(क) मातृका-न्यास

यह न्यास तभी किया जाता है, जब साधक अपने को पर-शिव से भिन्न नहीं समझता। यह मुख्यतः दो प्रकार का होता है—१ बाह्य और २ अन्तर। इसके तीन क्रम हैं—१ सृष्टि, २ स्थिति और ३ संहार। अपने-अपने मार्ग के अनुसार वैष्णव केशवादि-मातृका, शैव श्रीकण्ठादि, गाणपत्य गणेश-मातृका और शाक्त कला-मातृका करते हैं।

मातृका के चार प्रमुख भेद हैं—१ केवल मातृका (अ, आ आदि), २ अनुस्वार-युक्त मातृका (अं, आं आदि), ३ विसर्ग-युक्त मातृका (अः, आः आदि) और ४ विन्दु-विसर्ग-युक्ता (अंः, आंः आदि)। सृष्टि-क्रम ब्रह्मचारी के लिए, स्थिति-क्रम गृहस्थ के लिए और संहार-क्रम वानप्रस्थ तथा संन्यासी के लिए प्रशस्त है। इस नियम में भी अपवाद हैं। जैसे–विरक्त गृहस्थ संहार-क्रम से भी कर सकते हैं। वानप्रस्थ, जो सपत्नीक हैं, स्थिति-क्रम से भी कर सकते हैं और ब्रह्मचारी भी संहार-क्रम से कर सकते हैं।

बहिर्मातृका-न्यास में 'अ' से लेकर 'क्ष' तक ५१ वर्ण शरीर के ५१ मुख्य-मुख्य अङ्गों में न्यस्त होते हैं। इन्हीं ५१ स्थानों में शिव अर्थात् इष्ट-देवता का निवास है। तात्पर्य कि इन्हीं स्थानों में देवता का ज्ञान होता है। दूसरा तात्पर्य यह भी है कि शाम्भव देह शब्द-ब्रह्म का ही बना है अर्थात् शरीर ब्रह्म-मय है। इसी भावना के दृढ़ीकरण के लिए यह न्यास होता है।

अन्तर्मातृका मानसिक न्यास है, जो केवल ५० वर्णों को लेकर ही किया जाता है अर्थात् द्वितीय लकार को, जो 'क्ष' के पूर्व होता है, छोड़ देते हैं। इन वर्णों का क्रमशः मूलाधार में ४, स्वाधिष्ठान में ६, मणिपुर में १०, अनाहत में १२, विशुद्ध में १६ और आज्ञा में २ बार न्यास किया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि छहों चक्र क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश और मन के स्थान हैं। इन्हीं छहों को ब्रह्म-व्याप्त करके जीव-भाव में ब्रह्म आता है।

(ख) कला-मातृका-न्यास

यह न्यास शाम्भवों के लिए आवश्यक है क्योंकि वाचातीता परा-कला का ज्ञान उसकी कलाओं के ज्ञान के बिना असम्भव है। 'कला-ज्ञान' को 'चक्र-ज्ञान' कह सकते हैं क्योंकि चक्र है शक्ति-समूह और 'कला' का दूसरा नाम है 'शक्ति'। इसीलिए भगवती को 'वाच्यातीता परा-कला' कहते हैं।

इसी को षट्-शाम्भवेश्वरी विद्या या शाम्भवी कला कहते हैं। इसी को सप्तमी कला कहते हैं। सात कलाएँ ये हैं—

१ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ नाद, ५ नादातीता, ६ विन्दु और ७ विन्दतीता। इनके पर्याय-वाचक हैं—1 ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ ईश्वर, ५ सदाशिव, ६ भुवनेश, जिनके ऊपर परा-देवता ७ वें महा-शिव से लालित हैं। इस न्यास के भी अनेक क्रम हैं।

सामान्यतः प्रणव की १५ कलाओं का न्यास किया जाता है क्योंकि प्रणवात्मिका कलायें ही परा-कला की प्रथम सृष्ट्युन्मुखी कलायें हैं। इसमें भी सृष्टि, स्थिति और संहार–ये तीन क्रम हैं। सृष्टि-क्रम में–प्रथम नाद की निवृत्त्यादि षोडश-कलायें, विन्दु की पीतादि पञ्च-कलायें, मकार-भव तीक्ष्णादि दश-कलायें, उकार–भव जरादि दश-कलायें और अकार–भव सृष्टयादि दश-कलायें हैं। अपर-प्रणव से सृष्टि होती है। प्रणव दो प्रकार के हैं—१ पर-प्रणव और २ अपर-प्रणव। पर-प्रणव है निष्क्रिय ब्रह्म और अपर-प्रणव है सक्रिय ब्रह्म। पर-प्रणव वाच्य है और अपर वाचक है। इन्हीं दोनों के नाम परा और अपरा-विद्या हैं।

प्रणव की ५१ कलाओं से ही समष्टि और व्यष्टि की स्थिति है। इन्हीं व्यष्टि और समष्टि-भावों को एक करने के लिए 'कला-मातृका-न्यास' की आवश्यकता है। कला-न्यास करके निष्कलात्मक होना ही लक्ष्य है। इसी को विदेह-मुक्त कहते हैं।

(ग) पीठ-न्यास

यह न्यास भी आवश्यक है क्योंकि शरीर-स्थित देवता का पीठ अर्थात् देवता किस पर स्थित है और उसके चारों तरफ क्या और कौन हैं, इसका ज्ञान होना आवश्यक है। यह तो सभी मानते हैं कि जो-जो समष्टि में है, वही व्यष्टि में है अर्थात् जो ब्रह्माण्ड में है, वही पिण्डाण्ड में है। जैसे ब्रह्माण्ड में चन्द्र-सूर्य हैं, वैसे ही पिण्डाण्ड या शरीर में भी हैं। जितने पदार्थ चिदाकाश में हैं, उतने ही घटाकाश में सूक्ष्म-रूप से हैं। अतएव जो आधार या आवरण इत्यादि ब्रह्माण्ड-नायिका के हैं, वही पिण्ड-नायिका या शरीरस्थ देवता के हैं परन्तु सूक्ष्म-भाव से।

यह न्यास एक क्रम के अनुसार 'हृदय' को देवता का स्थान मानकर किया जाता है। यही क्रम सर्व-साधारण है। दूसरे क्रम के अनुसार 'ब्रह्म-रन्ध्र' को विन्दु अर्थात् परा-शक्ति समझकर न्यास किया जाता है। वास्तव में है भी यही दूसरा क्रम ठीक। ब्रह्मरन्ध्र, जो शिर के मध्य ऊर्ध्व-भाग में है, उसी को विन्दु-स्थान मानना चाहिए, न कि हृदय को।

हृदय में विन्दु को स्थापित करने से पञ्च-त्रिकोण की स्थापना ठीक से नहीं हो सकती क्योंकि पहला त्रिकोण शिर में है, दूसरा त्रिकोण भ्रू-मध्य अर्थात् ललाट में, तीसरा कण्ठ में, चौथा हृदय में और पाँचवाँ नाभि-देश में। (स्वाधिष्ठान में अष्ट-पत्र और मूलाधार में भूपुर है।) अतएव परा-पूजा में विन्दु अर्थात् देवता का स्थान ब्रह्म-रन्ध्र ही है। अतः आधार-पीठ का–अकुल-सहस्रार में, जो मूलाधार चक्र का भी आधार है, न्यास करना चाहिये क्योंकि पृथ्वी मूलाधार-चक्र है। पृथ्वी का आधार शेष है, जिसका आधार प्रकृति है। अतएव शेष, कूर्म और प्रकृति के न्यास अकुल-सहस्र-दल-चक्र में ही उचित हैं।

इस न्यास से जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान दृढ़ होता है। ज्ञान सर्वतोमुखी होने से दृढ़ होता है। आंशिक ज्ञान दृढ़ नहीं है। अतएव पराऽपरा यज्ञ में प्रत्येक क्रिया का सूक्ष्म मतलब एक ही है।

(घ) तत्व-न्यास

तत्व शाक्तागम के अनुसार ३६ हैं। वैसे तो ९६ तत्व हैं परन्तु मुख्य तत्व ३६ ही हैं। इनमें मुख्य ३ हैं—आत्म-तत्व, विद्या-तत्व और शिव-तत्व। इन्हीं के भेद करने से ३६ तत्व होते हैं। यथा—आत्म-तत्व के अन्तर्गत २४ तत्व हैं—प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्रायें और पाँच भूत। विद्या-तत्व के अन्तर्गत ७ तत्व हैं—पुरुष, नियति, काल, राग, अविद्या, कला और विद्या। शिव-तत्व के अन्तर्गत ५ तत्व हैं—शिव, शक्ति, सदाशिव, ईश्वर और शुद्ध-माया। इस न्यास के द्वारा शरीर-गत इन सभी तत्वों को ब्रह्म-तत्व में लयकर 'एक' होना होता है।

(ङ) मूल-विद्या-न्यास

'मूल-विद्या' से तात्पर्य है 'मूल-मन्त्र' से। दीक्षा-संस्कार में गुरुदेव से जो मन्त्र प्राप्त होता है, उसे ही 'मूल-मन्त्र' या 'इष्ट-मन्त्र' कहते हैं। अथवा प्रत्येक देवता का अपना 'मूल-मन्त्र' होता है, जो 'शाक्ताभिषेक' में गुरुदेव से प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए भगवती काली का द्वाविंशाक्षरी मन्त्र 'मूल-मन्त्र' माना गया है, जो आद्या काली का पूर्ण स्वरूप है। 'मूल-विद्या' या 'मूल-मन्त्र' के प्रत्येक वर्ण का न्यास करने से देवता से ऐक्य की भावना होती है।

(च) चक्र-न्यास

देवता का 'चक्र' अर्थात् 'पूजा-यन्त्र' साधक के शरीर में ही स्थित है। उदाहरण के लिए भगवती काली के 'चक्र' के अङ्ग-भूत विन्दु, पञ्च-त्रिकोण, अष्ट-दल-पद्म, भूपुर सभी शरीर में हैं। इनकी अधिष्ठातृ देवताओं का न्यास उन-उन स्थानों में स्थूल (बाह्य) और सूक्ष्म (अन्तर) रूपों से किया जाता है। स्थूल न्यास देवताओं के नाम लेकर किया जाता है और सूक्ष्म उन-उन देवताओं के द्योतक तत्वों से होता है। इससे शरीर का ब्रह्माण्ड-चक्र से और निज आत्मा का परमात्मा से ऐक्य-भाव है, यह धारणा दृढ़ होती है। इस न्यास का फल है निर्विकल्प समाधि। अर्थात् साधक काली या इष्ट-देवता-रूप हो जाता है।

(छ) चतुरासन-न्यास

१ आत्मासन, २ चक्रासन, ३ सर्व-मन्त्रासन और ४ साध्य-सिद्धासन—इन चार प्रकार के आसनों का यह न्यास है। 'आत्मासन' से मतलब है प्रमाता का, 'चक्रासन' से प्रमेय का, 'सर्व-मन्त्रासन' से प्रमाण का और 'साध्य-सिद्धासन' से सामरस्य का मतलब है। यह सामरस्य है प्रकाश-शक्ति और विमर्श-शक्ति का।

'आसन' का सूक्ष्म अर्थ है सर्व-व्यापिनी चेतना। 'आत्मासन' का यथार्थ भाव यह है कि जीव अपने को प्रमाता, कर्त्ता, ज्ञाता, भोक्ता इत्यादि समझता है। 'चक्रासन', जो दूसरा आसन है, विषयोपाधि से भासित होता है, जिससे जीव अपने को प्रमेय, ज्ञेय इत्यादि समझता है। 'मन्त्रासन' का मतलब है जीव का अपने को प्रमाण समझना। यह जीव की प्रमाणोपाधि है। अन्तिम 'साध्य-सिद्धासन' शुद्ध चैतन्यावस्था है अर्थात् साध्य सिद्ध हो गया। इसी को सविकल्प समाधि कहते हैं। इस अवस्था में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय का भाव दूर होकर परमात्मा से जीवात्मा का अभेद हो जाता है।

भेद है, विक्षेप-शक्ति की क्रिया। इसी को हटाने के लिए 'चतुरासन-न्यास' एक उपाय है। आत्मा तो नित्य-सिद्ध है। इसमें विक्षेप आने से अहन्ता-भाव आता है। इसी से जीव अपने असल रूप को भूलकर मोह में पड़कर तब तक भटकता रहता है, जब तक गुरु उसकी आँखें न खोल दे। यह वैसे ही है, जैसे कोई अपने गले में सोने का हार डालकर पीछे उसे भूल जाता है। भूलकर खोजता है और न मिलने

पर रोता-कलपता है। अन्त में किसी दूसरे मित्र या परिजन द्वारा दिखाये जाने पर गले को टटोलकर हार पहचानता है और प्रसन्न हो जाता है। हार तो कहीं गया नहीं था, उसी के पास था। उसकी विस्मरण-शक्ति से खो गया था। इसी प्रकार विक्षेप-शक्ति के कारण आत्म-परिचय नहीं हो पाता। 'साध्य-सिद्धासनावस्था' में यह परिचय हो जाता है।

(ज) षोढा-न्यास

'षोढा' का अर्थ है 'षट्धा' अर्थात् छः प्रकार का। इस न्यास के करनेवाले इष्ट-देवता के छः व्यापक स्वरूपों से तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं। उदाहरण के लिए भगवती काली का 'षोढा-न्यास' करनेवाले साधक षट्-काली-रूप हो जाते हैं। षट्-काली के नाम ये हैं--१ परा, २ परात्परा, ३ परात्परातीता, ४ चित्परा, ५ चित्परात्परा ६ चित्परात्परातीता।

पहला न्यास है वैष्णवी कला-युक्त मातृका- न्यास, दूसरा है काम - कला - पुटित श्रीकला और श्रीकला-पुटित काम-कला का लिपि-स्थान या मातृका-स्थान में। तीसरा है आदि-कला-पुटित श्री-कला और श्री-कला-पुटित आदि-कला। चौथा है कूर्च - चन्द्र को विद्या-राज्ञी (द्वाविंशाक्षरी) से सम्पुटित करके। पाँचवाँ है अनुलोम और विलोम मूल-मन्त्र से। छठा है एक सौ आठ बार 'अनुलोम-विलोम-क्रम से व्यापक न्यास। इसकी सिद्धि का लक्षण यह है कि किसी मूर्ति को नमस्कार करने पर वह मूर्त्ति फट जाती है। तात्पर्य कि साधक देवता-रूप या तादात्म्य हो जाता है।

'षोढा-न्यास' भिन्न-भिन्न तन्त्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं परन्तु तात्पर्य एक ही है। केवल एक 'षोढा-न्यास' से भी इष्ट-सिद्धि होती है। देवता या विद्या-भेद से भी इसके अनेक भेद हैं। कादि-विद्या में भी यह कई प्रकार के हैं। इसके प्रमुख भेद केवल दो और हैं--गुह्य-षोढा और हंस-षोढा। इनके अतिरिक्त भी हो सकते हैं, जो उपलब्ध नहीं हैं।

१—गुह्य-षोढा न्यास

भगवती काली के गुह्य-षोढा-न्यास में पहला न्यास चिन्तामणि-काली के त्रिधा एकाक्षर मन्त्र 'क्रीं क्रीं क्रीं' से, दूसरा तारा-द्वय 'हूं हूं' पुटित मातृका और मातृका-पुटित तारा-द्वय से, तीसरा शक्ति-कला-द्वय 'ह्रीं ह्रीं' पुटित मातृका और मातृका-पुटित शक्ति-कला-द्वय से, चौथा 'दक्षिणे कालिके' से पुटित मातृका और मातृका-पुटित 'दक्षिणे कालिके' से, पाँचवाँ सप्त-वीज और वह्नि-जाया 'क्रींक्रींक्रींहूंहूंह्रींह्रीं स्वाहा' पुटित मातृका और मातृका-पुटित सप्त-वीज-वह्नि-जाया से तथा छठा पूर्ण-विद्या-राज्ञी 'क्रीं क्रीं···ह्रीं ह्रीं स्वाहा' पुटित मातृका और मातृका-पुटित-विद्या-राज्ञी से व्यापक-न्यास होता है। इस न्यास के द्वारा भी काली-तनुता की प्राप्ति होती है।

२—हंस-षोढा न्यास

'हंस-षोढा-न्यास' को 'देह-रक्षा-न्यास' भी कहते हैं। इसका विनियोग काली-देहार्थ होता है। 'हंसः' से षडङ्ग-न्यास करके कण्ठ, हृदय, नाभि, लिङ्ग, गुह्य और सर्वाङ्ग (व्यापक) क्रमशः छः स्थानों में न्यास करके अन्त में ५० बार 'हंसः' मन्त्र से व्यापक न्यास करने से यह न्यास होता है। इसका भी उद्देश्य वही है—'हंसः' अथवा 'अहं सः'।

३—लघु-षोढा न्यास

'लघु-षोढा न्यास' उनके लिये है, जो किसी कारण से या अधिकारी-भेद-वशात् उपर्युक्त षोढा-न्यास नहीं कर सकते। संसार में सबकी रुचि या योग्यता एक सी नहीं है। इसीलिए अनेक प्रकार की

साधन-प्रणलियाँ कही गई हैं। साधक अपनी रुचि के अनुसार 'षोढा-न्यास' करके इष्ट-सिद्धि प्राप्त करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नाम और रूप भिन्न-भिन्न होते हुए भी सबका उद्देश्य एक ही है।

उक्त न्यासों के अतिरिक्त और भी अनेक न्यास हैं, यथा वीज-न्यास, विद्या-न्यास, वर्ण-न्यास इत्यादि। इनका उद्देश्य भी वही है। ये न्यास भगवती काली, तारा, षोडशी आदि सभी देवताओं के 'नित्यार्चन' या 'पूजा-पद्धतियों' में प्रकाशित हैं। यहाँ संक्षेप में इनका महत्व दर्शाया गया है।

[१६] सम्विदा या विजया (समया)-ग्रहण

[भूत-शुद्धि, आत्म-प्राण-प्रतिष्ठा द्वारा अभिषिक्त साधक 'देवता' और 'मैं' एक हूँ—इस प्रकार की भावना दृढ़ करते हैं। इसके बाद विभिन्न 'न्यासों' से इस भावना को भली-भाँति पोषित करते हैं। फिर 'सम्विदा' के प्रयोग से इस भावना को सहज में प्रकट करते हुए, 'भैरवाज्ञा-ग्रहण' अर्थात् चेतना के शुद्ध स्वरूप की अभिव्यक्ति के साथ 'अन्तर्याग' अर्थात् उस मानस-पूजा की ओर बढ़ते हैं, जिसमें बाह्य क्रियाओं का बिलकुल अभाव रहता है।—सं०]

'सम्विदा' है परा-शक्ति। इसलिए इसकी पूजा सम्वित् ही में करनी है। अन्तर्यजन दो प्रकार का होता है—१ साधार और २ निराधार। निराधार यजन उत्तम है। साधार यजन से तात्पर्य है आधार या आकार में पूजा करना। निराधार-यजन में सम्वित् में ही पूजा होती है। सम्विद् वा सम्विदा का एक अर्थ है आनन्द (ब्रह्म) और दूसरा अर्थ है ज्ञान। यह चित्ताकाश और चिदाकाश की मध्यमावस्था है। इसी के परे परा-सम्वित् है। परा-सम्वित् है चिदानन्दावस्था। यह जीवन्मुक्त का एक लक्षण है। यह परम शुभ अवस्था है, जो मोक्ष की साधन-भूता है। सम्वित् पर-शिव और परा-शक्ति का विशेषण है।

'सम्विदा' को विजया भी कहते हैं, क्योंकि यह मन को विजय करती है। मन को जीतने के सिवा दूसरा कोई उपाय संसार-सागर को पार करने का नहीं है। 'विजया' से ज्ञान का भी तात्पर्य है, क्योंकि इससे भाव-मयी चेतना का विकास होता है।

'सम्विदा' का एक नाम 'समया' भी है। सम्विदा के 'ऋषि' (प्रथम उपासक) स्वयं ब्रह्मा हैं, 'छन्द' है गायत्री और वाग्वादिनी सरस्वती 'देवता' का नाम है। 'सम्विदा' से चित्त एकाग्र होता है और ज्ञान की प्राप्ति होती है। परा-पूजा से निरानन्द अवस्था होती है जब कि सम्विदानन्द-अवस्था मूलतः आवश्यक है। इसी से सहजावस्था की उपलब्धि होती है। सहजावस्था ही सर्व-श्रेष्ठ अवस्था है। सहजावस्था को निष्पत्ति-भूमिका भी कहते हैं। शाम्भवीय अवस्था भी इसी सहजावस्था की पर्याय-वाचक है।

यहाँ पर शङ्का हो सकती है कि देव-पूजा के पहले पान या भोजन का तो निषेध है, परन्तु परा-पूजा में खान-पान सर्वथा विहित है। यह ठीक ही कहा गया है कि साधक के खिन्न होने पर देवी भी खिन्न होती हैं, इससे खा-पीकर जगदम्बा की पूजा करे। 'उपवास' को साधारणतया खान-पान न करना समझा जाता है। यह एक महान् भ्रम है। यह साधन को साध्य मानना है। 'उपवास' का अर्थ वास्तव में यह है कि भोजन आदि का झंझट छोड़कर इष्ट-देवता के चिन्तन में लीन रहना चाहिए, न कि भोजन आदि न करके सांसारिक कर्मों में लगा रहे। ऐसा करने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है।

परा-पूजा में देह ही देवालय है और अद्वैत सदानन्द-देवता है। इसी भाव से पूजा होनी चाहिए। नहीं तो अभीष्ट सिद्धि नहीं मिलती। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ज्ञान-काण्ड में अनेक क्या प्रायः सभी प्रयोग कर्म-काण्ड के विपरीत हैं। यथा—कर्म-काण्ड में सङ्कल्प-शिखा-वन्धन इत्यादि नियमों की

आवश्यकता है, जब कि ज्ञान-काण्ड में निःसङ्कल्प, मुक्त-शिखा इत्यादि ठीक उलटा ही करना होता है। संक्षेप में यह जान लेना चाहिए कि कर्म-काण्ड में शास्त्र-नियमों का पालन आवश्यक है। तत्पश्चात् उपासना-काण्ड में ये नियम क्रमशः ढीले होते जाते हैं और ज्ञान-काण्ड में इनकी समाप्ति हो जाती है।

[२०] भैरवाज्ञा-ग्रहण

आदि भैरव हैं परम शिव (ब्रह्म), जो गुणातीता महा-विद्या के ऋषि या प्रथम उपासक हैं। इनके दूसरे नाम हैं—महा-काल, अक्षोभ्य, दक्षिणामूर्ति, कामेश्वर इत्यादि। ये आदि-नाथ या आदि-गुरु भी कहलाते हैं। अतः ये काली-कुल और श्री-कुल के उपासकों के परमेष्ठि-गुरु हैं। इन्हीं से माया प्रादुर्भूत हुईं, जिनको भुवनेश्वरी कहते हैं। इन्हीं की कृपा से जीव माया से मुक्त होता है, अतएव भैरव ही मोक्ष के प्रधान कारण हैं। इसके प्रत्यक्ष उदाहरण काशी के विश्वनाथ भैरव हैं। उनकी छत्र-छाया में प्रत्येक जीव कीट-पतङ्गादि की मरने पर मुक्ति हो जाती है क्योंकि वे मृत्यु के समय तारक-मन्त्र का उपदेश पा जाते हैं। यही दक्षिणामूर्त्ति शिव वट के नीचे मौन बैठकर शिष्यों को दीक्षित करते हैं—

वीणां करैः पुस्तकमक्ष-मालां बिभ्राणमभ्राभ-गलं वराढ्यम्।
फणीन्द्र-कक्ष्यं मुनिभिः शुकाद्यैः सेव्यं वटाधः कृत-नीड़मीड़े॥

इनका एक मन्त्र निम्न प्रकार है—

'ॐ नमो भगवते तुभ्यं वट-पद-मूल-वासिने।
प्रज्ञा - मेधा - सिद्धि - दायिने मायिने नमः॥'

दक्षिणामूर्ति का एक दूसरा ध्यान ऐसा भी है—

मुद्रा (मौन-मुद्रा) पुस्तक-वह्नि-नाग-विलसद् बाहुं प्रसन्नाननं।
मुक्ता-हार-विभूषणं शशि - कला - भास्वत् - किरीटोज्ज्वलम्॥
अज्ञानापहमादिमादिमगिरामर्थं भवानी - पतिं।
न्यग्रोधान्त-निवासिनं पर - गुरुं ध्यायाम्यभीष्टाप्तये॥

दूसरा मन्त्र भी ऐसा है—

ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्त्तये। मह्यं मेधां प्रज्ञां प्रयच्छ स्वाहा॥

इस मन्त्र का रहस्यार्थ यह है—'ॐ' एकाक्षर ब्रह्म है, जो व्यापक रूप में आत्मा से भिन्न नहीं है। 'नमः' से यह बोध होता है कि 'मैं जीव (पाश-बद्ध जीव) नहीं हूँ'। 'भगवान्' से तात्पर्य है सर्व-व्यापक और सत्। 'भग' का एक अर्थ है ऐश्वर्य। सबसे बड़ा ऐश्वर्य या सत्ता नित्यता है। यही 'भगवान्' का वास्तविक अर्थ है। वैसे तो इस शब्द का आदर-वाचक प्रयोग भी होता है, जैसे भगवान् कपिल इत्यादि। 'दक्षिणामूर्ति' शब्द 'दक्षिण' और 'अमूर्त्ति' इन दो शब्दों से बना है। 'दक्षिण' शब्द सगुण ब्रह्म का द्योतक है। इसी सगुण ब्रह्म द्वारा प्रपञ्चात्मक जगत् का सृजन, पालन और संहार होता है। 'अमूर्त्ति' का अर्थ है निराकार। यह निर्गुण ब्रह्म का द्योतक है। अतएव 'दक्षिणामूर्त्ति' नाम से पूर्ण चिदचित् सगुण और निर्गण-ब्रह्म का बोध होता है। 'मेधा' का तात्पर्य है वह ज्ञान, जो संशय, अयथार्थ

और विक्षेप—इन तीनों दोषों से रहित है। 'प्रज्ञा' का लक्ष्यार्थ है मन की सविकल्प समाधि-स्थिति। 'प्रयच्छ' से तात्पर्य है समाधि की मानसिक स्थिति के देने की प्रार्थना। अर्थात् अविद्या-रहित कर देने की प्रार्थना। 'स्वाहा' का तात्पर्य है इन भावों को भी ब्रह्म में लीन कर देना। अतएव भैरवाज्ञा-प्रार्थना' करने का उद्देश्य है अपने को उसमें लीन कर देना या तादात्म्य-भाव।

[२३] अन्तर्याग

[हिन्दुओं की 'पूजा' का अर्थ है—'आत्म-निवेदन'। अधिकार-भेद से 'आत्म-निवेदन' के तीन प्रकार दिखाई पड़ते हैं। यथा—१ परा, २ पराऽपरा और ३ अपरा।

'परा' का अर्थ है कि अद्वैत-भावना से 'आत्म-निवेदन' अर्थात् 'आत्म-पूजा'। 'पराऽपरा' का अर्थ है कि ऐक्य-भावना से क्रमशः 'अद्वैत-भाव-स्थिति'। 'अपरा' का अर्थ है कि द्वैत भाव से अर्थात् सेव्य-सेवक आदि भाव से 'भाव-समर्पण' तथा 'आत्म-निवेदन'।

इस प्रकार 'आत्म-निवेदन' की भावना को प्रतिदिन जगाना ही हिन्दुओं की 'पूजा' की प्रमुख बात है। ठीक-ठीक आत्म-समर्पण हो जाने से 'पूजा' करनेवाले का अहंता-भाव छूट जाता है, वह धीरे-धीरे 'पराहंता'-भाव को प्राप्त करता है। ऐसी अवस्था में पहुँचने पर 'पूजा' करनेवाला चाहे गृहस्थाश्रम में रहे या बाहर, अज्ञान के बन्धनों से मुक्त होकर अपने 'शिव'-स्वरूप से परिचित हो जाता है। 'अन्तर्याग' से हिन्दुओं की 'पूजा' की यह विशेषता भली भाँति स्पष्ट हो जाती है। 'अन्तर्याग' वास्तव में अद्वैत-भावना से 'आत्म-निवेदन' का ही सर्व-श्रेष्ठ प्रयत्न है।]

'अन्तर्याग' या 'मानस-पूजा' वह है, जिसमें बाह्य क्रियाओं का बिलकुल अभाव रहता है। वे क्रियाएँ केवल मन द्वारा होती हैं। यह पूजन दो प्रकार का होता है—१ साधार और २ निराधार। साधार पूजा मूर्त्ति अथवा यन्त्र की कल्पना करके और निराधार पूजा ब्रह्म-ज्ञान द्वारा होती है।

सुखासन-वृत्ति चिर वास का 'आसन'-नियम है। सब शरीरों में चैतन्य की एक-तानता 'ध्यान' है और ध्यान को भूल जाना ही 'समाधि' है। इस प्रकार की पूजा में सब कर्मों का निराकरण ही है 'आवाहन', 'आसन' है निश्चय ज्ञान, उन्मनी भाव है 'पाद्य', सर्वदा अमनस्कता ही है 'अर्घ्य', सदा दीप्ति और अपारामृत-वृत्ति है 'स्नान', सर्व-व्यापकता है गन्ध, दृक्-स्वरूपावस्था है अक्षत, चित्त की आप्ति है 'पुष्प', चिदग्नि-स्वरूप है 'धूप', चिदादित्य है 'दीप', परिपूर्ण-चन्द्रामृत-रस का एकीकरण 'नैवेद्य' है, निश्चल भाव है 'प्रदक्षिणा', सोहं-भाव है 'नमस्कार', मौन है 'स्तुति' और पूर्ण सन्तोष है 'विसर्जन'।

उक्त प्रकार की भाव-मयी मानसिक पूजा ब्रह्म के तीसरे पाद अर्थात् आनन्द की है। यद्यपि ऐसी पूजा सर्वोत्कृष्ट है तथापि यह 'बोधैक-गम्या' मात्र होने से पूजा-पद्धति से परे है। इसकी भूमिका है साधार-पूजा। साधार-पूजा ही चित्त-वृत्ति का बोधन करती है, जिससे निराधार पूजा की योग्यता प्राप्त होती है। अर्थात् साधार-पूजा खण्डाकार-वृत्ति को अखण्डाकार-वृत्ति में परिणत कर देती है।

साधार-पूजा में साकार-ब्रह्म की पूजा होती है। 'साकार' ब्रह्म दो प्रकार का होता है—१ सोपाधिक और २ निरुपाधिक। सोपाधिक ब्रह्म के उदाहरण हैं अवतार, जो अपने-अपने विशिष्ट कार्यों का सम्पादन कर निरुपाधिक हो गये। यथा—नृसिंह, दाशरथी राम इत्यादि।

यहाँ शङ्का हो सकती है कि निरुपाधिक साकार कैसे हो सकते हैं ? इसका समाधान इस प्रकार होता है कि निरुपाधिक तीन प्रकार से साकार होते हैं—१ ब्रह्म-विद्या-साकार, २ आनन्द-साकार और ३ उभयात्मक साकार। ये भी दो प्रकार के हैं–१ नित्य-साकार और २ मुक्त-साकार। नित्य-साकार आदि-अन्त-शून्य शाश्वत होता है। दूसरा मुक्त-साकार उपासना से मुक्त होता है। इनके अखण्ड-ज्ञान से आविर्भाव होता है। ये भी शाश्वत ही हैं।

एक मत यह भी है कि मुक्त-साकार ऐच्छिक है। इसलिए निरुपाधिक साकार भी नित्य है। यह ब्रह्म-चैतन्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

अब यह विचार करना है कि यह ब्रह्म-चैतन्य कहाँ है और क्या है ? इसकी पूजा किस प्रकार होती है ? इस सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि यह ब्रह्म-चैतन्य 'कुण्डलिनी' है, जो जीव के शरीर में स्थित रहती है। इसकी पूजा होती है इसके वास्तविक रूप के ज्ञान से। वास्तविक ज्ञान त्रिवली को, जो तम, रज और सत्व-गुणों का बन्धन या वेष्टन है, चैतन्य कर ऊर्ध्वाकार-वृत्ति से ब्रह्म-रन्ध्र में ले जाकर बिठाये बिना नहीं हो सकता।

साधक अपनी चित्त-वृत्ति को अन्तर्मुखी बनाकर यम-नियमादि से यथा-सम्भव उचित मात्रा में तमो-गुण और रजो-गुण को वश में करके सात्विक वृत्ति के सहारे ही ऐसी पूजा का अधिकारी हो सकता है। तभी वह परा-चित्-शक्ति की भावना भी कर सकता है। इसी भावना से भावित होने पर साधक चित्-शक्ति से व्याप्त व्यष्टि अर्थात् स्व-शरीर को त्रि-मण्डल अर्थात् अग्नि, सूर्य और चन्द्र-मण्डल की ज्योति से प्रकाशित देख सकता है। साथ ही पर-शिव को, जो महा-प्रकाश है, ज्योत्स्ना-मण्डल में, जो पूर्व-कथित त्रि-मण्डलके भी परे है, देख सकता है। यही 'समय-मत' का रहस्य है, जो उपनिषदों में वर्णित है।

ज्योत्स्ना-मण्डल के महा-प्रकाश का परमाकाश के नाम से, जो पाँचों आकाशों में सबसे ऊँचा है, उपनिषदों में उल्लेख है। स्वर्ग ही ज्योत्स्ना-मण्डल से आवृत है। इसी में उन देवों का निवास है, जो ग्यारह इन्द्रिय इत्यादि सब तत्वों को वश में करके परिशुद्ध कर देते हैं।

उक्त त्रि-मण्डल का रहस्य यह है कि स्वाधिष्ठान-चक्र अर्थात् स्व+अधिष्ठान या आत्म-प्रतिष्ठान में अग्नि है। इसमें कर्मों का दहन करना होता है। 'ज्ञानाग्नि-दग्ध-कर्माणं' होकर साधक सूर्य-मण्डल में, जो अनाहत और विशुद्ध-चक्रों के मध्य में है, जाता है। यहाँ रौद्र-प्रकाश है, जिसमें पूर्ण शान्ति नहीं मिलती। यहाँ अर्थात् इस मण्डल में असंसक्ति होती है। इसी को ज्ञान की पञ्चमी भूमिका कहते हैं। इसके बाद चन्द्र-मण्डल है, जो पदार्थ-भावना की षष्ठी भूमिका है। यह पदार्थ-भावना न्याय की सप्त-पदार्थ-भावना से एक प्रकार भिन्न है। पदार्थ से तात्पर्य है मूल कारण - पदार्थ चिद् - घनानन्द-ब्रह्म। आनन्द ही पदार्थ-सप्तक का मूल कारण है। इसके परे है ज्योत्स्ना-लोक, जो निष्क्रिय ब्रह्म पर-शिव का स्थान है। यही तुर्यगा अन्तिम (चरम) भूमिका है।

उक्त प्रकार का अन्तर्यजन अहं-ग्रहोपासना का द्योतक है। बिना अन्तर्याग के बहिर्याग अवैदिक है। अन्तर्याग में सबसे पहले आत्मानुसन्धान की मूल आवश्यकता है। इसके बाद इस व्यष्टि का समष्टि में समन्वय करना होता है, जिससे भेद मिट जाय। जो द्वैत-भाव से अर्थात् साध्य और साधक के भाव से उपासना करता है, वह ज्ञान से बहुत दूर रहता है। संक्षेप में यह कहना पर्याप्त है कि अन्तर्याग की ही आवश्यकता है। बहिर्याग इसका एक साधन मात्र है। शास्त्रों ने बहिर्याग को मन्दाधिकारी या

मध्यमाधिकारी तक के लिए विहित बताया है। बाह्य पूजा से सांसारिक कार्यों का साधन होता है। उत्तमाधिकारी को बहिर्याग की किञ्चित् भी आवश्यकता नहीं है।

बहिर्याग का आधार मूर्ति-कल्पना है। इस कल्पना को मन्द, मध्यम और उत्तम अधिकारी अपनी सुविधा के लिए भिन्न-भिन्न प्रकारों में करते हैं। शास्त्रों का यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है कि शरीर, मन, प्राण इत्यादि उसी चिद्-शक्ति की विक्षेप-शक्ति द्वारा रज्जु-सर्प-वत् भासित होते हैं। इसको 'अहं-पाद' कहते हैं। इसी 'अहन्ता' को 'पराहन्ता'भाव में बदलना है। यही परा-पूजा या निदिध्यासन का लक्ष्य है। इसलिए यह आवश्यक है कि शरीरस्थ श्रीचक्र को, जो चित्-शक्ति का सूक्ष्म-भाव से और माया-शक्ति का स्थूल-भाव से द्योतक है, यथार्थ सावयव ज्ञान हो। इसी को कहते हैं मूर्ति-कल्पना।

मध्यमाधिकारी सृष्टि-क्रम और स्थिति-कम से चक्र में स्थित यथा-स्थान देवताओं की पूजा करे। पहले वह आधार-शक्ति पीठ-देवताओं की पुष्पाञ्जलि-द्वारा पूजा करे। फिर विन्दु को पर-देवता समझकर उसकी स-शक्ति अर्थात् पर-शिव-सहित पूजा करे। तदनन्तर भूपुरान्त अधिष्ठातृ या सूक्ष्म-भाव से निर्देशित आवरण-शक्तियों की मानसिक पुष्पाञ्जलि-द्वारा पूजा करे। संहार-क्रम में आवरण-शक्तियों से प्रारम्भ कर पूजा करे और अन्त में विन्दु में जाकर सब आवरण विक्षेप-शक्तियों की परि-समाप्ति करे। 'अहं-पाद' का रहस्य यह है कि स्थूल-भाव में वह जीव-भावका सूचक है, जो ब्रह्म का प्रथम अविद्या-पाद है परन्तु सूक्ष्म-भाव में यही सोहं-भाव है, जो परम शुभ अहं-कृति है। इसका विमर्श विन्दु के पार्श्व में स्थित गुरु-पंक्ति-रूपी विमर्श-शक्तियों द्वारा मध्यमाधिकारी करता है, जो हृदय में ही विन्दु या इष्ट का स्थान-निरूपण करता है। विमर्श-शक्ति का स्थान विन्दु के दक्षिण कुछ पीछे हटकर है, जो प्रथम त्रिकोण के बाहर है। यह विमर्श-वृत्ति पहले त्रिकोण या त्रिपुटी से संलग्न है। पुष्पाञ्जलि-द्वारा पूजा करने का रहस्य आत्म-गोचर-वृत्ति है। इसी को पूजा से अतद्वयावृत्ति में लाना है अर्थात् 'मैं यह नहीं, वह हूँ।'

पुष्पाञ्जलि देने के बाद उपासक देवी के आगे पञ्चोपचार से देवता को देखता है अर्थात् पाँच प्रकार से देवी को देखता है या पाँच प्रकार से देवी का ज्ञान प्राप्त करता है। ये पाँचों प्रकार हैं—१ गन्ध, २ पुष्प, ३ धूप, ४ दीप और ५ नैवेद्य।

साध्य की भावना बार-बार जिस प्रक्रिया से हो, उसी का नाम 'उपचार' है। ये चौंसठ हैं। अभाव में पाँच ही 'उपचार' ग्रहण किए जाते हैं, जो मूलात्मक हैं। ये उपचार-शक्तियाँ ही चौंसठ योगिनियाँ हैं। पञ्च-तत्वात्मिका ही पञ्चोपचार-शक्तियाँ हैं। इनके निवेदन इस प्रकार कहे गए हैं—

१—'सु-गन्ध-वत् पदार्थानुभवेन प्रत्यङ्-मुखतया प्रमातरि विश्रान्तिः' से गन्ध-समर्पण करे।
२—'सु-शब्द-वत् पदार्थानुभवेन प्रत्यङ्-मुखतया प्रमातरि विश्रान्तिः' से पुष्प चढ़ाए।
३—'सु-स्पर्श-वत् पदार्थानुभवेन प्रत्यङ्-मुखतया प्रमातरि विश्रान्तिः' से धूप प्रदान करे।
४—'सु-रूप-वत् पदार्थानुभवेन प्रत्यङ्-मुखतया प्रमातरि विश्रान्तिः' से दीप दिखाये।
५—'स्वादु-रस-वत् पदार्थानुभवेन प्रत्यङ्-मुखतया प्रमातरि विश्रान्तिः' से नैवेद्य प्रदान करे।

इन्द्रिय-ग्राम-संग्राह्यैर्गन्धाद्यैरात्म-देवता ।
स्वाभेदेन समाराध्या ज्ञातुः सोऽयं महा-मखः ।।

ये पञ्चोपचार-शक्तियाँ पञ्च-महाभूतों की नेत्रियाँ हैं। इन्हीं के द्वारा पाञ्च-भौतिक भावना का साध्य में मेलन करके ब्रह्मानन्द का अनुभव होता है। इन्हीं से सब इन्द्रियों का ज्ञान—सुख-ज्ञान—

सच्चिदानन्दांश की अनुगत भावना होती है, न कि नाम और रूप की अनुगत भावना। अर्थात् माया-रहित ज्ञान होता है क्योंकि नाम और रूप से ही माया का अस्तित्व है। नाम और रूप का भेद हटा कि ब्रह्म-वित् हुआ। इसी को दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि विश्व-विषय की स्फूर्ति पैदा करनेवाली जो मनोवृत्ति या खण्डाकार-वृत्ति है, उसे महदानन्द सम-रसी-करण या अखण्डाकार-वृत्ति में बदलने का काम ये पञ्चोपचार-शक्तियाँ करती हैं। निमज्जन या मेलन तो पहले ही ध्यान-द्वारा हो गया। ये पञ्चोपचार, दशोपचार और चतुःषष्ठि उपचार-शक्तियाँ निमज्जन-स्थिति का दृढ़ीकरण करती हैं। इसी हेतु पूजा का तात्पर्य निदिध्यासन है। इससे साम्यावस्था की प्राप्ति होती है। यह निदिध्यासन चौंसठ उपचारों के अभाव में षोडशोपचारों से भी प्रायः पूरा हो जाता है।

अन्तर्यजन में भी बाह्य-पूजा की तरह 'मुद्रा' की आवश्यकता पड़ती है। 'मुद्रा' चित्-शक्ति की बोधक एक संज्ञा है। इसकी उपयोगिता कल्पोक्त-फल-दायिनी है। इसके न करने से पूर्णता में त्रुटि रहती है। अतएव प्रत्येक मानसिक या बाह्य-क्रिया में इसे करना आवश्यक है।

यह हुआ एक प्रकार से निराकारा का साधार-रूप अन्तर्यजन। इसके बाद साकारा का साधार-रूप अन्तर्यजन आवश्यक है। ध्यान दो प्रकार का होता है—१ सूक्ष्म और २ स्थूल। सूक्ष्म है निराकारा का, जो मन और वाणी से परे है। स्थूल या विग्रह-वान् ध्यान ही सूक्ष्म का आधार है। इस प्रकार की पूजा में वाहन है समस्त विषयों का विक्षेप अर्थात् अचिद्-ज्ञान के स्थान में चित्-शक्ति-ज्ञान या धर्म के बदले धर्मि-मात्र का ज्ञान। अतएव विन्दु-पीठ में गुणातीत परा-शक्ति या प्रकृति (आद्या, तारा, षोडशी आदि इष्ट-देवता) और उसकी काल-शक्ति अर्थात् महा-काल, अक्षोभ्य, कामेश्वर आदि शिव का ध्यान करना जरूरी है। महा-काल आदि विमर्श-शक्ति के बोधक हैं और आद्या आदि इष्ट-देवता प्रकाश-शक्ति या निर्विशेष ब्रह्म के। षोडश उपचार ये हैं—

१ आसन—हृदय - कमल का आसन दे।

२ पाद्य—सहस्रार से टपकते हुए अमृत का पाद्य दे।

३ अर्घ्य—मन का अर्घ्य दे।

४ आचमन—सहस्रार के टपकते हुये अमृत का आचमन कराए।

५ स्नान—उसी अमृत से स्नान कराए।

६ वस्त्र—आकाश-तत्व का वस्त्र पहनने को दे।

७ गन्ध—पृथ्वी-तत्व का गन्ध दे।

८ पुष्प—चित्त का पुष्प दे।

इसके अतिरिक्त १ अमाय, २ अनहंकार, ३ अराग, ४ अमद, ५ अमोह, ६ अदम्भ, ७ अद्वेष, ८ अक्षोभ, ९ अमात्सर्य्य, १० अलोभ—ये दश पुष्प प्रदान करे। फिर १ अहिंसा, २ दया, ३ क्षमा, ४ ज्ञान और ५ इन्द्रिय-निग्रह—ये पाँच पुष्प और दे।

९ धूप—प्राण का धूप दे।

१० दीप—अग्नि-तत्व का दीप दिखाए।

११ नैवेद्य—अमृत-सागर का नैवेद्य दे ।

१२ घण्टा—अनाहत-ध्वनि का घण्टा बजाए ।

१३ चामर—वायु-तत्व का चामर (चँवर) डुलाए ।

१४ नृत्य—इन्द्रिय-कर्म और मन की चंचलता का नृत्य दिखाए ।

१५ बलि—काम और क्रोध रूपी पशुओं की बलि दे ।

स-लोमास्थिरस्वैरं पललमपि मार्ज्जारमसिते ! परं चौष्ट्रं मैषं नर-महिषयोश्छागमपि वा ।।
बलिं ते पूजायां मयि वितरतां मर्त्य-वसतां । सतां सिद्धिः सर्वा प्रति-पदमपूर्वा प्रभवति ।।

अर्थात् अन्तर्याग में मार्जार आदि की बलि दे, जिसका आशय यह है कि इन छः पशुओं को षड्-रिपु समझना चाहिए । छाग से 'काम', महिष से 'क्रोध', मार्जार से 'लोभ', नर से 'मद' या 'अहं-कार', मेष से 'मोह' और ऊँट से 'मात्सर्य्य' समझना चाहिए । अतएव पराऽपरा-पूजा में इन्हीं षड्-रिपुओं का बलिदान विहित है ।

१६ जप—जप दो प्रकार का है–१ वाचिक और २ मानसिक । मानसिक जप तीन प्रकार का है—१ परा, २ पश्यन्ती और ३ मध्यमा । 'परा'-जप सबसे उच्च कोटि का है ।

'वर्ण-माला' का जप शब्द-ब्रह्म या अक्षर-ब्रह्म का द्योतक है । 'शब्द' को तार्किक लोग भले ही अनित्य कहें, पर 'शब्द' आकाश का गुण है । आकाश यदि नित्य है, तो उसका गुण भी नित्य है । नित्य-धर्मी का धर्म भी नित्य है । शक्ति-मान् से शक्ति पृथक् नहीं है । अग्नि की दाहक शक्ति उससे पृथक् नहीं है । अग्नि को अगर नित्य मानें, तो उसकी दाहक शक्ति को भी नित्य मानना होगा ।

होम, तर्पण, स्तुति, नमस्कार एवं विसर्जन

जप के बाद अन्तर्हवन है । 'होम' शब्द का अर्थ त्याग या बलि है । जिस प्रकार अन्तर्यजन किये बिना बहिर्यजन मना है, उसी प्रकार बिना अन्तर्हवन किये बहिर्हवन निषिद्ध है । आत्म महा-वह्नि है ज्ञानाग्नि, इसी में मन की पूर्णाहुति अर्थात् सारी काम-वासना की पूर्णाहुति दी जाती है । 'होम' शब्द का असली अर्थ यही है ।

विश्व-विकल्प है प्रपञ्च-हवि, जिसे सम्वित्-रूपी अग्नि में भस्म-सात् करना ही अन्तर्हवन है । मन का सङ्कल्प-विकल्प ही विश्व या प्रपञ्च है । विश्व है पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, सङ्कल्प और विकल्प, कृत्य और अकृत्य । बुद्धि के द्वारा जब इनका नाश होता है, तभी जन्म-बन्ध से मुक्ति होती है । इस प्रकार साधक सर्वारम्भ-परित्यागी होकर गुणातीत या ब्रह्म हो जाता है । इस प्रकार के हवन से बुद्धि की व्यवसायात्मिका वृत्ति नष्ट हो जाती है और वह अव्यवसायात्मिका होती है, जिससे समाधि या लय या मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

इसके पश्चात् 'तर्पण' है । इसका तात्पर्य यह है कि देह-रूप श्रीचक्र की स्वात्म-मात्रावशेषता के साथ बहिरङ्ग सम्बन्ध-वाले प्रपञ्च का अपनी आत्मा में विलापन करना है अर्थात् समष्टि का व्यष्टि में एकीकरण करना है ।

'तर्पण' के बाद 'स्तुति' की जाती है । सर्वोत्कृष्ट स्तुति है मौनावस्था, जैसा पहले लिख चुके हैं । 'मौन' का तात्पर्य केवल वाचनिक मौन नहीं है । वचन के निरोध-वत् मन के पूर्ण निरोध को **'मौन'**

कहते हैं। यह सविकल्प समाधि की अवस्था है। इस मौनावस्था में ग्यारहों इन्द्रियाँ निष्क्रिय होकर ब्रह्म-भाव में लीन हो जाती हैं।

'स्तुति' के बाद 'नमस्कार' है। यह सोऽहं-भावावस्था है। पूर्ण नमस्कार है साष्टाङ्ग। अर्थात् सावयव नमस्क्रिया ही सोऽहं-भाव की अवस्था है।

इस प्रकार की पूजा का 'विसर्जन' है पूर्ण सन्तोष या सर्व-सन्तोष। सर्व-सन्तोष से तात्पर्य्य है दृढ़ अद्वैत-भाव। इसके पश्चात् साधक का कोई कर्त्तव्य नहीं रह जाता। आत्म-तृप्ति का अर्थ है आत्म-रति। स्वर्ग आदि की कामना रह जाने की अवस्था को आत्म-रति कहते हैं। इस अवस्था में कार्य या कर्त्तव्यता नहीं रह जाती क्योंकि निरहङ्कार हो जाने से विधि-निषेध से साधक परे हो जाता है। इसी को स्वरूपानन्द-दायिनी जीवन्मुक्ति कहते हैं।

[२४] लयांग-याग और 'काम-कला' का चिन्तन

इस याग का तात्पर्य है अङ्गों का अङ्गी में लय करना। यह तभी होता है, जब अङ्गी को कारण और अङ्गों को कार्य माना जाता है। इस उपाधि-भेद को हटाना ही 'लयाङ्ग-पूजा' का तात्पर्य है। 'कारण' की उपाधि ईश्वर और 'कार्य' की उपाधि जीव है। ये अङ्ग चार हैं—१ शब्द, २ अर्थ, ३ काल और ४ देश। 'शब्द' विद्या से सम्बद्ध है। 'अर्थ' नाम और रूप का द्योतक है। इन्हीं दोनों से अर्थात् शब्द और अर्थ से प्रपञ्च या माया है। 'काल' और 'देश' सृष्टि के द्योतक हैं, ये अङ्ग उसी चित्-शक्ति से उत्पन्न हुए हैं। अहं (मैं), मम (मेरा), सुख और दुःख—ईश्वर की सृष्टि नहीं हैं। यह जीव की उसकी त्रिगुणात्मक अविद्या-द्वारा की गई सृष्टि है। यथार्थ में यह रज्जु-सर्प-वत् ही है। जगत् सङ्कल्प है और सङ्कल्प ही जगत् है। अर्थात् जगत् मनोमय है। यही 'श्रीचक्र' का संकेत (रहस्य) है। संक्षेप में इसका तात्पर्य है चिदचित्-शक्ति की अपरिच्छिन्न उपासना। इससे स्वात्मानन्द-सुख अर्थात् परम-पद की प्राप्ति होती है।

इस उपासना में तीन प्रकार की पूजा निर्दिष्ट है। यह पूजा विन्दु में की जाती है। जैसे विन्दु तीन प्रकार का है—१ स्थूल, २ सूक्ष्म और ३ पर-विन्दु। पहली पूजा स्थूल-विन्दु में पुष्पाञ्जलि से होती है अर्थात् भावना होती है प्रकाश और विमर्श दो शक्तियों की। दूसरी सूक्ष्म-विन्दु में काम-कला शक्ति की पूजा या भावना होती है। तृतीय है चित्-शक्ति की, जो जगत् का कारण है। इसी तीसरी पूजा से कार्य-कारण का यथार्थ समन्वय होता है।

'काम-कला' के सम्बन्ध में शास्त्रों का आदेश है कि गुरु से ही 'काम-कला' का रहस्य जानना चाहिए। फिर भी संक्षेप में यहाँ कुछ उल्लेख किया जाता है। 'काम-कला' अहं की द्योतक है। 'अहं' निर्द्वन्द्व अद्वैत-भाव का द्योतक है। प्रथम अक्षर 'अ' 'काम' या प्रकाश-शक्ति का द्योतक है और अन्तिम अक्षर 'ह' कला या विमर्श-शक्ति का द्योतक है। अतएव दोनों अक्षरों का संयोग 'अहं' काम-कला का द्योतक है। 'अहं' शब्द से जगत् और आत्मा भी वाच्य हैं। मध्यम अधिकारियों के लिए 'काम-कला' की पूर्वोक्त परिभाषा है और सामान्य अधिकारियों के लिए केवल 'ई' निर्दिष्ट है। श्रुतियों ने 'ई' को प्रणव-तुल्य माना है। जिस प्रकार प्रणव चार भागों में विभक्त है, उसी प्रकार 'ई' भी रक्त, शुक्ल, मिश्र-विन्दु और सम्वित् से बनी है।

'काम-कला' का चिन्तन (ध्यान) दो प्रकार का है—१ स्थूल और २ सूक्ष्म। स्थूल से स्थूल-विग्रह बनता है। अग्र-विन्दु या पर-विन्दु से मुख, मध्य-विन्दु या सूक्ष्म-विन्दु से कुच या मध्य-भाग और नाद-

विन्दु या स्थूल विन्दु से योनि या निम्न-भाग बनता है। इस प्रकार सम्पूर्ण परमात्मा-रूपिणी इष्ट से आत्मा का सामरस्य करते हैं। तभी सच्चा आनन्द होता है। सूक्ष्म चिन्तन है 'अ' या अहन्ता का 'हं' या पराहन्ता में मेलन अर्थात् 'मैं ही सब हूँ और मुझी में सब है। मुझसे ही सब हुआ है और सब है तथा सब आयेगा। मैं ही ब्रह्म हूँ।' यही 'लय-योग' और 'काम-कला' के (विशेष विवरण के देखिये, शाक्त-धर्म विशेषाङ्क) चिन्तन का रहस्य है। अतएव बिना 'काम-कला' का चिन्तन किये पूजा करना मना है।

[२५] बहिर्याग : पात्रासादन (पात्र-स्थापन)

['पात्रासादन' अर्थात् 'पात्र-स्थापन' का सम्बन्ध अपने अन्तर से है। कारण पात्र अपना ही स्वरूप है। इस प्रकार 'पात्र-स्थापन' शुद्ध हुई चेतना में जो देखने में आता है, उसी का क्रिया-मय वर्णन है।

उक्त शुद्ध चेतना को अभिषिक्त साधक 'आनन्द-भैरव' और 'आनन्द-भैरवी'-रूप से जानते हैं, क्योंकि शुद्ध हुई चेतना यदि आनन्द-मयी है, तो क्रिया-मयी भी है।

हिन्दुओं की पूजा में 'पात्र-स्थापना' के बाद 'आनन्द-भैरव' और 'आनन्द-भैरवी' का ध्यान अपने हृदय में करके अपना स्वरूप क्या है और उसमें कितना आनन्द है, यह जानने का प्रयत्न किया जाता है।—सं०]

'पात्रासादन' का अर्थ है पात्रों का स्थापन। ये पात्र अपने-अपने सम्प्रदाय-क्रम के अनुसार विभिन्न संख्या, प्रकार, रूप इत्यादि में स्थापित होते हैं। देवता, मन्त्र, आम्नाय और अधिकार-भेद के अनुसार शास्त्रों में यह निर्दिष्ट है कि कितने और किस पदार्थ के तथा किस आकार के पात्र होने चाहिए। नित्य-पूजन में नौ पात्र ही साधारणतया स्थापित होते हैं। पहले 'वर्द्धनी-कलश' या 'घट' ('तीर्थ-पात्र') का स्थापन होता है। उसके बाद 'श्री-पात्र' और 'विशेषार्घ्य' दोनों का या केवल एक विशेषार्घ्य का ही स्थापन होता है, जिसे 'श्री-पात्र' भी किसी-किसी क्रम में कहते हैं। अब इन दोनों—'घट' और 'श्रीपात्र' के मध्य में गुरु, भोग इत्यादि पात्र स्थापित होते हैं।

(क) वर्द्धनी-कलश

कर्म-काण्ड या पूर्व-मीमांसा का आदेश है कि पूजा के समय साधक जब कभी मन की एकाग्रता से विहीन हो, तब जल हाथ में लेकर मन्त्र पढ़े। इससे स्पष्ट है कि इसमें आध्यात्मिक रहस्य है।

यह एक सिद्ध बात है कि जल ब्रह्म है। जल या तीर्थ की एक सांकेतिक संज्ञा 'कारण' भी है। यह 'कारण' किसका कारण है? यह 'कारण' इस हेतु कहा जाता है कि यह मुक्ति या आनन्द का कारण है अर्थात् ज्ञान है। अतएव आध्यात्मिक ज्ञान के लिए, जो पराऽपरा-पूजा का लक्ष्य है, जल (सम्विद्-ज्ञान) की आवश्यकता है। 'वर्द्धनी-कलश' समष्टि का द्योतक है। इसकी अपनी स्वतन्त्र व्यावहारिक सत्ता है। 'घट' का रूप त्रि-मूर्त्ति-द्योतक है। इसमें सप्त-समुद्र, सप्त-मात्रा और सप्त-द्वीप निहित हैं। इसमें चारों वेद-वेदांग, स्मृति, पुराणादि-शास्त्रों का रहस्य छिपा है। इसमें अग्नि, सूर्य और चन्द्र-मण्डल विराजमान रहते हैं, अर्थात् उनका ज्ञान होता है। इनकी दश, द्वादश और षोडश-कलाओं की स्थिति इस 'घट' में रहती है। प्रणव की पचास कलायें, जिनसे सारे जगत् की सृष्टि इत्यादि होती है, इसमें हैं। वेद-वेदांग रूपी अपर-विद्या की भी कलश के तीर्थ में उपस्थिति रहने से यह कलश अपर-ज्ञान का भी द्योतक है। यह अपर-ज्ञान जगत् या कार्य का ज्ञान है और सूक्ष्म-भाव से कारण या ईश्वर के भी ज्ञान का द्योतक है। अतएव यह 'घट' या तीर्थ-पात्र कर्म, उपासना तथा ज्ञान का सम्पर्क-कारक है।

'कलश' का 'कारण' या अपर-ज्ञान है—जीव, जगत् और ईश्वर का ज्ञान।

जीव का ज्ञान यह है कि जीव कार्योपाधि है। कर्म-काण्ड के अनुसार स्व-धर्म का अनुष्ठान ईश्वरेच्छा के आधार पर करने से अर्थात् अफलाकांक्षी होकर करने से जीव विशुद्ध चित्त-वृत्ति का हो जाता है। यह जीव अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल-भागी होता ही रहता है, जब तक कि इसका अहं-भाव नहीं मिटता। जगत् का ज्ञान जीव को अपनी ज्ञानेन्द्रियों-द्वारा होता है, जब तक यह अपने को कर्त्ता, भोक्ता इत्यादि समझता है। यह भोग-भूमि है——जीव और शिव दोनों की।

ईश्वर का ज्ञान यह है कि व्यापक नित्य-सत्ता, जो प्रपञ्चात्मक जगत् की रचनेवाली है, जीव को अपने शुभ और अशुभ कर्मों का फल देती है। साथ ही इसका भी ज्ञान रहता है कि उपासक साकार और सगुण की उपासना करके चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर सकता है, जिससे ईश्वर का यथार्थ चिद-चित् रूप मालूम हो जाता है।

अपर-ज्ञान से चित्त विशुद्ध होकर एकाग्र होता है। अब यह प्रश्न है कि अपर-ज्ञान का पर-ज्ञान से क्या सम्बन्ध है ?

अपर-ज्ञान के पूर्वोक्त विश्लेषण से सिद्ध होता है कि यह विद्या और अविद्या दोनों का मिश्रण है। इस इदन्ता-भाव से जगत् की चैतन्यता का बोध होता है, जो सर्वाधार है। जगत् के पाँच अंश 'नित्य' हैं, जो सत्, चित् और आनन्द से सम्बद्ध हैं और शेष दो नाम और रूप अनित्य हैं। अतएव यह सिद्ध होता है कि अपर-ज्ञान में सत्य और असत्य दोनों भावों का समावेश है।

पर-ज्ञान वह है, जिसके होने से सब कुछ सत्, चित् और आनन्द ही बोध होता है। यह ज्ञान नित्य है। इसमें नाम और रूप का आवरण हट जाता है। नाम और रूप कल्पना मात्र हैं।

अतएव आचार्यों ने वर्द्धनी-कलश (घट) के अमृत को अपर-ज्ञान का द्योतक निर्दिष्ट किया है, जिसको विशेषार्घ्य में स्थापित-कर विशेष ज्ञान में परिणत करते हैं। सबसे पहले सामान्यार्घ्य पात्र का स्थापन कर सामान्य-ज्ञान प्राप्त करते हैं। उसके बाद वर्द्धनी-कलश स्थापित कर अपर-ज्ञान प्राप्त करते हैं। तब विशेषार्घ्य से विशेष ज्ञान अर्थात् विमर्श-शक्ति और प्रकाश-शक्ति में अभिन्नता अनुभव करते हैं। अन्त में पूजा के बाद विशेषार्घ्य के उद्वासन (विसर्जन) से विमर्श-शक्ति से संल्लीन प्रकाश-शक्ति अर्थात् परम आत्मा को स्वात्मा से मिलाकर एक हो जाते हैं। इस अवस्था को अखण्डाकार-वृत्ति कहते हैं, जिसमें शिवाकार-वृत्ति का भी लय हो जाता है।

(ख) विशेषार्घ्य-पात्र

यह तो कहा ही जा चुका है कि पर-देवता का यथार्थ पूजा-रूपी ज्ञान-यज्ञ मनन, निदिध्यासन और समाधि का द्योतक है। शास्त्रों का सर्व-सम्मत सिद्धान्त है कि समाधि यथार्थ में पूर्ण ज्ञानावस्था ही है, जिसमें माया और अविद्या का सर्वथा अभाव रहता है। मनन तथा निदिध्यासन दोनों इसके साधन हैं। अतएव अध्यास के रूप में अनर्थों का हट जाना और मूल-सत्ता के ज्ञान-द्वारा आनन्दा-वस्था की प्राप्ति के द्योतक ही 'सामान्यार्घ्य' और 'विशेषार्घ्य' हैं। 'अर्घ्य' ज्ञान-द्योतक है। 'अर्घ्य' का अर्थ है पूजा के योग्य पदार्थ। ज्ञान के अतिरिक्त पूजा-योग्य पदार्थ और क्या हो सकता है? अतएव 'सामान्यार्घ्य', 'वर्द्धनी-कलश' और 'विशेषार्घ्य' क्रमशः सामान्य-ज्ञान, अपर-ज्ञान और विशेष-ज्ञान के द्योतक हैं।

(ग) मण्डल-निर्माण

[प्रत्येक मनुष्य एक 'पात्र' है। इस 'पात्र' में प्रकृति द्वारा प्रेरित जीवन-ऊर्मियाँ भरी हुई हैं। इन्हीं जीवन-ऊर्मियों से मानव-जीवन के नाटक खेले जाते हैं। इन नाटकों को 'पात्र'-स्थित 'वृत्ति'-रूपी द्रव्य सदैव विभिन्न रूपों में प्रस्तुत करता रहता है।

द्रव्य का शोधन कर यदि उसमें महत्-तत्व का आवाहन किया जाय, तो अवश्य वृत्ति भी 'महत्'—ईश्वर-रूप हो जायेगी। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए हिन्दुओं की 'पूजा' में अभिषिक्त साधक 'पात्र' के रूप में अपनी स्थापना करते हैं, फिर अपने अन्तर की प्रत्येक वृत्ति का दर्शन करते हैं, जिससे असत् का शीघ्र नाश होकर क्रमशः सत् की स्थापना होती है।

'पात्र' की स्थापना के लिए अभिषिक्त साधक विन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्र रूपी 'मण्डल' की रचना करते हैं। यह 'मण्डल' एक दृष्टि से 'काल' का वर्णन है। इस 'मण्डल' में 'विन्दु' स्व-अस्तित्व को, 'त्रिकोण' व 'षट्-कोण' स्व-अस्तित्व के नानात्व को दर्शाते हैं। 'वृत्त' प्रकृति को और 'चतुरस्र' ईश्वर को दर्शाते हैं।

इस प्रकार स्व-अस्तित्व, बाह्यत्व-रूपी स्पन्द और सृष्टि-रूपी महत् तत्व इन तीनों को पहले अपने 'पात्र' में देखा जाता है। फिर 'पात्र' रूपी अपने अस्तित्व को अपने इष्ट में स्थापित करते हुए अस्तित्व, स्पन्द और सृष्टि इन तीनों में अपने इष्ट का दर्शन व अनुभव करते हैं। दूसरे शब्दों में विश्व के अणु-अणु में अपने इष्ट का अनुभव करते हैं। 'मण्डल-निर्माण', 'पात्र-स्थापना' का यही रहस्य है।—सं०]

'विन्दु-त्रिकोण-षट्कोण-वृत्त-चतुरस्राकार' मण्डल चित्त-वृत्ति का द्योतक है। यह पञ्च-संकेतात्मक रूप पञ्च-भूत के सात्विक अंश का द्योतक है। यथा—

१ 'विन्दु' है आकाश का सत्वांश, जो हृदय है। २ 'त्रिकोण' है अग्नि या तेज का सत्वांश, जो बुद्धि है। ३ 'षट्-कोण' है वायु का सत्वांश, जो मन है। ४ 'वृत्ति' है जल का सत्वांश, जो चित्त है। ५ 'चतुरस्र' है पृथ्वी का सत्वांश, जो अहङ्कार है।

यह 'अर्घ्य' जिस प्रकार ब्रह्माण्ड के ब्रह्म का द्योतक है, उसी प्रकार पिण्डाण्ड के जीव का भी द्योतक है। यही सूक्ष्म रहस्य है। प्रत्येक प्रकार के अर्घ्य के तीन अंश होते हैं। प्रथम अमृत, दूसरा पात्र और तीसरा आधार। जीव का शरीर भी इन्हीं तीनों मण्डलों का बना है। पञ्च-दशी विद्या, काम-कला इत्यादि इन्हीं तीनों की बनी हैं। इसके परे है आदि-शक्ति इष्ट-देवता (आद्या आदि) अर्थात् ब्रह्म का चतुर्थ तुरीय पाद। काम-कला ब्रह्म का तृतीय पाद आनन्द है। इस प्रकार सभी त्रिपुटियाँ इसी वर्ग में आती हैं। किन्तु यह समझना आवश्यक है कि इस अध्यास की मूल-सत्ता चित्-शक्ति ही है, जो सत् और आनन्द है। इसी पारमार्थिक ज्ञान का द्योतक 'अर्घ्य' है।

जिस प्रकार जीव की सृष्टि सच्चिदानन्दा इच्छा-शक्ति से हुई है, उसी प्रकार जीव के पुरुषार्थ-त्रय धर्म, अर्थ और काम चित्-शक्ति से ही उत्पन्न हुए है। सत् से 'धर्म', चित् से 'अर्थ' और आनन्द से 'काम' हुए हैं। इन्हीं त्रिवर्ग या त्रिपुटी के बन्धन से छूटने पर कैवल्य मोक्ष होता है। अतएव अग्नि-मण्डल, जो धर्म है, वही 'आधार' है। सूर्य-मण्डल, जो अर्थ है, पात्र है और चन्द्र-मण्डल, जो काम है, 'अमृत' है। धर्म ही मोक्ष का आधार है। अतएव वही साधक ज्ञान-योग का अधिकारी है, जो धर्म पर व्यवस्थित है।

अब यदि शरीर को अर्घ्य-पात्र मानते हैं, जैसा कि शास्त्रों का सिद्धान्त है, तो मूलाधार चक्र ही, जो अग्नि-मण्डल है, अर्घ्य-पात्र का आधार हुआ। इसको धर्म मानना पड़ेगा, जो वस्तुतः है भी। यह धर्म अदृष्ट है। यह जीव का सञ्चित कर्म है, जिसको जीव ने अपने अतीत असंख्य जन्म-कालों में इकट्ठा कर रखा है। यही ईंधन है, जिससे अग्नि-मण्डल जलता रहता है। यही कुण्डलिनी-शक्ति है। इसी शक्ति से जीव अपनी बहिर्मुखी वृत्ति से बाह्य विषयों का अनुभव करता है और आनन्दित होता है तथा अपनी अन्तर्मुखी वृत्ति से सच्चे आनन्द का अनुभव करता है। अतएव 'शरीर' पात्र है और विषयों—भोगों—का 'अनुभव' अमृत-पात्रस्थ अमृत है। चन्द्र-मण्डल ही 'अमृत' हैं तथा सूर्य-मण्डल ही 'पात्र' है। सूर्य-मण्डल का ही लक्ष्य रखकर शास्त्रों ने पात्र-विनिर्णय की विवेचना की हैं।

यद्यपि यह पात्र-विनिर्णय केरल आदि क्रमों के अनुसार किया गया है तथापि यह साधक की मनोवृत्ति पर निर्भर करता है। निष्कामोपासक के लिए महा-कपाल ही, जो विगत रज-तत्व-ज्ञानाधार का द्योतक है, सर्वोत्तम माना गया है। मगर अभाव में स्फटिक का भी हो सकता है। स्फटिक का अभाव हो, तो नारिकेल का भी पात्र होता है। सकामोपासक के लिए अपनी कामना के अनुसार स्वर्णादिक धातुओं के पात्र हैं। 'महा-कपाल' भी तीन प्रकार का होता है—१ शङ्ख, २ शुक्ति और ३ कपर्दि का। 'शङ्ख' के भी दो भेद हैं—१ महा-शङ्ख और २ शङ्ख। इनमें 'महा-शङ्ख' या 'नर-कपाल' ही मुख्य है और 'शङ्ख' गौण या अनुकल्प है।

ज्ञान-योग में मुमुक्षु के निमित्त 'महा-शङ्ख' ही विहित है। यह अमृत जीव के निमित्त फल-योग है, जो सुख और दुःख का मिश्रण है। यह चित्त-वृत्ति पर निर्भर करता है। अशुद्ध चित-वृत्ति को मिश्रित फल-योग और परिशुद्ध को केवल आनन्द का भोग मिलता है। अतएव चित्त-वृत्ति को भी 'अमृत' कह सकते हैं। अधि-दैवतात्मक दृष्टि से मन चन्द्र-मण्डल है। इसी प्रकार चतुरस्र-स्वरूप पृथ्वी के सत्वांश का अधि-देवता ब्रह्मा है। त्रिकोण-मण्डल-स्वरूप अग्नि के सत्वांश का अधि-देवता रुद्र है। मानस का, जो अन्तःकरण का एक अंश है, अधि-देवता चन्द्र है। यह भूत-चन्द्र है, जो षोडश-दल विशुद्धि-चक्र में रहता है और द्वि-दल आज्ञा-चक्र तक अपना प्रभाव डालता है। यहीं पर सुख तथा दुःख का अनुभव होता है।

जीव के जीव-भाव का, जिससे सुख और दुःख दोनों का अनुभव होता है, दूरीकरण ही ज्ञान-याग या पर-देवता-पूजा का लक्ष्य है। अतएव ज्ञान-द्वारा भूत-चन्द्र के अमृत को चित्-चन्द्र के परमामृत में परिणत करके पान करना होता है। यही 'विशेषार्घ्य' या विशेष-ज्ञान की कर्त्तव्यता है।

सुख और दुःख-रूपी द्वन्द्व से यदि जीव मुक्त होना चाहता है, तो त्रिपुटी-जन्य भेद-भाव का त्याग करना पड़ता है। भेद-भाव के हटने से नाम और रूप का भी लय होता है। इसके लिए अखण्डाकार-वृत्ति की आवश्यकता होती है। यह सच्चिदानन्द का अनुभव ही वास्तविक अमृत है। अतएव अद्वैत-भावना ही अमृत है।

जैसा कि पहले बताया है, सूर्य-मण्डल-रूपी विशेषार्घ्य-पात्र है। यह सूर्य-मण्डल मणिपुर या नाभि-देश से लेकर अनाहत या हृदय-देश तक प्रभावी है। शरीर का मानस-भाग ही 'पात्र' है। जीव की चेतना अन्तःकरण से सीमित रहती है। कूटस्था चेतना अन्तःकरण में तभी आती है, जब यह हृदय-ग्रन्थि खुलती है।

ग्रन्थि मुख्यतः तीन हैं——१ ब्रह्म-ग्रन्थि, २ विष्णु-ग्रन्थि और ३ रुद्र-ग्रन्थि। हृद्-ग्रन्थि ही है रुद्र-ग्रन्थि, जो हृदय में रहने से हृद्-ग्रन्थि कहलाती है। इस ग्रन्थि के खुलने से जीव की स्थिति परमा हो जाती है।

हठयोगी उक्त ग्रन्थियों को मूल-बन्ध, उड्डीयान-बन्ध और जालन्धर-बन्ध से क्रमशः खोलते हैं और ज्ञान-योगी भावना से। अतएव विशेषार्घ्य के पूर्वोक्त मण्डल की चतुरस्र रेखा को उड्डीयान, जालन्धर, पूर्ण-गिरि और काम-रूप चारों पीठ मानकर ही पूजन करते हैं। काम-रूप-पीठ मूलाधार में है, पूर्णगिरि है अनाहत या हृदय में, विशुद्ध या कण्ठ-कूप में जालन्धर पीठ है और आज्ञा या भ्रू-मध्य में उड्डीयान-पीठ है। अस्तु, हृद्-ग्रन्थि के खुलने से ही जीव परमामृत का पान कर अर्थात् पर-ज्ञान की प्राप्ति होने से दुःख से मुक्त हो जाता है अर्थात् आनन्द-मय हो जाता है।

'कुलामृत' का संशोधन आवश्यक है। संशोधित हो जाने पर ही वह अमृत होकर पूजन-योग्य होता है और देवता के निवेदन-योग्य होता है। असंशोधित रहने पर वह देवता को निवेदित नहीं किया जा सकता और न वह पूजा-कर्म के योग्य ही होता है। इस 'सुधा' का पान ब्राह्मणों अर्थात् ब्रह्मोपासकों के लिए सर्वदा विहित है।

(घ) संशोधन का रहस्य

'संशोधन' का रहस्य जानना आवश्यक है क्योंकि जब सभी पदार्थ ब्रह्म-मय होने से स्वयं परि-शुद्ध हैं, तो फिर संशोधन की जरूरत ही क्या? बात यह है कि जीव मोह-वश अपने अन्तःकरण के दोष से किसी पदार्थ को अच्छा और किसी को बुरा समझता है। माया के उपाधि-रहित ज्ञान से शुद्ध और माया के उपाधि-सहित ज्ञान से पदार्थ अशुद्ध माना जाता है। मन्त्र-द्वारा कल्पित दूषित पदार्थ के संशोधन का मतलब है उस दोष को दूर करना और उस पदार्थ के चिदंश का ज्ञान। मन्त्र पढ़ने से उस पदार्थ में उस विषय का ज्ञान होता है।

चित्-कला-प्रार्थना का मन्त्र पढ़ने से यह ज्ञान होता है कि चित्-कला, जो सच्चिदानन्द-विमर्श है, जो महा-वाक्यों का लक्ष्यार्थ है, जो पराहन्ता है, जो चिदाकाश-स्थित चिच्चन्द्र की सुधा है, जो तीनों मण्डलों को प्लावित करनेवाली है, जो परमाकाश का प्रकाश है, हममें विद्यमान है। मोह-वश ही हम उसे नहीं देख पाते हैं। इस मोह को हटाना ही मन्त्र-पाठ का काम है। वस्तुतः जो वस्तु जिस पदार्थ में वर्त्तमान ही है, उस वस्तु को उसमें लाना निरर्थक है। इसी प्रकार सूर्य-मण्डल से तीर्थों के आवाहन का भी यही मतलब है।

(ङ) तत्व-योग

[हिन्दुओं की 'पूजा' के तीन मुख्य मार्ग हैं—१ दक्षिण-मार्ग, २ वाम-मार्ग और ३ कौल-मार्ग। इन तीन मार्गों में प्रकृति के तीन गुण——सत्व, रज और तम अपनी-अपनी प्रधानता रखते हैं। 'दक्षिण' मार्ग वालों ने सत्व-गुण का आश्रय लिया है। यथा——दूध, मक्खन, श्वेत पुष्प इत्यादि। 'कौल'-मार्गवालों ने रजोगुण का आश्रय लिया है। जैसे 'दक्षिण'-मार्गवाले मोक्ष और शान्ति को आनन्द-मय मानते हैं और निवृत्ति को खोजते हैं, वैसे 'कौल'-मार्गवाले प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों का त्याग कर भयङ्कर (सुख व दुःख) रजोगुण को अपने को शिक्षण देनेवाला समझकर उसमें से ही परमार्थ का साधन करते हैं, वैसे ही तीव्र 'वाम'-मार्गवाले तमोगुण का आश्रय लेकर उसमें से परमार्थ का साधन करते हैं।

यह विश्व पञ्च-तत्वों का बना है। सूक्ष्म रूप से अपने में भी पञ्च-तत्व हैं। उनको 'भोग'—बाह्यत्व की सामग्री समझ कर ग्रहण करने का नाम बन्धन है और ऐसा न समझ कर 'इष्ट' का स्वरूप उनमें देखकर कर्म करने का नाम 'मोक्ष' है।

'भोग'-वस्तु को अभोग्य कैसे बनाना, इसका नाम 'तत्व-शोधन' है। पञ्च-तत्व कौन-कौन से रूप में किन-किन वृत्तियों में किस-किस समय हमारे सामने हैं, और हमको 'भोग' जाते हैं और उनसे बचकर उनमें अपना और इष्ट का स्वरूप देखकर वे हमको न भोगें, इस चिन्ता में परायण रहने का नाम 'तत्व-योग' है, और उसमें प्रत्येक कौल-योगी रत रहता है। इस उद्योग को जिस क्रिया से हम नित्य पुष्ट करते हैं, उसी का नाम 'पात्र-स्थापन' है।––(बाबा श्री के प्रवचनों से उद्धृत)]

(१) मांस या 'शुद्धि' पृथ्वी-तत्व का द्योतक है। अतएव यह पृथ्वी-तत्व की जड़ता हरनेवाला है। दूसरे मत के अनुसार यह वायु-तत्व का द्योतक है। मांस कल्याण और सम्विदानन्द का देनेवाला है। जो योगी अपनी इन्द्रियों को आत्म-वश कर लेता है, वही मांस-भक्षी है अन्यथा केवल प्राणि-हिंसक मात्र है। तात्पर्य यह है कि क्रिया का कल्पोक्त फल ही जब नहीं हुआ, तो क्रिया एक विडम्बना मात्र है। पुण्य और पाप-रूपी पशु को ज्ञान-रूपी खड्ग से मारकर परा-शक्ति में अपने को लीन करनेवाला ही पलाशी (मांसाशी) है।

मांसाशी से यह भी तात्पर्य है कि 'मा' कहते हैं रसना या जिह्वा को। इसका 'अंश' वाक्य है। इस वाक् का भक्षण या संयम करनेवाला ही 'मांसाशी' है। इसका भाव यह है कि मन्त्र-योग में वाक्-संयम या मन्त्र-संयम आवश्यक है और हठ-योग में खेचरी-मुद्रा द्वारा जिह्वा को तालु-मूल में प्रवेश कराते हैं। इसी का नाम 'गो-भक्षण' है। 'गो' का अर्थ जिह्वा भी है।

मांस की एक परिभाषा यह भी है कि ब्रह्म में सर्व-कर्म-समर्पण ही मांस है।

(२) मीन––यह जल-तत्व की द्योतक है। ज्ञान-योग में 'मीन' अहङ्कार आदि रजोगुणात्मक षट्-रिपुओं की द्योतक है और 'भक्षण' का अर्थ है नियन्त्रण। हठ-योग में यह प्राणायाम की द्योतक है अर्थात् वायु-निरोध, जो रजः और तमोगुण-नाशक है। रजोगुण और तमोगुण के लय होने पर ही सत्व-गुण का उदय होता है। कहा है कि इड़ा और पिङ्गला-रूपी गङ्गा-यमुना में रजोगुण और तमोगुण का प्रवाह बहता रहता है। इसे हठ-योगी प्राणायाम आदि - द्वारा बन्द कर सुषुम्णा या मध्य-अन्तर्हिता सरस्वती नाड़ी-द्वारा सत्व-गुण को प्रवाहित करते हैं।

(३) मुद्रा––यह वायु-तत्व की द्योतक है। दूसरे मत से पृथ्वी-तत्व की द्योतक है। वैदिक नाम है पुरोडाश। इसका रहस्य यह है कि आशा, तृष्णा, जुगुप्सा अर्थात् निन्दा, भय, विषय, घृणा, मान, लज्जा और प्रकोप या क्रोध––ये ही आठ प्रकार की मुद्राएँ हैं। इन्हीं को ब्रह्म-रूपी अग्नि में भस्म-सात् किया जाता है। तभी आनन्द होता है, जो 'मुद्रा' का शब्दार्थ है।

(४) मैथुन या पञ्चम मकार—यह आकाश-तत्व का द्योतक है। इसका सूक्ष्मार्थ है परा-शक्ति से आत्मा के सामरस्य के आनन्द का अनुभव। वही वास्तविक मैथुन है अन्यथा स्त्री-निषेवण मात्र है। यहाँ ध्यान रखना चाहिये कि पर-शक्ति का अर्थ दूसरे की शक्ति नहीं है। पर-शक्ति का अर्थ है सबसे परा-श्रेष्ठा शक्ति या सत्ता। यह पञ्च-तत्वों में सबसे श्रेष्ठ तत्व है। इसके समझनेवाले बिरले ही हैं और मैथुन-प्रक्रिया करनेवाले तो और भी कम हैं। संक्षेप में इतना कहना पर्याप्त है कि 'मिथुन' अर्थात् दो का एक होना ही मैथुन है। इसे 'योग' भी कहते हैं क्योंकि 'योग' का तात्पर्य ही है एक के साथ दूसरी वस्तु

का मिलन। 'योग' साध्य और साधना दोनों है। साध्य उस अवस्था में है, जब आत्मा और परमात्मा या साधक का योग लक्ष्य होता है और साधन तब है, जब हम आत्मा और परमात्मा अर्थात् साध्य और साधक के योग से आनन्द को लक्ष्य मानते हैं।

इसका साधन चार प्रकार से होता है–१ मन्त्र-योग, २ हठ योग, ३ लय-योग और ४ राज-योग के द्वारा। बिना मिथुन (दो) के यह नहीं होता। बिना दो के आनन्द होता ही नहीं। अतएव जगत् के सारे पदार्थ युग्म हैं। शिवा से पृथक् शिव रह ही नहीं सकता और शिव से पृथक् शिवा नहीं रह सकती। इसी आनन्दानुभव के लिए ब्रह्म एक से अनेक हुआ।

संक्षेप में पञ्च-मकारों के तात्पर्य निम्न प्रकार हैं––

१ मद्य—ब्रह्मात्मैक्य अखण्डाकार-वृत्ति, जिसका सहस्र-दल-कमल में अनुभव होता है।

२ मत्स्य––इन्द्रियों का निग्रह कर अन्तर्मुखी वृत्ति कर लेना।

३ मांस—ज्ञान-खड्ग से पशु-भाव की बलि या दूरीकरण अर्थात् कर्म - बन्धन का छेदन कर ब्रह्म में लय।

४ मुद्रा—ब्रह्म-विद्या-रूपी ब्रह्माग्नि में स्वात्मा की समस्त आसुरी सम्पत्ति को भस्म-सात् कर सदानन्द (सत्+आनन्द) की प्राप्ति।

५ मैथुन—शिव-शक्ति-सामरस्य अर्थात् ब्रह्म और जीव का एकीकरण। यहाँ यह शङ्का हो सकती है कि जीव को शक्ति या स्त्री किस प्रकार कह सकते हैं? स्थल रूप में यह त्रि-लिङ्गात्मक है किन्तु सूक्ष्म रूप से शक्ति ही है। यही वीराचार या पराऽपरा का रहस्य है। इसका तात्पर्य है काम-वासना का त्याग।

मन्त्र के षट्-पल्लवों या अङ्गों–'वषट् इति उद्धृत्य, स्वाहा इति तत्रैव निक्षिप्य, हुं इति अवगुण्ठ्य, वौषट् इति धेनु-मुद्रया अमृती-कृत्य, फट् इति संरक्ष्य, नमः इति पुष्पं दत्वा' द्वारा विशेषार्घ्य-रूपी विशेष यथार्थ ज्ञान की रक्षा से तात्पर्य है। इसका फल यह है कि उपासक अपने मन और पञ्च-ज्ञानेंद्रियों द्वारा तादात्म्य का बोध करता है।

अष्ट-गन्ध-लोलित पुष्प-निक्षेपण का तात्पर्य भी समझना चाहिए। 'अष्ट-गन्ध' अष्ट-साधनों का द्योतक है, जो ये हैं–१ विवेक, २ वैराग्य, ३ शम, ४ दम, ५ उप-रति, ६ तितिक्षा, ७ श्रद्धा और ८ समाधान। मुमुक्षुत्व का द्योतक 'पुष्प' है। मुमुक्षु को भव-सागर पार करने के लिए जीव और ब्रह्म के ऐक्य-रूपी आनन्द-सागर में कूदना पड़ता है। अतएव मुमुक्षु का अष्ट-साधन-सहित अखण्डाकार-वृत्ति का हो जाना ही 'अष्ट-गन्ध-लोलित पुष्प' के विशेषार्घ्य में निक्षेपण का रहय है। इसका मन्त्र है मृत्युञ्जय-मन्त्र–'ॐ जूं सः'। इस मन्त्र का भावार्थ है कि मृत्यु को जीतकर ही अमृतत्व का लाभ होता है।

ह, ल, क्ष-मण्डित अ-क-थादि-रेखा-त्रयं त्रिकोणं विलिख्य।

इसका तात्पर्य यह है कि त्रिकोण में ५१ अक्षरों की भावना हो। ये अक्षर समस्त विद्याओं के द्योतक हैं।

सुधा देवी के स्वरूप का अनुसन्धान या 'आनन्द-भैरवी' का ध्यान करने का तात्पर्य है कि सुधा देवी या अमृत-ब्रह्म का लक्षण चिन्मयत्व, आनन्दत्व, व्यापकत्व आदि है। यही लक्षणोपेत विशेषा-

र्घ्यामृत है। सुधा देवी के प्रार्थना-मन्त्र का, जो निम्नलिखित है, यही तात्पर्य है कि मेरा चित्-स्फुरण अर्थात् विशेष यथार्थ ज्ञान हो—चित्-स्फुरण का तात्पर्य है नित्यानन्द चित्-शक्ति का स्फुरण या उदय, जिससे ब्रह्मैक्य का अनुभव होता है–

अखण्डैक - रसानन्दाकरे ! पर-सुधात्मनि । स्वच्छन्द - स्फुरणार्थाय निधेहि कुल - नायिके ।।
अकुलस्थामृताकारे शुद्ध-ज्ञान-करे परे । अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्न - रूपिणि ।।
तद्-रूपिण्यैकरस्यं च कृत्वा ह्येतत्-स्वरूपिणि ! भूत्वा परामृताकारा मयि चित्-स्फुरणं कुरु ।।

मन्त्र—'ऐं ब्लूँ ह्सौं जूं सः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृत-वर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा'

उक्त मन्त्र का भावार्थ यह है–'ऐं' वाग्वीज है, जो समस्त विद्याओं का द्योतक है, 'ब्लूं' वश्यमान वीज है, जो समस्त जगत् को अर्थात् प्रपञ्च-भाव को अपने में लय कर लेने की क्षमता रखता है; 'ह्सौं जूं सः' परामृत है, जो चिच्चन्द्र-मण्डल से गिरता है। हे देवि ! तू अमृत-ब्रह्म या आनन्द, परम-तृप्ति या सुख-रूपिणी, आनन्द-दायिनी है। अमृत अर्थात् आनन्द की धारा मुझमें बहा दे, जिससे मैं ब्रह्म - वित् हो जाऊँ।'

'दीपिनी-मन्त्र' का भी यही तात्पर्य है। अन्तःकरण में प्रत्यगात्मा का भाव जब उदय होता है, तब इस वृत्ति को 'दीपिनी-वृत्ति' कहते हैं और जो मन्त्र इस वृत्ति का उदय करता है, वही 'दीपिनी-मन्त्र' है।

'ऐं वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महा-क्षोभं कुरु कुरु क्लीं सौः मोक्षं कुरु कुरु ह्सौः स्हौः'

यह मन्त्र तीन भागों में बँटा है। प्रथम भाग वाग्भव का बना है। दूसरा 'काम'-वीज और तीसरा भाग 'शक्ति' - कूट से बना है और अन्त में प्रासाद-परा और परा-प्रासाद—इन दो वीजों से युक्त है। इसका तात्पर्य यह है कि 'वाग्भव - खण्ड' से वेदादि-शास्त्रों से प्रति - पादित प्रत्यगात्मा का, जो ब्रह्म से भिन्न नहीं है, बोध होता है। 'काम-खण्ड' से चित्त-वृत्ति की उस अवस्था का बोध होता है, जब चित्त परिशुद्ध हो आत्म-ज्ञान का लाभ करता है। इसे आत्म-गोचर-अखण्डाकार-वृत्ति कहते हैं। 'शक्ति-खण्ड' से मुक्तावस्था का बोध होता है और 'प्रासाद-परा' तथा 'परा-प्रसाद' वीज-द्वय ब्रह्म और जीव के ऐक्य का व्यञ्जक है अर्थात् जीवन्मुक्तावस्था का द्योतक है।

विशेषार्घ्य में गुणातीत पर-ब्रह्म (आद्या आदि) का आवाहन और पूजन साधक को इसी भाव से परिपूर्ण कर देता है कि पूर्वोक्त भावनाओं की पूर्णता-द्योतक परा आदि-शक्ति मेरे समक्ष उपस्थित हैं। इसी एक भाव या ज्ञान-द्वारा उनका पूजन और तर्पण हो सकता है, अन्य प्रकार से नहीं। इसी से शास्त्रों का आदेश है कि 'विशेषार्घ्यामृत' के बिना देवता को कोई वस्तु निवेदित नहीं हो सकती। इसके विन्दु-मात्र के तर्पण से देवता सन्तुष्ट होती हैं।

'परा' देवता का एक नाम है। 'विन्दु' जीव-भाव का द्योतक है। इसे देवता को अर्पण या लय करना ही 'तर्पण' है। यह तर्पण सर्व-प्रथम एक बार पञ्च-तत्वात्मक 'मुद्रा' से होता है। इसका भाव यही है कि पञ्च-मकारात्मक जीव-भाव का लय हो। 'मुद्रा' सांकेतिक भाव की निदशात्मक क्रिया है।

विशेषार्घ्यामृत से स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीन शरीरों का संशोधन भी होता है, जो ब्रह्म के चतुर्थ आनन्द-पाद की प्राप्ति का द्योतक है। इसी प्रकार वियदादि पञ्च-तत्वात्मक शारीरिक अंशों की जड़ता इस अमृत से शोधित होती है, जिससे साधक अपने को 'विरजा' और 'विपाप्मा' समझता है। ऐसा ज्ञान होने पर ही विन्दु-स्वीकार की सार्थकता है।

'विन्दु-स्वीकार' का अर्थ है पात्र-स्वीकार। यह निदिध्यासन है। साधक अपने मूलाधार-स्थित चिदग्नि-मण्डल में कुण्डली-शक्ति की भावना करता है। यह शक्ति सञ्चित कर्म-रूपी ईंधन से जलती रहती है। साधक अपना वास्तविक परिचय पाकर इस चिदग्नि में अपने पुण्य-पाप, कृत्य-अकृत्य या सुकृति-दुष्कृति, सङ्कल्प-विकल्प, धर्म-अधर्म को भस्म-सात् कर देता है अर्थात् वह जान लेता है कि वह 'प्रत्यगात्मा' है। उसका इन सब द्विविध कर्मों से कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि वह न कर्ता है, न कारण है। ऐसे निदिध्यासन से वह अपने प्राण, बुद्धि, देहाधिकार से अवस्था-त्रय अर्थात् जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति में कृत कर्मों के ईंधन से मुक्त हो जाता है। तभी वह 'विन्दु-स्वीकार' करता है और कह सकता है—

आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि। योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि अहमस्मि ब्रह्माहमस्मि। अहमेवाहं मां जुहोमि स्वाहा॥

तात्पर्य यह कि पूर्ण ब्रह्म-ज्ञान हो जाता है। अतएव अपने को ब्रह्म समझकर अपने से ही विन्दु की, जो ब्रह्म-हवि है, आहुति देनी चाहिए।

इस प्रकार 'विशेषार्घ्य पात्र' का रहस्य यही है कि 'विशेषार्घ्य' या विशेष यथार्थ-ज्ञान से तात्पर्य है ब्रह्म और जीव के ऐक्य का ज्ञान। इसी प्रकार भोग-पात्र, बलि-पात्र, गुरु-पात्र इत्यादि के रहस्य हैं। यथा—

गुरु-पात्र—यह गुरु-रूपी मनन का द्योतक है अर्थात् ब्रह्म का विमर्श या आदि-शक्ति के रूप में ज्ञान होता है। गुरु कारण-शक्ति भी कहे जाते हैं। ये कारण हैं ब्रह्म-ज्ञान के।

भोग-पात्र—यह भोक्ता-रूपी ब्रह्म के मनन का द्योतक है। अर्थात् भोक्ता केवल ब्रह्म है, मैं नहीं हूँ। जिस प्रकार कर्त्ता केवल ब्रह्म है, मैं नहीं हूँ।

शक्ति-पात्र—यह शक्ति-रूपी ब्रह्म के मनन का द्योतक है। अर्थात् जितनी शक्तियाँ हैं, उसी शक्ति-ब्रह्म के रूपान्तर मात्र हैं। ब्रह्म के अतिरिक्त और किसी की स्वतन्त्र शक्ति या सत्ता नहीं है। इस पात्र से आवरण-शक्तियों का पूजन और तर्पण होता है। इसका यही तात्पर्य है कि आवरण-शक्तियाँ उसी एक परा-शक्ति की हैं, जो उससे पृथक् नहीं हैं।

वीर-पात्र—यह पुंलिङ्गात्मक ब्रह्म के मनन का द्योतक है। वाच्य ब्रह्म को त्रि-लिङ्गात्मक मानना ही है, नहीं तो अपूर्ण ज्ञान रहेगा। स्त्री-लिङ्गात्मक के अतिरिक्त भले ही पुंलिङ्गात्मक और अलिङ्गात्मक को गौण-भाव से ही लें।

बलि-पात्र—यह स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीन शरीरों के ब्रह्म में 'बलि' या 'एकीकरण' का द्योतक है। यद्यपि भोग-याग के लक्षण से अविद्या हट चुकी है किन्तु जब तक जीव का प्रारब्ध वर्तमान रहता है, सङ्कल्प और विकल्प रहते ही हैं, इन्हीं को ब्रह्म के संविदग्नि में भस्म करना बलि-पात्र का काम है।

[२६] चतुरायतनी पूजा

'आयतन' का अर्थ आलय या घर है। चित्-शक्ति सब पदार्थों में अर्थात् समस्त जगत् में व्याप्त है। अतएव समस्त जगत् ही इसका आयतन या रहने का स्थान है। परन्तु इसमें शक्ति, उपयोगिता इत्यादि के भेद मानसिक विकार मात्र हैं। श्रुति कहती है कि एक ही ब्रह्म है, जिसके अनेक रूप हैं। इस विचित्र त्रिगुणात्मक जगत् में जिन देवताओं या उनके प्रधान रूपों में शुद्ध सत्व है, उनकी पूजा आवश्यक है। इसका तात्पर्य यह है कि उन दृष्टिकोणों से ब्रह्म का ज्ञान आवश्यक है। उन देवताओं में गणपति, सूर्य, शिव और विष्णु हैं। इन चारों नामों का सूक्ष्मार्थ ब्रह्म ही है—गण-पति का अर्थ है चतुर्दश भुवनों के ऊपर से नीचे (तिर्यक्) तक के गणों का स्वामी अर्थात् ब्रह्म इसकी पर्याय-वाचक संज्ञा है। विनायक —'विगतो नायको यस्य सः' अर्थात् जिसका कोई स्वामी न हो। ऐसा ब्रह्म ही है। सूर्य का भी अर्थ ब्रह्म है। शिव का अर्थ कल्याण है, जो ब्रह्म है। विष्णु का अर्थ है व्यापक (सत्ता), जो ब्रह्म का सूचक है।

परमेश्वर ने जीवन के कल्याण के लिए वेदों की सृष्टि की। वेद के ज्ञान-काण्ड को सर्व-साधारण के बोध-गम्य करने के निमित्त भगवान् व्यास ने अठारह पुराण और उप-पुराण लिखे। इनमें कहीं शक्ति और कहीं शिव-रूपी ब्रह्म का कथानक के रूप में आख्यान है; कहीं विष्णु का, कहीं गणपति का, कहीं सूर्य का। उपास्य तो एक ही है, जो आदि-शक्ति है। वही, इन चार का क्या कहना, सबका रूप धरती है। इन चारों में भेद नहीं है। इसी अभेद-भाव की आवश्यकता है। इसी हेतु मूल सत्ता आद्या आदि इष्ट-देवता की पूजा से पूर्व उसके चारों प्रधान या मुख्य रूपों की पूजा होती है। यही चतुरायतनी पूजा का तात्पर्य है। इष्ट-देवता को लेकर यही 'पञ्चायतनी पूजा' नाम से प्रख्यात है।

स्व-प्रधान, सम-प्रधान, अस्व-प्रधान पूजा

शाक्त-शास्त्र का कहना है कि समस्त देवता-गण चित्-शक्ति-रूपी सूर्य की किरणें हैं। अतएव इन चारों—गणपति, सूर्य, शिव और विष्णु—को नाम और रूप-रहित चित्-शक्ति के ज्ञान को स्व-प्रधान उपस्ति कहते हैं। उपास्ति या पूजा तीन प्रकार की है—१ स्व-प्रधान, २ सम-प्रधान और ३ अस्व-प्रधान।

(१) जिस उपास्ति में साधक अपनी आत्मा को ब्रह्म से भिन्न न समझकर नाम और रूप का लय कर देता है, वह 'स्व-प्रधान' है। इसको परा-पूजा भी कहते हैं। इसके अधिकारी उत्तम या दिव्य साधक हैं।

(२) 'सम-प्रधान' उपास्ति वह है, जिसमें नाम और रूप के भाव को रखकर किन्तु अध्यास-मात्र समझकर ही पूजा होती है। इसको पराऽपरा या मिश्र पूजा भी कहते हैं। इसके अधिकारी मध्यम या वीर साधक हैं।

(३) 'अ-स्वप्रधान' उपास्ति वह है, जिसमें नाम और रूप के भाव को प्रधान समझकर मूल सत्ता को न समझकर पूजा होती है। इसको अपरा या गलित-पूजा भी कहते हैं। इसके अधिकारी अधम या पशु साधक हैं।

यह ध्यान में रखना चाहिये कि स्व-प्रधान उपास्ति में चार क्या, तेंतीस करोड़ देवताओं की पूजा हो सकती है, परन्तु अन्तर्लक्ष्य एक ही चित्-शक्ति है। यह भी उपासक से भिन्न नहीं है।

[२७] आवरण-पूजा

['आवरण' शब्द का पर्याय आवृत्ति (आच्छादन) है। आवृत्ति अथवा असकृत् अभ्यास की आवश्यकता तभी उत्पन्न होती है, जब हमारा अन्वेष्य विषय आच्छादित हो। जब तक आवरण दूर न हो जाय, तब तक बार-बार अभ्यास की आवश्यकता है।

बाह्य जगत् के नाम और रूपों के संसर्ग से हमारा 'मन' आच्छादित है। आच्छादित 'मन' के कल्पित अभ्यास को दूर करने के लिए सच्चिदानन्द-स्वरूप चित्-शक्ति का सतत ध्यान आवश्यक है, जिससे हमें यह दृढ़ ज्ञान हो जाय कि जाग्रदवस्था में जाने गये सम्पूर्ण पदार्थों का मूल-तत्व चित्-शक्ति है और वह हमसे भिन्न नहीं है।

चित्-शक्ति का सतत ध्यान अभ्यास या आवृत्ति है। ब्रह्म-सूत्र-वृत्ति के अनुसार ब्रह्म-विचार पुनः पुनः करना चाहिये। 'आवरण-पूजा' ब्रह्म-विचार अथवा चित्-शक्ति का पुनः पुनः अभ्यास करना ही है। इसीलिए 'हिन्दुओं की पूजा' में अभिषिक्त साधकों के लिए 'आवरण-पूजा' अत्यन्त अनिवार्य कर्म है।—सं०]

'आवरण' का अर्थ है परदा। परदा डालकर ही खिलाड़ी का खेल होता है। अगर परदा न रहे, तो खेल का मजा ही न रहे। खिलाड़ी पर्दे-दर-पर्दे के अन्दर छिपा बैठा है और सारे जगत् को कठपुतली की तरह वहीं से बैठा-बैठा कर्म-रूपी तार से खींचता हुआ नचा रहा है। यही माया या नाम और रूप कूटस्था जगदम्बा का 'आवरण' है। इसी 'आवरण' को हटाकर अर्थात् संहार-क्रम से पूजा या निदिध्यासन करने से उस कूटस्था को हम अपने में पाकर उसे विश्व में पा लेते हैं। इसी का अर्थात् 'आवरण'-भेदन को हठ-योग में षट्-चक्र-भेदन कहते हैं। 'आवरण' के कारण यह कूटस्था अदृश्य है। अदृश्यत्व इसका गुण है, न कि स्वभाव। इस अदृश्य को कौन और किस प्रकार देख सकता है? इसे धीर साधक ही देख सकते हैं।

प्रथम 'आवरण' है षडङ्ग। विग्रह के ये छः मुख्य अङ्ग हैं—१ हृदय, २ शिर, ३ शिखा, ४ कवच, ५ नेत्र-त्रय और ६ अस्त्र। इन्हीं छहों से रूप बनता है।

द्वितीय 'आवरण' है गुरु-मण्डल। गुरु-मण्डल का अर्चन देवता के शब्द-रूपी अङ्ग के मनन का द्योतक है। 'गुरु' अज्ञान के लय और ज्ञान के उदय का द्योतक है। अज्ञान का नाश केवल ज्ञान-द्वारा होता है। यह ज्ञान दो प्रकार का है—१ परोक्ष और २ अपरोक्ष। यहाँ ज्ञान से तात्पर्य है ब्रह्म-ज्ञान या आत्म-ज्ञान। ब्रह्म या आत्मा केवल शब्द-प्रमाण द्वारा जाना जा सकता है। अन्य प्रमाण अनुमान, उपमा आदि यहाँ काम नहीं दे सकते क्योंकि यह अनुमान से परे है। निरुपमेय होने के कारण उपमा-प्रमाण भी व्यर्थ है और अदृश्य का प्रत्यक्ष प्रमाण हो ही नहीं सकता। तब केवल शब्द-प्रमाण ही रह जाता है, जिससे कूटस्था का ज्ञान होता है। सद्-गुरु के उपदेश से ही यह शब्द-ज्ञान होता है। अतएव गुरूपदिष्ट महा-मन्त्र और महा-वाक्यों का मनन ही 'गुरु-मण्डल का अर्चन' है। शब्द-ब्रह्म के मनन में निष्णात होने पर ही पर-ब्रह्म का ज्ञान होता है।

तृतीय 'आवरण' है पञ्च-दशी नित्यायें। ये पन्द्रहो नित्यायें काल की द्योतक हैं। इसी से प्रतिपदा से पञ्च-दशी अर्थात् अमावास्या या पूर्णिमा तक एक-एक नित्या का प्रति तिथि में पूजन होता है। 'काल' का 'देश' से अभिन्न सम्बन्ध है। आद्या या महा-नित्या अङ्गी के ये दोनों ('काल' और 'देश') अङ्ग हैं। इन्हीं दोनों अङ्गों को अङ्गी में लय करना नित्याओं के यजन का तात्पर्य है।

चतुर्थ 'आवरण' है ब्राह्मी आदि अष्ट-शक्तियाँ। ये अष्ट-प्रकृति की द्योतक हैं। अविद्या की व्यञ्जक वृत्ति पर अष्ट-दल में इनकी स्थिति है अर्थात् ये मूल-विद्या से उत्पन्न हुई हैं। इस आवरण-पूजा का तात्पर्य है ब्रह्म के अचिद् अंश का ज्ञान, जिसे पूजन के पश्चात् उसी चिद्-ब्रह्म में लय कर देते हैं।

पञ्चम 'आवरण' है असिताङ्ग आदि अष्ट-भैरव। ये अष्ट-साधन—१ विवेक, २ वैराग्य, ३ शम, ४ दम, ५ उप-रति, ६ तितिक्षा, ७ श्रद्धा और ८ समाधान के द्योतक हैं। ये मोक्ष के साधन होने से मोक्ष-दाता कहे जाते हैं। अतएव 'भैरव' कहे जाते हैं। 'भैरव' का अर्थ है मोक्ष-दाता।

षष्ठ 'आवरण' है दश-दिग्-पाल अर्थात् १ इन्द्र, २ अग्नि, ३ यम इत्यादि। ये समस्त जगत् के व्यापक रूप के द्योतक हैं। इस आवरण-पूजा का तात्पर्य है जगत्-ज्ञान को ब्रह्म-ज्ञान में लय करना अर्थात् यह समझना कि जगत् ब्रह्म से भिन्न नहीं है।

कादि-क्रम (भगवती काली की साधना) के सृष्टि-क्रम में ये ही छः आवरण मुख्य हैं। सप्तम आवरण में हैं इन्द्रादि दश दिग्पालों के आयुध और अष्टम आवरण में हैं देवता के आयुध, जिनका उल्लेख पृथक् आयुधार्च्चन में होगा।

आवरण-पूजन का लक्ष्य चिद्-ब्रह्म की प्राप्ति

सृष्टि-कम के पूजन का विधान प्रवृत्ति-मार्गियों के लिए है। आवरण-पूजन की आवश्यकता इसलिए है कि बिना 'मनन' के निदिध्यासन नहीं हो सकता। 'मनन' को अभ्यास भी कहते हैं और अभ्यास को 'आवृत्ति' भी कहते हैं। 'आवृत्ति' और 'आवरण' एकार्थ-वाचक हैं। अतः 'आवरण-पूजा' ब्रह्म-विचार से भिन्न और कोई वस्तु नहीं है। इसकी आवृत्ति एक ही बार नहीं, अनेक बार होती है।

आवृत्ति-विचार की आवश्यकता उत्तमाधिकारी को नहीं है क्योंकि वह गुरु-द्वारा महा-मन्त्र या महा-वाक्य से दीक्षित होने पर ही सिद्ध हो जाता है, परन्तु दूसरों के लिए, जो अंश-भावना और विपरीत भावना----इन दो दोषों से दूषित हैं, यह सिद्धि पाना असम्भव है। असम्भावना को 'संशय' कहते हैं।

'संशय' दो प्रकार का होता है—१ प्रमाण-गत और २ प्रमेय-गत। प्रमाण-गत संशय मिटता है पूर्व-जन्मार्ज्जित पुण्य से प्राप्त सद्-गुरु-द्वारा वेदान्त-शास्त्र के समन्वय से और प्रमेय-गत संशय केवल मनन-द्वारा हटता है। यह मनन आवरण-पूजा-द्वारा व्यावहारिक रूप से सम्पादित होता है।

संहार-क्रम में भूपुरात्मक प्रथम आवरण से जगत् का लय करते हैं। तत्पश्चात् अष्ट-प्रकृति का। तब कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय और पञ्च-प्राणों का अर्थात् काल का लय करते हैं, जिससे काल से मुक्त हो जाते हैं। इसके पश्चात् शब्द-ब्रह्म से एकीकरण करते हैं। अन्त में षडङ्गार्चन या अन्तिम आवरण की अर्चा-द्वारा रूप का भी लय करके पर-विन्दु-रूपी चिद्-ब्रह्म तक पहुँचते हैं।

पद्धति के अनुसार प्रत्येक आवरण की अर्चा परा-शक्ति को समर्पित की जाती है। इसका यह तात्पर्य है कि प्रत्येक आवरण-पूजा अर्थात् मनन के समाप्त होने पर हम उतना ही चित्-शक्ति के समीप पहुँच जाते हैं। इस प्रकार पूरी आवरण-पूजा कर लेने से साधक अपनी आत्मा को पर-ब्रह्म से अभिन्न समझने में समर्थ होते हैं।

[२८] आयुधार्च्चन

पद्धति का आदेश है कि सप्तम आवरण के बाद अष्टम आवरण में इष्ट-देवी के आयुधों यथा—भगवती काली के खड्ग, मुण्ड, वर और अभय इन चार अस्त्रों का पूजन करें। आयुध (अस्त्र) का तात्पर्य धर्म या गुण है। इनके पूजन का तात्पर्य है धर्म का धर्मी में या गुण का गुणी में लय करना। ये अस्त्र समाधि की लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद—इन चारों बाधाओं का नाश करते हैं।

१ खड्ग—ज्ञान-रूपी 'खड्ग' कषाय को हटाता है अर्थात् कषाय से जो अनात्म-भाव रहता है, वह दूर हो जाता है।

२ मुण्ड—ज्ञान-तत्वाधार 'मुण्ड' लय को हटाता है। यह आत्म-भाव में अरुचि का द्योतक है। अनात्म-भाव नाम और रूप पर अवलम्बित है।

३ वर—विक्षेप से त्राण पाना ही 'वर' है, जो चित्त-वृत्ति को अन्तर्मखी करता है, जिससे विक्षेप नहीं होता।

४ अभय—रसास्वाद-रूपी महा-वाधा को हटाना ही 'अभय' है। यह जितेन्द्रियत्व का व्यञ्जक है। जब ज्ञानेन्द्रियाँ विषय, शब्द इत्यादि से हटकर मन में लीन हो जाती हैं, तो सङ्कल्प-विकल्प या रसास्वाद का भय नहीं रह जाता।

उपासक इस अवस्था में अर्थात् अष्टम आवरण की अर्चा करने पर मनन से निदिध्यासन में पहुँच जाता है परन्तु इसे एक ही बार करने से यह भाव स्थिर नहीं रहता। जैसे किसी वृक्ष की शाखा को पकड़ कर किसी एक दिशा में झुका देते हैं, परन्तु छोड़ देने पर शाखा पूर्व-वत् हो जाती है, वैसे ही निदिध्यासन में आत्माकार-वृत्ति आ तो जाती है, परन्तु पुनः अनात्माकार-वृत्ति हो जाती है अतएव जिस प्रकार वृक्ष की शाखा को बार-बार नियम-पूर्वक हाथ से पकड़कर ईप्सित दिशा में झुकाते-झुकाते शाखा का झुकाव अनायास स्थिर हो जाता है, उसी प्रकार निदिध्यासन का अक्षुण (लगातार) अभ्यास करने पर चित्त की आत्माकार-वृत्ति स्थायी हो जाती है और फिर अनात्माकार नहीं होती।

इसीलिए शास्त्रों का आदेश है कि नित्य-कर्म का लोप न करे। अर्थात् मरण-पर्यन्त अनुष्ठान में लगा रहे। इसी को निदिध्यासन कहते हैं, जो 'चक्र-पूजा का सङ्केत' है। इसकी उपयोगिता यही है कि अपरोक्ष आत्म-ज्ञान के प्रतिबन्धक अभानावृत्ति-रूप विपरीत भावना की निवृत्ति हो। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि यद्यपि चित्-शक्ति के अनेक आवरण हैं तथापि यथार्थ में श्रीचक्र का आवरण-देवता एक ही है, जो स्वयं पर-देवता सच्चिदानन्द पराहन्ता-रूपिणी है।

[२९] षडाधार-पूजा

शास्त्रों का कथन है कि शरीर में अनेक चक्र हैं। इनमें छः व्यक्त हैं और अन्य अव्यक्त हैं। इन चक्रों को 'वृत्ति' कहते हैं क्योंकि प्रत्येक चक्र के दल 'वृत्ति' के ही व्यञ्जक हैं। यथा—

प्रथम मूलाधार-चक्र के चार दल हैं। ये चारों १ योगानन्दावस्था, २ प्रेमानन्दावस्था, ३ सहजानन्दावस्था और ४ परमानन्दावस्था के द्योतक हैं अर्थात् इन चारों अवस्थाओं का अनुभव इन्हीं दलों में क्रमशः होता है। इसका दूसरा नाम भूर्लोक है।

स्वाधिष्ठान के छः दल हैं—१ प्रश्रय, २ अविश्वास, ३ अवज्ञा, ४ मूर्च्छा, ५ सर्वनाश और ६ क्रूरता। ये छः वृत्तियाँ इस स्थान में अनुभवित होती हैं। इसे भुवर्लोक कहते हैं।

मणिपुर के दश-दल हैं अर्थात् १ लज्जा, २ पिशुनता, ३ ईर्ष्या, ४ तृष्णा, ५ सुषुप्ति, ६ विषाद, ७ कषाय, ८ मोह, ९ घृणा और १० भय का इस स्थान में अनुभव होता है। इसको स्वर्लोक कहते हैं।

अनाहत के द्वादश-दल हैं, जो क्रमशः १ आशा, २ चिन्ता, ३ चेष्टा, ४ ममता, ५ दम्भ, ६ विकलता, ७ अहङ्कार, ८ विवेक, ९ चञ्चलता या लोलता, १० वितर्क, ११ अनुताप और १२ तृष्णा —इन द्वादश वृत्तियों के द्योतक हैं। यह महर्लोक है।

विशुद्धि या भारती-स्थान के षोडश दल हैं। यहीं सप्त स्वरों का स्थान है। यह जन-लोक है।

विशुद्धि के ऊपर तालु-मूल में अव्यक्त अर्थात् सूक्ष्म-तर ललना या कला-चक्र है। यह द्वादश दल का है, जो १ श्रद्धा, २ सन्तोष, ३ अपराध, ४ दम, ५ मान, ६ स्नेह, ७ शोक, ८ स्वेद, ९ शुद्धता, १० अरति, ११ सम्भ्रम और १२ उर्मी या राग के द्योतक हैं।

आज्ञा-चक्र का नाम 'परम-कुल' या 'त्रिवेणी' भी है। इसके दो दल हैं। इसको तपोलोक कहते हैं।

आज्ञा-चक्र के ऊपर छः दलों का मानस-चक्र है। इसमें १ शब्द-ज्ञान, २ स्पर्श-ज्ञान, ३ रूप-ज्ञान, ४ आघ्राणोपलब्धि, ५ रसोपभोग और ६ स्वप्न का अनुभव होता है।

मानस चक्र के ऊपर सोम-चक्र है। इसकी कृपा आदि सोलह कलायें और १६ वृत्तियाँ हैं, जिनसे सोलह कलाओं का अनुभव होता है।

सोम-चक्र के ऊपर निरालम्ब-पुरी है, जिसके ऊपर गुरु-चक्र द्वादश-दलों का है। यहाँ परम-हंस है, जिस पर गुरु-पादुका है। इस हंस का शरीर ज्ञान-मय है। दोनों पाँखें आगम और निगम हैं। हंस के दोनों पाद शिव और शक्ति हैं। चञ्चु प्रणव, नेत्र और कण्ठ काम-कला है। इसके ऊपर अमा-कला-चक्र है। इसमें मुक्ति-दायिनी निर्वाण-कला है, जो चिच्चन्द्र की सोलहवीं कला है। इसके ऊपर सहस्र-दल-चक्र है। इसमें सब वृत्तियाँ अव्यक्त भाव से हैं। इसी का नाम सत्य-लोक है।

उक्त चक्रों में छः चक्र ही व्यक्त हैं। इनमें चित्-शक्ति के रूपान्तर छः शक्तियाँ उपाधि-भेद से अवस्थित हैं। यथा—मूलाधार में शाकिनी, स्वाधिष्ठान में काकिनी, मणिपुर में लाकिनी, अनाहत में राकिनी, विशुद्धि में डाकिनी और आज्ञा में हाकिनी है। ये छहों शक्तियाँ क्रमशः १ गणेश, २ ब्रह्मा, ३ रुद्र, ४ सदा-शिव, ५ जीव और ६ परमात्मा की व्यञ्जिका हैं। इन देवताओं को परा-शक्ति के ही भेद समझना षडाधार-पूजा का तात्पर्य है।

इसका रहस्य-ज्ञान दूसरे प्रकार से यह है कि कूटस्था इष्ट-देवता (आद्या आदि) सर्वोच्च परमाकाश है। इसकी परिभाषा है—

अनिर्वचनीय-ज्योतिः सर्व-व्यापकं। निरतिशयानन्द-लक्षणं परमाकाशम्॥

इसी परमाकाश में आकाश, पराकाश, महाकाश और सूर्याकाश—इन चारों का लय होता है। *यह अस्पन्दन है, अतएव इसी को 'पर-प्रणव' कहते हैं। यही 'षडाधार' हैं। षट् से छः कलाओं का*

बोध होता है। 'षडाधार' उसी का नाम है, जिसके छः आधार हों अर्थात् जो छः सत्ताओं से ऊपर या परा-सत्ता हो। इन छहों कलाओं के नाम शाक्त-शक्ति-क्रम से निम्न प्रकार हैं—

१ परा, २ परात्परा, ३ परात्परातीता, ४ चित्परा, ५ चित्परातीता, ६ चित्परातीताऽतीता।

ये छः कलायें सातवीं अन्तिम सर्वातीता इष्ट-देवता (आद्या आदि) के आधार हैं। इन छः आधारों की पूजा किये विना अर्थात् इनका तत्व-ज्ञान प्राप्त किये विना सर्वातीता का ज्ञान नहीं हो सकता। यह अमनस्काभ्यास है। इसीलिए 'कौल'-स्थिति में पहुँचा हुआ शाक्त साधक बालोन्मत्त पिशाच-वत् जड़-वृत्ति से संसार में रहता है। ऐसा ही उपासक संन्यासी है, परमहंस है और अवधूत है क्योंकि वह सम्प्रज्ञात-समाधि-जनित ब्रह्मामृत का पान कर नित्य-तृप्त रहता है।

यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वोक्त सातों कलाओं को क्रमशः १ अकार, २ उकार, ३ मकार, ४ नाद, ५ नादातीत, ६ विन्दु और ७ विन्द्वतीता कहते हैं। इन्हें ही पञ्च-क्रम से १ ब्रह्मा, २ विष्णु, ३ रुद्र, ४ ईश्वर, ५ सदाशिव, ६ शान्ति और ७ तदतीता कहते हैं। 'शान्ति' का दूसरा नाम 'भुवनेश' है। पूर्व-पञ्च-कला-पञ्चक अपर-प्रणव-द्योतक है। इनके परे भुवनेश महादेव हैं, जिनके नाभि-कमल पर तदतीता पर-प्रणव-रूपिणी कूटस्था इष्ट-देवता (आद्या आदि) हैं। 'भुवनेश' ही प्रपञ्चेश्वरी महा-त्रिपुर-सुन्दरी है। अर्थात् छठी कला ही सुन्दरी भगवती है।

पूर्व-क्रम व्यष्टि अर्थात् पिण्डाण्ड षडाधार का और पर-क्रम ब्रह्माण्ड या समष्टि षडाधार का बोधक है। इस रहस्य का ज्ञान हठ-योग, मन्त्र-योग, राज-योग आदि सभी की क्रियाओं से होता है। तात्पर्य एक है। मार्ग भिन्न-भिन्न हैं।

[३०] आम्नाय-समष्टि-पूजा

'आम्नाय' शब्द का अर्थ है वेद। वैसे तो अनेक 'आम्नाय हैं परन्तु चार मुख्य हैं—पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर। ये क्रमशः ऋक्, यजुः, अथर्व और साम हैं। ऊर्ध्वाम्नाय में उपनिषदों का वाच्यार्थ है और अनुत्तराम्नाय में लक्ष्यार्थ है। 'आम्नाय-समष्टि-पूजा' का वास्तविक तात्पर्य यही ज्ञान है कि 'अहं' का लक्ष्यार्थ, जो चित्-शक्ति है, ब्रह्म से भिन्न नहीं है। यही वेदों के कर्म, उपासना और ज्ञान—इन तीन काण्डों का चरम सिद्धान्त है। छहों आम्नायों में सात कोटि महा-मन्त्रों का उल्लेख है। यह अतीव आवश्यक है कि हम इन सभी मन्त्रों को एक चित्-शक्ति का ही शाब्दिक शरीर या रूप समझें।

[३१] सहस्र-नामार्चन और शत-नामार्चन

शास्त्रों में चित्-शक्ति के शत, त्रि-शत और सहस्रनाम के पाठ-विधान दिये गये हैं और इनके प्रत्येक नाम से पूजन की विधि है। जिस प्रकार नाम-पाठ या नाम-कीर्त्तन का यह तात्पर्य है कि उस एक चित्-शक्ति की अनेकता में भी एकता का ही ज्ञान रहे, उसी प्रकार पूजन का भी यही तात्पर्य है। इससे ब्रह्म में तादात्म्य-भाव अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा के ऐक्य का ज्ञान होता है जैसा कि 'पूजा-संकेत' है। नाम के चतुर्थ्यन्त रूप के आदि में प्रणव (ॐ) और अन्त में 'नमः' को योजित करने से प्रत्येक नाम को महा-मन्त्र के रूप में परिणत कर पूजन किया जाता है। यथा—'ॐ क्रीं काल्यै नमः'। इसका यह अर्थ है—

ॐ— वेद-प्रणव अर्थात् शब्द-ब्रह्म,

क्रीं—तन्त्र-पर-प्रणव अर्थात् कूटस्थ ब्रह्म,

काल्यै—चिदचिद्-ब्रह्म अर्थात् पूर्ण-ब्रह्म के प्रति,
नमः—नमस्कार करता हूँ अर्थात् एक होता हूँ ।

सोहं-भाव ही परमानन्द का एक कारण है अतएव 'नमः' सोहं-भाव-वाचक है। इस प्रकार सहस्र बार या त्रिशत या शत बार भी करने से निदिध्यासन होता है। इसको 'असकृत् आवृत्ति' कहते है। इसी का नाम 'अभ्यास' है क्योंकि सकृत् या एक आवृत्ति से अभ्यास नहीं होता।

यह पूजा रक्त-पदार्थ से होती है अर्थात् रक्त-पुष्प यथा जवा, करवीर इत्यादि या रक्त-चन्दन या सिन्दूर-लोलित अक्षत से।

हिन्दुओं की 'पूजा' के प्रमुख उपचार

('धूप', 'दीप', 'नैवेद्य' आदि का रहस्य)

हिन्दुओं की 'पूजा' के उपचारों का उल्लेख पहले आ चुका है। सबके लक्ष्यार्थ अर्थात् दार्शनिक भाव को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। तथापि धूप, दीप, नैवेद्य इत्यादि का दूसरे दृष्टि-कोण से संक्षेप में यहाँ लक्ष्यार्थ दिया जाता है—

(क) धूप

एकाकार-वृत्ति से परमात्मा से अभिन्न आत्मा में शब्द-स्पर्शादि समस्त विषयानुभवों को लय कर लेना ही 'धूप' है। धूम्र-रहित अग्नि में गुग्गुल इत्यादि छोड़ने से एक प्रकार का प्रिय वायु-रूप द्रव्य (गैस) पैदा होता है। यही 'धूप' की गन्ध अग्नि में पड़ते ही धूप से पृथक् हो जाती है। इसी प्रकार चिदग्नि में शब्द, स्पर्श इत्यादि विषयानुभवों को समर्पण कर देने से ज्ञान-योग की महिमा फैलती है और साधक को अवर्णनीय निर्लिप्तत्वकी तृप्ति होतो है क्योंकि वह आत्म-रूप से नहीं, प्रत्युत सर्व-व्यापक सर्वान्तरात्मक रूप से रसास्वाद कर पाता है।

(ख) दीप

साधक देवता को निम्नलिखित मन्त्र से 'दीप' का निवेदन करते हैं—

सु-प्रकाशो महा-दीपः सर्वत्र तिमिरापहः। स-बाह्याभ्यन्तर-ज्योतिर्दीपोऽयं प्रति-गृह्यताम् ॥

इस दीप-दान-द्वारा साधक अपने अज्ञान का नाश करता है और अपनी अखण्डाकार-वृत्ति को पुष्ट करता है।

(ग) नैवेद्य

पद्धति के अनुसार पर-देवता को तादात्म्य-भाव से ही भोग्य पदार्थ निवेदित करना चाहिए। तादात्म्य-भाव तब होता है, जब नाम और रूप की कल्पना हट जाती है तथा प्रत्येक पदार्थ में 'चिद्-भाव' का अनुभव होने लगता है। इसीलिए पद्धति में निम्न सांस्कारिक क्रियायें दी हैं, जिनसे बाह्य-रूप से नैवेद्य पदार्थ का पवित्र होना कहा गया है परन्तु वस्तुतः इनसे साधक के अन्तःकरण के ही सस्कार का लक्ष्य है—

(१) निरीक्षण—'मूलेन पश्येत्' अर्थात् मूल-मन्त्र से देखना। इस क्रिया का तात्पर्य यह है कि देखनेवाले की चेतना दृश्यमान नैवेद्य-पदार्थ की चेतना से एकात्म होकर मूलाधार-चेतना से मिलकर साधक को तादात्म्य की सिद्धि प्रदान करती है।

(२) प्रोक्षण—'फडिति प्रोक्षणी-पात्रामृतेन प्रोक्षयेत्' अर्थात् अस्त्र - मन्त्र 'फट्' से प्रोक्षणी-पात्र के अमृत से सिञ्चन करना 'प्रोक्षण' है। 'अस्त्र' का प्रयोग दूरी-करण में किया जाता है। यहाँ 'फट्' से नाम-रूपात्मक अज्ञान दूर होता है।

(३) अवगुण्ठन—'हुमिति अवगुण्ठयेत्' अर्थात् 'हुँ' मन्त्र से पदार्थ को घेरना। 'हुं' कवच-वीज है। इससे रक्षण का कार्य होता है। यहाँ रक्षा निरीक्षण की होती है, जो अभेद-भाव का द्योतक है। यह 'अवगुण्ठन' वृत्ताकार होता है, जिसका लक्ष्यार्थ अखण्डाकार वृत्ति है।

(४) दोष-निरसन—अर्थात् पदार्थ के दोषों को हटाना। दोष तीन होते हैं—१ अध्यासित दृष्टि, २ आघ्राण और (३) आस्वाद-दोष। इन दोषों का बोध क्रमशः चक्षु, नासिका और जिह्वा से होता है। पहले वायु-वीज 'यं' से दोषों का शोषण करते हैं, तब वह्नि-वीज 'रं' से उन्हें जला देते हैं। अन्त में अमृत-वीज 'वं' से स्वाद-दोष का अमृतीकरण करते हैं। तदनन्तर काम-धेनु-मन्त्र से 'धेनु-मुद्रा' दिखायी जाती है। 'कामधेनु' का अर्थ है कामना-पूर्ति करनेवाली गाय। यह अवस्था है, जिसमें वासना का सर्वथा नाश हो जाता है और किसी प्रकार की कामना नहीं रह जाती। उत्सर्ग-समय में 'चक्र-मुद्रा' दिखलाई जाती है। ब्रह्म-ज्ञान ही 'चक्र' है, जो अखण्डाकार वृत्ति का द्योतक है। अतएव यह स्पष्ट है कि नैवेद्य की संस्कार-विधि का तात्पर्य है नैवेद्य को विद्या-मय समझना।

(घ) कुल-दीप

'कुल' का लक्ष्यार्थ है त्रिपुटी अर्थात् ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय। 'दीप' का अर्थ है ज्ञान। त्रिपुटी के दो प्रकार हैं—१ बाह्य और २ आन्तरिक। दोनों अविद्या-मूला होने से अशुद्ध हैं।

अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्यामित-प्रभम्। त्रिधा दीपं परिभ्राम्य कुल-दीपं निवेदये॥

इस दीप-रूपी ज्ञान को तीन बार घुमाकर करके निवेदित करना है। तीन बार घुमाने से तात्पर्य है भावना द्वारा क्रमशः बाह्य और आन्तरिक त्रिपुटी का परिशोधन कर तीसरी प्रदक्षिणा में दोनों विशुद्ध त्रिपुटियों के ज्ञान को भी महा - प्रकाश में लय करना। इसे तुरीयावस्था कहते हैं।

(ङ) कर्पूर-नीराजन

अर्थात् पर-देवता को कर्पूर का स्निग्ध प्रकाश दिखलाना। चित्-शक्ति को प्रकाश दिखाने का तात्पर्य है अपनी अविद्या का आवरण हटाना। अविद्या केवल विद्या से हटती है, कर्पूर की तेज-शिखा अखण्डाकार ज्ञान की द्योतक है। जैसे कर्पूर तेज-शिखा में विलीन हो जाता है, उसी प्रकार नाम-रूपात्मक अविद्या चित्-प्रकाश में विलीन हो जाती है। इससे चित्-परा शक्ति काली आदि से तादात्म्य की प्राप्ति होती है।

(च) पञ्च-पुष्पाञ्जलि

महा-मन्त्र या महा-वाक्य का मनन करते हुये पर-देवता के चरणों पर यह पुष्प-समर्पण करना है। ब्रह्म-विद्या-रूपी वृक्ष की आत्म-गोचर-वृत्तियाँ ही पुष्प हैं और इस वृक्ष का फल है ब्रह्म-ज्ञान। अतएव पुष्पाञ्जलि का सूक्ष्म तात्पर्य है अखण्डाकार-वृत्ति। इससे अज्ञान का आवरण हटता है, जिससे ब्रह्म-ज्ञान होता है।

हिन्दुओं की पूजा के महत्वपूर्ण अंग

जप

पूजा का सबसे प्रधान महत्त्व-पूर्ण अङ्ग है 'जप'। यह स्वयं निदिध्यासन है, जो बहुत जल्द समाधि में परिणत होता है। बिना प्राण-निरोध के यह ठीक से सम्पादित नहीं हो सकता। अतएव 'पूजा'-रूपी यह निदिध्यासन सभी यज्ञों से कठिन और श्रेष्ठ है। इसी से वाञ्छित सिद्धि साधक को मिलती है। (विशेष विवरण हेतु देखिए 'साधना-रहस्य', पृष्ठ ५८)

होम

'होम' शब्द 'हुम्' धातु से बनता है, जिसका अर्थ त्याग है, परन्तु सामान्यतः इसका अर्थ है संस्कृत की गई अग्नि की ज्वाला को इष्ट-देवता की जिह्वा समझ कर उसमें देवता के प्रिय पदार्थों को अर्पित करना।

पद्धति के अनुसार 'होम' करने के लिए स्थण्डिल या कुण्ड याग-मन्दिर (पूजा-गृह) के ईशान-कोण में बनाना चाहिये। चिच्चन्द्र-मण्डल में बड़े-बड़े आठ दलों का सहस्रार है, जिसके मध्य में सवा सौ छोटे-छोटे दल हैं। इसकी कर्णिका में हंस अर्थात् आत्मा है, जो चक्र-वत् चित्त-वृत्ति के परिवर्तन के अनुसार आठों दलों में घूमता रहता है। अर्थात् संस्कार-वश वह आठों प्रकार की भावनाओं से क्रमशः भावित होता रहता है। ईशान-दल में जाने पर आत्मा को त्याग-बुद्धि होती है।

त्याग-बुद्धि और ज्ञान सूक्ष्म-रूप से एक ही बात है। जब याग-मन्दिर (पूजा-गृह) का वास्तविक अर्थ शुद्ध चित्त-वृत्ति है, तब हवन-स्थान का ईशान-कोण में होना ठीक ही है क्योंकि शुद्ध चित्त-वृत्ति की त्याग-बुद्धि ही वास्तविक ज्ञान है, जिसके द्वारा अहन्ता और ममता को सम्वित्-रूपी अग्नि में भस्म करते हैं। जब तक मन की आहुति चिदग्नि में नहीं दी जाती, तब तक हवन एक आडम्बर मात्र है। 'होम' का तात्पर्य है वासना-क्षय या मनो-नाश। इससे जीवन्मुक्ति होती है।

बलिदान

'बलि-दान' दो प्रकार का है—१ नित्य और २ नैमित्तिक। नैमित्तिक बलिदान का उल्लेख हो चुका है। यहाँ नित्य-बलि का, जो विघ्न-कारक भूतों को दी जाती है, संक्षेप में उल्लेख किया जाता है।

पद्धति के अनुसार देवता के वाम-भाग में रक्त-चन्दन इत्यादि से व्यापक-मण्डल लिखकर बलि-पात्र में नैवेद्य का किंचित् भाग, जो इसी के हेतु रखा गया है, रखकर—

ॐ ह्रीं सर्व-विघ्न-कृद्भ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यो हूँ फट् स्वाहा।

मन्त्र से भूतों को बलि दे। गौड़-क्रम में पूजा के आदि, मध्य और अन्त में तीन बार बलि दी जाती है। काश्मीर-क्रम में केवल आदि में और केरल-क्रम में केवल अन्त में एक बार दी जाती है।

बलिदान का अर्थ है पदार्थ को देवता के प्रति अर्पण करना। इस अर्थ में नैवेद्य भी बलि के अन्तर्गत आ जाता है, परन्तु नैवेद्य और बलि में भेद है। नैवेद्य का ग्रहण आवश्यक और विहित है किन्तु बलि-स्वीकार अविहित है क्योंकि 'नैवेद्य' पर-देवता अर्थात् चित्-शक्ति को अर्पण किया जाता है और 'बलि' भूतों अर्थात् विघ्नकारक द्वैत बुद्धि-शक्तियों को दी जाती है। इसलिये 'बलि' को स्वीकार करना अर्थात् स्वयं प्रसाद-रूप में ग्रहण करना निषिद्ध है।

बिहार में शक्ति-साधना

पूर्वार्द्ध-खण्ड

इतिहास एवं प्रेरणा-दायक व्यक्तित्व

पृष्ठ सं० १२८ : मूल्य ८-०० रु०

शाक्त-सम्मेलन, पटना १९८६ के अवसर पर एक स्मारिका का प्रकाशन हुआ था। इस स्मारिका का परिवर्धित संस्करण अब पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का विमोचन ५ नवम्बर १९८७ को पटना (बिहार) में हुआ। १५ नवम्बर को 'पाटलिपुत्र टाइम्स' में इस पुस्तक के सम्बन्ध में डा० अमर सिंह जी की निम्नलिखित समीक्षा प्रकाशित हुई है—

"···'बिहार में शक्ति-साधना' बिहार की तन्त्र-साधना से सम्बन्धित पुस्तक है।....इस पुस्तक में राजा निमि, जनक, याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी, सीता से लेकर जैन-धर्म एवं बौद्ध-धर्म की शक्ति-साधना पर विचार हुआ है।

शङ्कराचार्य और कुमारिल भट्ट, शङ्कराचार्य एवं मण्डन मिश्र, भगवती शारदा और महाराजाधिराज रमेश्वर सिंह, गंधवार नरेश, पू०माई जी, प्रकाशानन्द जी, शैलजानन्द जी, पूर्णानन्द जी, मुनीन्द्रनाथ जी, मदन उपाध्याय, श्री योगेशानन्द, आनन्द बाबा, दिनमणि झा, श्रीधर ओझा, वासुदेव झा और श्यामानन्द नाथ जैसे बिहार के तान्त्रिकों और शक्ति-साधकों पर प्रामाणिक सामग्री दी गई है।

पुस्तक के सम्पादक पण्डित रमादत्त शुक्ल 'तन्त्र-साधना' में 'दिव्य-भाव' को महत्व देते हैं और लिखते हैं—"बिहार की 'शक्ति-साधना' की परम्परा हजार-दो हजार, दस-बीस हजार वर्ष की नहीं, अपितु वैदिक-काल के चतुर्युग के आदि सत्य-युग के प्रारम्भ की है। बहुत से लोग बिहार को 'शक्ति - साधना' की प्राचीनता से अनभिज्ञ हैं। इतिहास के अध्ययन के समय बिहार में बौद्ध-धर्म एवं जैन-धर्म के प्रभाव की चर्चा विशेष रूप से होती है, किन्तु 'वैदिक धर्म' का वर्णन सम्यक् रूप में नहीं होता।

शाक्त-साहित्य के गम्भीर चिन्तक श्री निशान्तकेतु का दावा है कि इस प्रकार के रचनात्मक प्रयत्न से 'तन्त्र' के सम्बन्ध में फैली भ्रान्तियों को निराकृत करते हुये बिहार की तान्त्रिक साधना-पद्धति से सम्बन्धित अनेक तथ्यों को सामने लाया जा सकेगा। इस पद्धति से सम्भ्रान्त समाज अपनी सांस्कृतिक विरासत और साधना-पद्धति से परिचित हो सकेगा। ···"

'चण्डी' पत्रिका के सभी सदस्यों को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिए। इस पुस्तक से उन्हें शाक्त-धर्म के प्राचीन इतिहास एवं प्रेरणा-दायी महापुरुषों के सम्बन्ध में रोचक व ज्ञान-वर्द्धक जानकारी प्राप्त होगी।

'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों से इस पुस्तक का लागत मूल्य मात्र ५-०० रु० लिया जायेगा।

वी० पी० द्वारा उक्त पुस्तक मँगाने पर डाकखर्च ३-०० रु० होगा और वी० पी० कुल आठ रु० को होगी। रजिस्ट्री द्वारा मँगाने पर डाक व्यय ५-०० रु० होगा और मनोआर्डर द्वारा १०-०० भेजना होगा। जो बन्धु अभी वी० पी० या रजिस्ट्री द्वारा मँगाना न चाहते हों, वे इस पुस्तक को 'चण्डी' वर्ष ४६ के अन्तिम अङ्क ९-१२ व विशिष्ट अङ्कों के साथ इसे मार्च ८८ में मँगा सकते हैं। इससे डाक-खर्च की बचत होगी।

पता : चण्डी-कार्यालय, अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—२११००६

रजि० सं० ३२६८१।७५] अगस्त ८७ से नवम्बर ८७ [रजि० नं० ए० डी० ६६

प्राण-तोषिणीतन्त्र

१२५ प्राचीन तन्त्र ग्रन्थों द्वारा तान्त्रिक-साधना के महत्वपूर्ण विषयों का विवेचन

भाग १ : सर्ग-काण्ड एवम् धर्म-काण्ड

मूल-मात्र : संस्कृत में

सुन्दर सजिल्द : 'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०

भाग २ : अर्थ-काण्ड एवम् काम्य-काण्ड

मूल-मात्र

'चण्डी' के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ३०-०० रु०

भाग ३ : भक्ति-काण्ड

मूल-मात्र

मूल्य २०-०० रु०

वाममार्ग

'तन्त्र-शास्त्र' के गौरव एवम् प्रामाणिक तान्त्रिक साधना-क्रम के लिए महत्व-पूर्ण प्रकाशन।
'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य ८-०० रु०।

सविधि श्री कुण्डलिनी साधना

'चण्डी' पत्रिका के सदस्यों के लिए रियायती मूल्य १२-०० रु०

सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, परावाणी प्रेस, इलाहाबाद—२११००६